Registered with the Registrar of Newspaper for India
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

Supported by:
Ksaan Helpline
+91-7415538151

मध्य भारत कृषक भारती

READ FOR ONLINE EDITION
Website: www.krishakbharti.in
E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

ISSN-2582-5976

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

वर्ष-21 अंक-8 | ग्वालियर, नवम्बर -2026 | मूल्य 30 रुपए



मोहला-अम्बागढ़ चौकी अगरबत्ती-धूप बनाकर 10 महिलाएं रहीं सालाना तीन लाख



छत्तीसगढ़ के विकाखखण्ड मोहला-अंबागढ़ चौकी के ग्राम थैलीटोला की जय मां लक्ष्मी स्व-सहायता समूह की महिलाएं अगरबत्ती और धूप-लुभान बनाकर सालाना करीब तीन लाख रूपए की आय अर्जित कर रहीं हैं। समूह की अध्यक्ष रिंकी सिन्हा ने बताया कि विहार योजना से जुड़ने से पहले महिलाएं घर के काम और खेती किसानी तक सीमित थीं। नियमित आय का अलग साधन नहीं था। समूह बनने के बाद महिलाओं ने अगरबत्ती और धूप-लुभान निर्माण किया। समूह को स्वयं सिद्ध, बीआरसी, बैंक लिंकेज और पीएमईजीपी जैसी योजनाओं से सहयोग मिला है।

COMING SOON

मध्य भारत कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

- नये रंग-रूप, आकर्षक कलेवर और खेती बाड़ी की तकनीकी जानकारियों से परिपूर्ण
- अपनी प्रति आज ही बुक करायें।
- दर प्रति कॉपी ₹ 200/-
- कृषक कैलेण्डर 2027 दर प्रति कॉपी 100/-

कृषि, उद्यानिकी एवं पशुपालन विभाग के लिये बेहद उपयोगी



डायरी क्रय करने पर | रंगीन आकर्षक कैलेंडर मुफ्त

अपना आदेश आज ही निम्न पते पर प्रेषित करें-

ऑफिस : ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर (म.प्र.)

सम्पर्क करें : 94251-01132, 91791-85002, 94251-48365 • ई-मेल : editorkrb@gmail.com

An ISO 9001:2008 Certified Company

कृषि दर्शन

खेत-खलिहान का राजा

1988


थ्रेशर 35HP हापर मॉडल


हडम्बा कटर थ्रेशर


ऑटोफीडिंग थ्रेशर


मक्का थ्रेशर


मिनी कम्बाईन थ्रेशर


रेज बेड सिड ड्रील


स्प्रे पंप 500 लि. गन बूम मॉडल


मोटर लिफ्टर

कृषि दर्शन® सुदर्शन इण्डस्ट्रीज

विक्रम नगर मौलाना, बड़नगर, जिला-उज्जैन-456771 (म.प्र.)
फोन : 07367-262235, मोबा.: 09827078882

वेब : www.krishidarshan.com, ई-मेल : krishidarshan@rediffmail.com

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

कोर्ट ने कहा- आजादी व सुरक्षा आपस में पूरक

ऐसे दौर में जब आस्ट्रेलिया-फ्रांस व अन्य विकसित देशों में सोशल मीडिया तक बच्चों की पहुंच सीमित करने के कानून बने हैं, सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि बच्चों की इंटरनेट तक पहुंच उनका मौलिक अधिकार है। इस पर प्रतिबंध लगाना अनुचित है। कोर्ट ने माना कि इंटरनेट तक पहुंच और इस्तेमाल करने का अधिकार, संविधान के अनुच्छेद 21 के साथ-साथ अनुच्छेद 19(1) (ए) के तहत निर्धारित 'वाक्य और अभिव्यक्ति की आजादी ' में ही निहित है। दरअसल, न्यायमूर्ति जे.बी. पारदीवाला और न्यायमूर्ति केवी चंद्रन की पीठ इंटरनेट के जरिये बच्चों के शोषण और दुर्व्यवहार से जुड़ी सामग्री का पता लगाने और उसे हटाने के उपायों पर विमर्श कर रही थी। इसी बीच कई देशों द्वारा एक निर्धारित उम्र तक के बच्चों की सोशल मीडिया तक पहुंच सीमित करने का मामला सामने आया। भारत में भी इस तरह के प्रतिबंध लगाने की मांग की जा रही है। अदालत का मानना था कि हम बच्चों से जुड़ी ऐसी चिंताओं को स्वीकार करते हैं, लेकिन इंटरनेट पर प्रतिबंध इसका न्यायोचित विकल्प नहीं है। शीर्ष अदालत ने माना कि इस माध्यम से बच्चों को दूर रखकर हम उनकी सुरक्षा सुनिश्चित नहीं कर सकते। अदालत का तर्क था कि बच्चों की आजादी और सुरक्षा एक दूसरे के खिलाफ नहीं है, बल्कि उन्हें दोनों ही चीजें मिलनी चाहिए। अदालत का मानना था कि नई पीढ़ी के बच्चों के लिये इंटरनेट सीखने का माध्यम भी है। दूरदराज के इलाकों में जानकारी पाने का एकमात्र जरिया होता है।

पीठ के मुताबिक–हमारी धारणा है कि ऑनलाइन सुरक्षा के लिये कुछ सुरक्षा उपाय होने जरूरी हैं। अभिभावकों के पास उपलब्ध सामग्री की निगरानी की भी व्यवस्था होनी चाहिए। इसके अंतर्गत ऐसी व्यवस्था हो सकती है, जिसमें माता-पिता के मार्गदर्शन,सहमति और निगरानी में बच्चे सोशल मीडिया मंचों का उपयोग कर सकें।

वहीं दूसरी ओर सुप्रीम कोर्ट ने इस बात का गंभीरता से संज्ञान लिया कि देश में नाबालिगों से जुड़ी अश्लील सामग्री रोकने में सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म लापरवाही दिखा रहे हैं। अदालत का मानना था कि सभी हितधारक यह सुनिश्चित करें कि बच्चों को हानि पहुंचाने वाली कोई भी सामग्री प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से उपलब्ध न हो सके। यह सामग्री न अपलोड की जाए और न ही उसे प्रोत्साहन दिया जाए।

कोर्ट ने इस बात को लेकर भी नाराजगी जतायी कि मध्यस्थों व सोशल मीडिया मंचों ने वर्ष 2024 में जारी किए गए कोर्ट के निर्देशों का ईमानदारी से पालन नहीं किया। साथ ही पीठ का मानना था कि आज इंटरनेट शिक्षा, सूचना और सामाजिक भागीदारी का एक सशक्त माध्यम बना है। ऐसे में यदि प्रतिबंध लगाए जाते हैं तो वे निष्प्रभावी होंगे, बल्कि नुकसान पहुंचाने वाले भी हो सकते हैं। इसका नुकसान यह हो सकता है कि बच्चे ऐसी ऑनलाइन जगहों को सर्च करना शुरू कर सकते हैं, जो नियम-कानून कम होने की वजह से ज्यादा घातक हो सकती हैं।



जीराफूल चावल से समृद्धि की नई राह, चांगरो के किसानों को मिलेगा बेहतर बाजार'

रायपुर। छत्तीसगढ़ की पारंपरिक कृषि पहचान को सहेजने और किसानों की आय बढ़ाने के लिए बलरामपुर जिले के ग्राम चांगरों में जीराफूल चावल की जैविक खेती को प्रोत्साहित किया जा रहा है। जनप्रतिनिधियों और जिला प्रशासन ने गांव पहुंचकर किसानों तथा स्व-सहायता समूहों की महिलाओं से चर्चा की। उन्होंने जीराफूल की खेती को संगठित रूप देने, इसकी ब्रांडिंग करने और किसानों को बेहतर बाजार उपलब्ध कराने के लिए विशेष कार्ययोजना बनाने का भरोसा दिलाया। ग्रामीणों के साथ आत्मीय संवाद के दौरान जनप्रतिनिधियों और अधिकारियों ने जमीन पर बैठकर किसानों के अनुभव सुने और पारंपरिक खेती को सहेजने के उनके प्रयासों की सराहना की। किसानों को रासायनिक खाद से दूरी बनाकर जैविक पद्धति अपनाने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कहा कि चांगरो का जीराफूल चावल क्षेत्र की अनमोल पहचान है। इसकी सुगंध और गुणवत्ता को जिले से आगे राज्य और देशभर में पहुंचाने के लिए हरसंभव सहयोग किया जाएगा। जीराफूल पारंपरिक, सुगंधित और छोटे दाने वाली धान की किस्म है। इसके पतले दाने जीरे जैसे दिखते हैं, इसलिए इसका नाम जीराफूल पड़ा। मार्च 2019 में इसे जीआई टैग मिला। प्राकृतिक मिठास और मनमोहक सुगंध के लिए प्रसिद्ध यह चावल हल्का और सुपाच्य भी है।

सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

छिंदवाड़ा (म.प्र.)
रामप्रकाश रघुवंशी
98272-78063

***

नरसिंहपुर (म.प्र.)
नवीन शुक्ला: 89894-36330

मुंगावली (म.प्र.)
भगवानदास चौबे
96854-88453

बलिया (उ.प्र.)
आर.एन. चौबे-94535-77732

पश्चिम बंगाल
राजेश नायक-98831-57482

उड़ीसा
समीर रंजन नायक
70422-31678

***

हापुड़ (उ.प्र.)
मयंक गौड़: 83848-66823

Online मंगाएं साहित्य

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका **मध्य भारत कृषक भारती** द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट **www.krishakbharti.in** पर जाकर **Purchase** को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 20 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 21 से 30 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजीटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है। -संपादक

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in

मध्य भारत कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

सदस्यता एवं विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें
0751-4070802

▪ वार्षिक ₹ 400 ▪ द्विवार्षिक ₹ 750
▪ पंचवार्षिक ₹ 1800

▪ वर्ष 21 ▪ अंक 08 ग्वालियर, नवंबर 2026 मूल्य ₹ 30/-

: सम्पादक मण्डल :

प्रधान सम्पादक

राजू गुर्जर (MJC)

94251-01132

94245-22090

❖

प्रसार/मार्केटिंग टीम

डी.के. बरार

91791-85002, 70247-93010

महेश अहिरवार: 94251-48365

कार्तिकेय भदौरिया

8815118046



: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण :

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय

***

डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव (Assistant Professor)
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

***

डॉ. आर.के.एस. तोमर
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि. ग्वालियर (म.प्र.)

***

डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण),
डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि.,पूसा, समस्तीपुर

***

प्रो. (डॉ.) के. आर. मौर्य
पूर्व कुलपति, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय पूसा (बिहार), एवं महात्मा ज्योति राव फूले विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)

***

डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक) पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा उद्यान महाविद्यालय, नूरसराय (नालन्दा), बिहार कृषि वि.वि.,सबौर, भागलपुर

***

डॉ. भागचन्द जैन प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी, कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

***

डॉ. विश्वनाथ सिंह कंसाना कृषि वैज्ञानिक (कृषि प्रसार), कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया (म.प्र.)

***

डॉ. विनीता सिंह, अध्यक्ष अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभागAKS विश्वविद्यालय, सतना (म.प.)

***

तपस्या तिवारी पीएचडी शोधार्थी, मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

***

बसंत कुमार दादरवाल
इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी (उ.प्र.)

***

श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगांव, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मोबाइल: 9907279542

***

डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा (असिस्टेंट प्रोफेसर) पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, महू, (म.प्र.)

***

डॉ. जितेन्द्र सिंह राजौरिया असिस्टेंट प्रोफेसर, पशु चिकित्सा स्त्री रोग और प्रसूति विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान और पशुपालन महाविद्यालय, रीवा-486001 (म.प्र.)

***

डॉ. अनिल कुमार सिंह असिस्टेंट प्रोफेसर, पशु चिकित्सा शरीर विज्ञान और जैव रसायन विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान और पशुपालन महाविद्यालय, रीवा, NDVSU, जबलपुर (म.प्र.)

***

डॉ. माधुरी धुर्वे असिस्टेंट प्रोफेसर, पशु चिकित्सा स्त्री रोग और प्रसूति विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान और पशुपालन महाविद्यालय, रीवा, NDVSU (म.प्र.)

***

डॉ. राखी गांगिल एसोसिएट प्रोफेसर, पशु चिकित्सा सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय एवं पशु चिकित्सा केन्द्र, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय, जबलपुर

***

डॉ. रोहित गुप्ता (MVSc, Ph.D. (LPM) वरिष्ठ वैज्ञानिक (पशुधन उत्पादन प्रबंधन), ICAR- केंद्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, उप-परिसर, नाभा, पटियाला (पंजाब)-147201

Online मंगाएं साहित्य

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका **मध्य भारत कृषक भारती** द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट **www.krishakbharti.in** पर जाकर **Purchase** को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 20 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 21 से 30 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजीटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है। -संपादक

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
समाचार

आगर में 3800 करोड़ की मैक्केन फूड परियोजना होगी शुरू : सीएम

● 2 हजार लोगों को मिलेगा रोजगार ● पशुपालन, किसानों की आय बढ़ाने का महत्वपूर्ण साधन है

भोपाल। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग से आगर में आयोजित बलराम कृषि महोत्सव में सहभागिता करते हुए किसानों से सीधा संवाद किया। उन्होंने कृषक कल्याण वर्ष के तहत् आयोजित कार्यक्रमों में किसानों से कृषि गतिविधियों, शासन की किसान हितैषी योजनाओं से मिल रहे लाभ, कृषि के क्षेत्र में नवाचार तथा किसानों की आवश्यकताओं के संबंध में संवाद किया। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि आगर में 3800 करोड़ की मैक्केन फूड परियोजना शुरू हो रही है, इसमें 2 हजार लोगों को रोजगार मिलेगा। पशुपालन किसानों की आय बढ़ाने का महत्वपूर्ण साधन है। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि आगर-मालवा जिले के लालूखेड़ी में आलू प्रसंस्करण का 200 करोड़ का उद्योग स्थापित हो रहा है, लालूखेड़ी के साथ ही अब आगर-मालवा जिले के किसान भी आलू उगाऐंगे। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि आगर एवं सुसनेर का संतरा देश भर में भेजा जा रहा है। उन्होंने कहा कि जिले के पशुपालक गौपालन के लिये भी विशेष रूप से जाने जाते है। जैविक दूध प्रदेश में कही मिलता है तो आगर में ही मिलता है। उन्होंने कहा कि प्रदेश का दूध उत्पादन भी बढ़ेगा, सांची का दुग्ध ब्राण्ड भी बढ़ रहा है। मुख्यमंत्री ने कहा कि आगर जिला सौर उर्जा एवं विण्ड एनर्जी के लिये भी अपनी अलग पहचान रखता है। प्रदेश में पर्याप्त बिजली, सिंचाई के लिये पानी उपलब्ध है और पांच लाख किलोमीटर की सड़कों का जाल भी है। उन्होंने ने कहा कि वर्ष 2027 तक गेहूं 2700 से के भाव में खरीदेंगे।



मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि आगर जिला गौ-सेवा के लिये भी विशेष पहचान रखता है। गौ-अभयारण्य सालरिया एवं जिले की अन्य गौशालाओं में 20 हजार से अधिक गौवंश की समुचित देखभाल की जा रही है। सरकार प्रति गौवंश 40 रूपए प्रतिदिन की दर से गौवंश की देखभाल के लिये गौशालाओं को राशि प्रदान कर रही है। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि गौपालन को बढ़ावा देने के लिये गौपालन पुरस्कार योजना के तहत् अच्छे पशुपालकों की प्रतियोगिता आयोजित की जाएगी। जिसमें प्रत्येक विकास खण्ड से प्रथम पुरस्कार प्राप्त करने वाले पशुपालक को एक लाख रूपए, द्वितीय पुरस्कार के लिये 50 हजार एवं तृतीय पुरस्कार के रूप में 25 हजार रूपए की राशि पशुपालक को प्रदान की जाएगी। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने बिनायगा बड़ौद के प्राकृतिक एवं जैविक खेती करने वाले किसान श्री राधेश्याम परिहार, आखाखेड़ी तनोडिया के प्राकृतिक अरहर खेती करने वाले किसान रोहित शर्मा एवं अन्य उपस्थित प्रगतिशील कृषकों से वर्चुअली संवाद कर उनके द्वारा की जा रही प्राकृतिक, जैविक एवं उन्नत कृषि के बारे में जानकारी ली तथा इससे होने वाले लाभ के बारे में भी चर्चा की। सांसद श्री रोड़मल नागर ने कहा कि मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने खेती को उद्यम बनाकर किसानों के लिये लाभ का धन्धा बना दिया है। आज उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी किसान पुत्र कृषि की ओर आकर्षित हो रहे है। किसान मोर्चा के प्रदेश अध्यक्ष श्री जयपाल सिंह चावड़ा, अपेक्स बैंक के प्रशासक श्री महेन्द्र सिंह यादव और विधायक श्री मधु गेहलोत ने भी संबोधित किया।

प्रगतिशील किसानों, मेधावी विद्यार्थियों और भूतपूर्व सैनिकों का किया सम्मान

कार्यक्रम मे उत्कृष्ट एवं प्रगतिशील किसानों, किसान परिवार के मेधावी छात्र-छात्राओं और भूतपूर्व सैनिकों को प्रशस्ति पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम को श्री कपिल यारदे, श्री कप्तान सिंह यादव ने भी सम्बोधित किया। कार्यक्रम स्थल पर विभिन्न विभागों द्वारा लगाई गई।

जीएसटी में किए गए सुधार व्यापारिक गतिविधियों को और अधिक सुगम बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम

भोपाल। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने कहा है कि प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के कुशल नेतृत्व में जीएसटी में किए गए सुधार व्यापारिक गतिविधियों को और अधिक सुगम बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि केंद्रीय वित्त मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमन की अध्यक्षता में जीएसटी काउंसिल द्वारा स्वीकृत सुधारों से कर अनुपालन आसान होगा व गिरफ्तारी संबंधी प्रावधान हटाने, स्वचालित रिफंड और प्रक्रिया के सरलीकरण से सरकार पर व्यापारियों एवं उद्यमियों का विश्वास अधिक मजबूत होगा। निश्चित ही, सरकार की यह पहल देश में कारोबारी गतिविधियों को प्रोत्साहित करने और उद्यमशीलता को बढ़ावा देने वाली सिद्ध होगी।



ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
समाचार

नई तकनीक से खेती कर समृद्धि की ओर बढ़ रहे किसान

भोपाल। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने कहा है कि प्रदेश में किसानों को आधुनिक कृषि तकनीकों से जोड़कर खेती को लाभकारी बनाने की दिशा में बलराम कृषि महोत्सव महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। उन्होंने कहा कि किसानों की बेहतरी के लिए राज्य सरकार हरसंभव कदम उठा रही है। वर्ष 2026 को 'कृषक कल्याण वर्ष' के रूप में मनाते हुए प्रदेश के सभी जिलों में बलराम कृषि महोत्सव आयोजित किए जा रहे हैं। 9 अक्टूबर तक प्रदेश के 55 में से करीब 43 जिलों में जिला स्तरीय बलराम कृषि महोत्सव आयोजन हो चुके हैं।



मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि किसानों की समृद्धि ही हमारा लक्ष्य है, हमारी प्रतिबद्धता है। उन्होंने कहा कि बलराम कृषि महोत्सव के माध्यम से कृषि विशेषज्ञ, वैज्ञानिक और जिला अधिकारी सीधे किसानों से संवाद कर रहे हैं। किसानों को उन्नत कृषि तकनीकों, आधुनिक कृषि यंत्रों और खेती में नवाचार अपनाने के लिए प्रेरित किया जा रहा है, ताकि कम निवेश में अधिक आमदनी प्राप्त करने के गुर सीखकर किसान अमल कर सकें। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि बदलते समय में खेती को अधिक लाभकारी बनाने के लिए परम्परागत तरीकों के साथ आधुनिक तकनीकों को अपनाना आवश्यक है। कृषि विशेषज्ञों द्वारा दी जा रही नई जानकारियां किसानों को बेहतर उत्पादन, संसाधनों के प्रभावी उपयोग और आय बढ़ाने के अवसर उपलब्ध करा सकती हैं। उन्होंने किसानों से बलराम कृषि महोत्सव में अवश्य भाग लेकर कृषि विशेषज्ञों की सलाह का भरपूर लाभ उठाने का आह्वान किया। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि सरकार का उद्देश्य किसानों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना और कृषि क्षेत्र में समृद्धि के नए अवसर पैदा करना है। इसके लिए सभी जरूरी उपाय और प्रबंधन किये जा रहे हैं।

खेती को लाभकारी बनाने का सशक्त मंच-इस वर्ष 15 जुलाई 2026 से शुरू हुए बलराम कृषि महोत्सव आयोजन की श्रृंखला में अब तक हजारों किसान इस महोत्सव से लाभान्वित हो चुके हैं। बलराम कृषि महोत्सव खेती-किसानी को घाटे से उबारने, आधुनिक तकनीकों को खेतों तक पहुंचाने और किसानों को सफलता एवं लाभ के नए आयामों से जोड़ने का सशक्त मंच बन रहा है।

किसानों की समृद्धि और कृषि विकास पर है विशेष फोकस

छिन्दवाड़ा। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने सोमवार को कृषि उपज मंडी समिति प्रांगण नरसिंहपुर में हुए बलराम कृषि महोत्सव को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग (वीसी) से संबोधित किया। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने बलराम कृषि महोत्सव आयोजन की सराहना करते हुए कहा कि नरसिंहपुर जिला खेती-किसानी और उन्नत कृषि पद्धतियों के लिए विशेष पहचान रखता है। यहां की कृषि और किसानों की मेहनत के उदाहरण देशभर में देखने को मिलते हैं। बलराम कृषि महोत्सव किसानों के सम्मान, कृषि विकास और उनकी समृद्धि के संकल्प को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण अवसर है। मुख्यमंत्री डॉ. यादव ने कहा कि किसानों की समृद्धि के लिए कृषि के साथ-साथ सिंचाई, जल संसाधनों के बेहतर उपयोग और आधुनिक कृषि तकनीकों को बढ़ावा देना आवश्यक है। सरकार नदी जोड़ो अभियान सहित विभिन्न क्षेत्रों में कृषि एवं इससे जुड़े व्यवसायों के विकास के प्रयास कर रही है। कृषि क्षेत्र को मजबूत बनाने और किसानों के जीवन में खुशहाली लाने के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं। उन्होंने बलराम कृषि महोत्सव को किसानों के बीच कृषि संबंधी जानकारी, आधुनिक तकनीकों और उन्नत खेती के तरीकों को साझा करने का महत्वपूर्ण मंच बताकर किसानों से नई कृषि पद्धतियों को अपनाने को कहा। मुख्यमंत्री ने किसानों से परम्परागत खेती के स्थान पर अब अधिक आमदनी देने वाली उन्नत खेती कर खेतों-खलिहानों और अपने जीवन को समृद्ध बनाने का आह्वान किया।

कृषि उत्पादन आयुक्त एवं अपर मुख्य सचिव के.सी. गुप्ता ने किया ग्वालियर में उद्यानिकी गतिविधियों का निरीक्षण

ग्वालियर। मध्यप्रदेश शासन के कृषि उत्पादन आयुक्त एवं अपर मुख्य सचिव उद्यानिकी श्री के.सी. गुप्ता ने शुक्रवार को ग्वालियर जिले का भ्रमण कर विभिन्न उद्यानिकी गतिविधियों का निरीक्षण किया। इस दौरान उन्होंने किसानों द्वारा आधुनिक तकनीक से की जा रही खेती, फसल उत्पादन, प्रसंस्करण, ग्रेडिंग एवं पैकिंग कार्यों का जायजा लिया। उन्होंने जिले में संचालित उद्यानिकी गतिविधियों की सराहना करते हुए उत्पादन एवं गुणवत्ता बढ़ाने तथा किसानों की समस्याओं का त्वरित निराकरण सुनिश्चित करने के निर्देश दिए। भ्रमण के दौरान श्री गुप्ता ने प्रधानमंत्री सूक्ष्म खाद्य उद्योग उन्नयन योजना (पीएमएफएमई) के अंतर्गत श्री धर्मेन्द्र राणा की 12 लाख रुपये की स्वीकृत तेल मिल इकाई का निरीक्षण किया। उन्होंने इकाई में तेल के उत्पादन, पैकिंग, वर्षभर में होने वाले उत्पादन तथा प्राप्त लाभ के संबंध में जानकारी ली। साथ ही उत्पादन क्षमता और गुणवत्ता में वृद्धि के लिए आवश्यक निर्देश दिए।



ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्यप्रदेश

खरीफ फसल की कटाई के बाद रबी फसल में मृदाजनित रोगों की रोकथाम के लिए खेत प्रबंधन एवं नियंत्रण उपाय

योगेश कुमार (शोध छात्र) पादप रोग विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

हरी शंकर कुमावत (शोध छात्र) पादप रोग विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर, (राजस्थान)

डॉ. रजनी सिंह ससोडे (विभाग प्रमुख एवं वैज्ञानिक) कृषि महाविद्यालय, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

खरीफ फसल की कटाई के बाद आगामी रबी फसल को मृदाजनित रोगों से सुरक्षित रखने के लिए खेत में उचित स्वच्छता, मृदा प्रबंधन तथा रोग नियंत्रण संबंधी उपाय अपनाना आवश्यक है। मृदाजनित रोगजनक मिट्टी, संक्रमित पौध अवशेषों, बीजों तथा अन्य वैकल्पिक पोषक पौधों पर जीवित रह सकते हैं और अनुकूल परिस्थितियाँ मिलने पर अगली फसल को संक्रमित कर सकते हैं। फ्यूजेरियम, राइजोक्टोनिया, स्क्लेरोशियम रॉल्फ्सी तथा मैक्रोफोमिना फेजियोलाइना जैसे रोगजनक जड़ सड़न, तना एवं कॉलर सड़न, उकठा तथा आर्द्रगलन जैसे रोग उत्पन्न कर सकते हैं। इन रोगों की रोकथाम के लिए निम्नलिखित प्रबंधन गतिविधियाँ अपनानी चाहिए।

संक्रमित फसल अवशेषों को हटाना एवं नष्ट करना

खरीफ फसल की कटाई के बाद खेत से रोगग्रस्त जड़ों, तनों, ठूँठों तथा अन्य संक्रमित पौध अवशेषों को एकत्र करके सुरक्षित तरीके से नष्ट करना चाहिए। संक्रमित अवशेष अनेक मृदाजनित रोगजनकों के जीवित रहने और अगली फसल में संक्रमण फैलाने का प्रमुख स्रोत होते हैं। इसलिए खेत की नियमित सफाई करनी चाहिए तथा रोगग्रस्त अवशेषों को बिना उचित उपचार के मिट्टी में नहीं मिलाना चाहिए।

गहरी जुताई एवं मिट्टी को सूर्य के प्रकाश के संपर्क में लाना

फसल कटाई के बाद मिट्टी की स्थिति एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार खेत की जुताई करनी चाहिए। इससे मिट्टी की ऊपरी परत में उपस्थित कुछ रोगजनकों के संक्रमणकारी स्रोत सूर्य के प्रकाश और सूखने के संपर्क में आ सकते हैं। हालाँकि, केवल गहरी जुताई से सभी रोगजनकों का उन्मूलन संभव नहीं है। जुताई की गहराई और विधि का चयन मिट्टी के प्रकार, नमी तथा संबंधित रोगजनक की प्रकृति के आधार पर करना चाहिए।

मृदा में जैविक पदार्थों का उचित प्रबंधन

मिट्टी की उर्वरता एवं संरचना में सुधार के लिए अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या परिपक्व कम्पोस्ट का उपयोग करना चाहिए। जैविक पदार्थ लाभकारी सूक्ष्मजीवों की सक्रियता बढ़ाने और मिट्टी में जैविक संतुलन बनाए रखने में सहायक हो सकते हैं। उपयुक्त परिस्थितियों में हरी खाद या आवरण फसलों का उपयोग भी किया जा सकता है। हालाँकि, कच्चे अथवा संक्रमित पौध अवशेषों को खेत में डालने से बचना चाहिए।

जैव-नियंत्रण कारकों का प्रयोग

मृदाजनित रोगों के प्रबंधन के लिए ट्राइकोडर्मा विरिडी तथा ट्राइकोडर्मा हार्ज़ियानम जैसे जैव-नियंत्रण कारकों का उपयोग किया जा सकता है। इनकी उपयुक्त एवं गुणवत्तायुक्त अनुशंसित फॉर्मूलेशन को गोबर की खाद या कम्पोस्ट के माध्यम से प्रयोग करना चाहिए। ये लाभकारी कवक कुछ रोगजनकों की वृद्धि को रोकने तथा मृदा में सूक्ष्मजीवी संतुलन बनाए रखने में सहायक होते हैं। इनका प्रयोग उत्पाद के लेबल और स्थानीय कृषि विशेषज्ञों की अनुशंसाओं के अनुसार करना चाहिए।

फसल चक्र अपनाना

एक ही संवेदनशील फसल को लगातार उगाने से मृदा में विशिष्ट रोगजनकों का संक्रमणकारी स्रोत बढ़ सकता है। इसलिए आगामी रबी मौसम में ऐसी फसल का चयन करना चाहिए, जो संबंधित रोगजनक की पोषक फसल न हो। उचित फसल चक्र से कुछ मृदाजनित रोगों की तीव्रता कम की जा सकती है। हालाँकि, स्क्लेरोशियम रॉल्फ्सी जैसे व्यापक पोषक परास वाले रोगजनकों के विरुद्ध फसल चक्र का प्रभाव सीमित हो सकता है।

6. उचित जल निकास एवं सिंचाई प्रबंधन

खेत में जलभराव को रोकना, जल निकास नालियों की सफाई करना तथा आवश्यकता के अनुसार उचित क्यारियाँ या मेड़ें बनाना आवश्यक है। अत्यधिक नमी कई प्रकार के आर्द्रगलन, जड़ सड़न तथा कॉलर सड़न रोगों को बढ़ावा दे सकती है। इसलिए सिंचाई आवश्यकता के अनुसार करनी चाहिए और मिट्टी में अनावश्यक नमी जमा नहीं होने देनी चाहिए। साथ ही, यह ध्यान रखना चाहिए कि कुछ रोगजनक शुष्क परिस्थितियों में भी जीवित रह सकते हैं।

रबी फसल की बुवाई से पहले बीजोपचार

रबी फसल की बुवाई से पहले स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का चयन करना चाहिए। संबंधित फसल और लक्षित रोगजनक के अनुसार अनुशंसित एवं पंजीकृत कवकनाशी या उपयुक्त जैविक कारक से बीजोपचार करना चाहिए। बीजोपचार से बीजों तथा प्रारंभिक पौधों को कुछ बीज एवं मृदाजनित रोगों से सुरक्षा मिल सकती है। जैविक और रासायनिक बीजोपचारों को एक साथ तभी प्रयोग करना चाहिए, जब उनकी अनुकूलता की पुष्टि हो।

निष्कर्ष

खरीफ फसल की कटाई के बाद खेत की स्वच्छता, उचित जुताई, जैविक पदार्थों का प्रबंधन, जैव-नियंत्रण कारकों का प्रयोग, फसल चक्र, संतुलित सिंचाई तथा बीजोपचार जैसी गतिविधियाँ अपनाकर आगामी रबी फसल में मृदाजनित रोगों के जोखिम को कम किया जा सकता है। इन सभी उपायों को एकीकृत रोग प्रबंधन के अंतर्गत अपनाना अधिक उपयोगी है।



ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

बकरी पालन में सावधानी: बकरी से इंसानों में फैलने वाले रोगों से कैसे बचें?

डॉ. अनीता तिवारी, डॉ. बालेश्वरी दीक्षित
पशुजन स्वास्थ्य एवं महामारी विभाग

डॉ. कंचन वालवडकर पशु चिकित्सा विज्ञान

डॉ. सुलोचना सेन पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग,
पशुचिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

बकरी पालन ग्रामीण भारत में आजीविका का एक महत्वपूर्ण साधन है। कम लागत, तेज़ी से प्रजनन क्षमता तथा सीमित संसाधनों में पालन की सुविधा के कारण इसे "गरीबों की गाय" भी कहा जाता है। बकरी का दूध, मांस और खाद किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लेकिन यदि पशुओं की उचित देखभाल, स्वच्छता और स्वास्थ्य प्रबंधन पर ध्यान न दिया जाए, तो कुछ संक्रामक रोग बकरियों से मनुष्यों में भी फैल सकते हैं। ऐसे रोगों को जूनोटिक (Zoonotic) रोग कहा जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, मनुष्यों में उभरने वाले अधिकांश नए संक्रामक रोग पशुओं से ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए बकरी पालन करते समय पशु एवं मानव दोनों के स्वास्थ्य की सुरक्षा आवश्यक है ।

जूनोटिक रोग क्या हैं?

जूनोटिक रोग वे संक्रामक रोग हैं जो पशुओं से मनुष्यों या मनुष्यों से पशुओं में फैल सकते हैं। संक्रमण सीधे संपर्क, कच्चे दूध, अधपके मांस, दूषित पानी, प्रसव के दौरान निकलने वाले पदार्थों या संक्रमित वातावरण के माध्यम से हो सकता है।

बकरियों से मनुष्यों में फैलने वाले प्रमुख रोग

1. **रेबीज़ (Rabies):** रेबीज़ एक घातक वायरल रोग है, जो संक्रमित जानवर के काटने या उसकी लार के खुले घाव से संपर्क में आने पर फैल सकता है। एक बार लक्षण दिखाई देने के बाद इसका उपचार लगभग असंभव होता है।

मुख्य लक्षण: तेज बुखार, बेचैनी और भ्रम, पानी से डर लगना, तंत्रिका तंत्र प्रभावित होना

बचाव

- किसी भी जानवर के काटने पर घाव को 15 मिनट तक साबुन और बहते पानी से धोएँ।
- तुरंत चिकित्सक से संपर्क करें।
- संदिग्ध पशु की जांच पशु चिकित्सक से कराएँ।

2. **ब्रूसेलोसिस (Brucellosis):** यह एक गंभीर जीवाणुजनित रोग है, जो संक्रमित बकरी के कच्चे दूध, अधपके मांस या प्रसव के समय निकलने वाले पदार्थों के संपर्क से फैलता है।

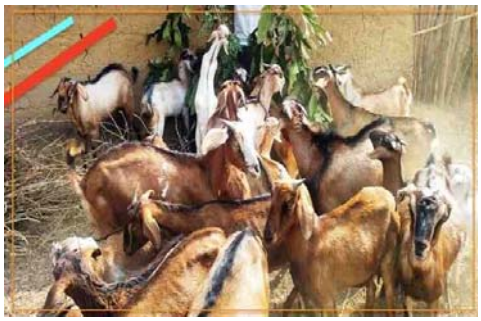
मनुष्यों में लक्षण: बार-बार बुखार आना, जोड़ों और मांसपेशियों में दर्द, अत्यधिक कमजोरी, लंबे समय तक बीमारी बने रहना

पशुओं में लक्षण: बार-बार गर्भपात, बांझपन, दूध उत्पादन में कमी

बचाव

* हमेशा उबला या पाश्चुरीकृत दूध ही पिएँ।
* प्रसव कराते समय दस्ताने पहनें।
* गर्भपात करने वाले पशुओं की तुरंत जांच कराएँ।

3. **ऑर्फ (Orf):** यह एक वायरल त्वचा रोग है जो मुख्यतः बकरी और भेड़ में होता है। संक्रमित पशु के मुंह या त्वचा पर बने घावों को छूने से मनुष्यों के हाथों पर भी दर्दयुक्त घाव बन सकते हैं।



बचाव

- संक्रमित पशु को अलग रखें।
- घावों को नंगे हाथों से न छुएँ।
- दस्ताने पहनकर ही उपचार करें।

4. **खुजली (सरकोप्टिक मैन्ज):** यह त्वचा में रहने वाले सूक्ष्म घुन (माइट) के कारण होने वाला रोग है।

मुख्य लक्षण: तीव्र खुजली, पपड़ी बनना, बाल झड़ना, त्वचा मोटी होना

बचाव

- संक्रमित पशु का शीघ्र उपचार कराएँ।
- पशु को संभालने के बाद हाथ साबुन से धोएँ।
- पशुशाला की नियमित सफाई करें।

5. **दाद (Ringworm):** यह फफूंद (फंगस) से होने वाला त्वचा रोग है, जो संक्रमित पशु की त्वचा, बाल या उपकरणों के माध्यम से मनुष्यों में फैल सकता है।

मुख्य लक्षण: गोलाकार लाल धब्बे, खुजली, त्वचा का छिलना

बचाव

* संक्रमित पशु को अलग रखें।
* ब्रश, रस्सी और अन्य उपकरणों को नियमित रूप से साफ एवं कीटाणुरहित करें।

6. **क्लैमाइडियोसिस:** यह रोग मुख्यतः गर्भपात करने वाली बकरियों से फैलता है। संक्रमित गर्भनाल, भ्रूण या प्रसव सामग्री के संपर्क में आने से मनुष्य संक्रमित हो सकता है।

विशेष सावधानी: गर्भवती महिलाओं को ऐसे पशुओं के संपर्क से बचना चाहिए।

7. **लिस्टिरियोसिस:** यह रोग लिस्टेरिया नामक जीवाणु से होता है। संक्रमण मुख्यतः कच्चे दूध तथा दूषित दुग्ध उत्पादों के सेवन से फैलता है।

बचाव

* हमेशा उबला हुआ दूध पिएँ।
* साफ-सुथरे एवं सुरक्षित दुग्ध उत्पादों का ही उपयोग करें।

8. **सैल्मोनेला संक्रमण:** यह रोग दूषित दूध, मांस या संक्रमित पशुओं के मल के संपर्क से फैल सकता है।

मुख्य लक्षण: दस्त, बुखार, पेट दर्द, उल्टी

बचाव

* भोजन अच्छी तरह पकाकर खाएँ।
* हाथों की स्वच्छता बनाए रखें।

9. **क्यू फीवर (Q Fever):** यह रोग संक्रमित बकरियों के प्रसव के दौरान निकलने वाले पदार्थों तथा दूषित धूल के कणों के माध्यम से फैलता है।

मुख्य लक्षण: तेज बुखार, सिरदर्द, शरीर में दर्द, अत्यधिक थकान, गर्भवती महिलाओं में यह गर्भपात का कारण भी बन सकता है।

बचाव ही सबसे अच्छा उपचार: बकरियों से मनुष्यों में फैलने वाले अधिकांश संक्रमणों से कुछ सरल सावधानियाँ अपनाकर आसानी से बचा जा सकता है।

- पशुओं का नियमित टीकाकरण एवं कृमिनाशन कराएँ।
- पशुशाला को प्रतिदिन साफ रखें और समय-समय पर कीटाणुनाशक का छिड़काव करें।
- बीमार पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें।
- हमेशा उबला या पाश्चुरीकृत दूध ही उपयोग करें।
- प्रसव कराते समय दस्ताने, मास्क एवं एप्रन पहनें।
- पशुओं को छूने के बाद साबुन से हाथ अवश्य धोएँ।
- मृत पशुओं का वैज्ञानिक तरीके से निस्तारण करें।
- किसी भी असामान्य लक्षण पर तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करें।

इन बातों का हमेशा ध्यान रखें

- कच्चा दूध या अधपका मांस न खाएँ।
- बीमार पशु को स्वस्थ झुंड के साथ न रखें।
- बिना दस्ताने के गर्भपात या प्रसव सामग्री को न छुएँ।
- पशुओं का उपचार बिना पशु चिकित्सक की सलाह के न करें।
- संक्रमित पशु के दूध का सेवन न करें।
- पशुशाला में गंदगी और नमी जमा न होने दें।
- बच्चों और गर्भवती महिलाओं को बीमार पशुओं के संपर्क में न आने दें।

निष्कर्ष

बकरी पालन तभी लाभदायक और सुरक्षित है जब पशुओं के स्वास्थ्य के साथ-साथ परिवार के स्वास्थ्य का भी ध्यान रखा जाए। याद रखें "स्वच्छ पशुशाला, स्वस्थ पशु और जागरूक किसान–यही सुरक्षित बकरी पालन और स्वस्थ परिवार की पहचान है। अधिकांश जूनोटिक रोगों से केवल थोड़ी-सी सावधानी, नियमित टीकाकरण, स्वच्छता तथा समय पर पशु चिकित्सकीय परामर्श द्वारा आसानी से बचा जा सकता है। यदि किसी पशु में बार-बार गर्भपात, तेज बुखार, त्वचा पर घाव, अत्यधिक खुजली या अन्य असामान्य लक्षण दिखाई दें, तो स्वयं उपचार करने के बजाय तुरंत नजदीकी पशु चिकित्सक से संपर्क करें। स्वस्थ पशु ही स्वस्थ परिवार और समृद्ध किसान की पहचान हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

'वायरोफेज- जब एक वायरस को दूसरे वायरस से खतरा हो'

डॉ. लवकुश वर्मा, डॉ. अंजू नायक
डॉ. वन्दना गुप्ता, डॉ. पूनम शाक्या
डॉ. अक्षय गर्ग, डॉ. संजय शुक्ला
डॉ. भावना गुप्ता, डॉ. अदिति विश्वकर्मा
डॉ श्वेता राजौरिया पशुसूक्ष्म विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, ना. दे. प. वि. वि., जबलपुर (म.प्र.)

परिचयः वायरोफेज एक ऐसा छोटा डीएनए वायरस है जो स्वयं स्वतंत्र रूप से नहीं बढ़ता है हालांकि जो विशाल वायरस (giant virus) की प्रतिकृति बनाने वाली व्यवस्था का उपयोग करके स्वयं अपनी संख्या बढ़ाते हैं । इन्हें वायरोफेज कहा जाता है। वायरोफेज शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, "Viro" अर्थात वायरस और "phage" अर्थात खाने या नष्ट करने वाला। वायरोफेज को फ़वायरस को संक्रमित करने वाला वायरसफ़ कहा जाता है।

वायरोफेज की खोजः वायरोफेज (Virophage) की खोज वर्ष 2008 में हुई थी।इस वायरोफेज का नाम स्पुतनिक वाइरोफेज रखा गया यह एक विशाल वायरस, जिसे मिमिवायरस के नाम से जाना जाता था ।

वायरोफेज और सुपरपैरासिटिज़्म

वायरोफेज की सबसे अनोखी विशेषता सुपरपैरासिटिज़्म (Superparasitism) है। सामान्यतः परजीवी किसी जीवित कोशिका या जीव पर निर्भर रहता है, लेकिन वायरोफेज इससे एक कदम आगे है। यह एक विशाल वायरस (giant virus) के प्रतिकृति व्यवस्था (replication machinery) पर निर्भर होकर अपनी प्रतिकृति बनाता है। इसलिए इसे कभी-कभी "परजीवी का भी परजीवी" कहा जाता ।

अमीबा→ मिमिवायरस→ स्पुतनिक वायरोफेज –यहाँ अमीबा मूल मेजबान कोशिका है, मिमिवायरस अमीबा को संक्रमित करने वाला विशाल वायरस है और स्पुतनिक वायरोफेज मिमिवायरस की प्रतिकृति प्रणाली पर निर्भर करता है। उदाहरण-स्पुतनिक वायरोफेज (Sputnik virophage),मैवायरस (Mavirus),ज़मिलॉन (Zamilon).

वायरोफेज की कार्य प्रणाली

वायरोफेज, अमीबा के अंदर विशाल वायरस द्वारा बनाई गई वायरल फैक्ट्री का उपयोग करके स्वयं की संख्या बढ़ाता है और कई बार उस विशाल वायरस की प्रतिकृति को कम कर देता है।

वायरोफेज का महत्व

विशाल वायरस की वृद्धि को नियंत्रित करता है, सूक्ष्मजीवी पारिस्थितिकी में संतुलन बनाए रखने में मदद करता है, अमीबा जैसे मेजबानों में वायरस की संख्या को प्रभावित करता है। वायरस-वायरस इंटरैक्शन के बीच होने वाली पारस्परिक क्रियाओं को समझने में सहायक। सूक्ष्मजीवों में प्रतिस्पर्धा और परजीविता को समझने में मदद करता है।

मनुष्यों के लिए खतरनाक

वायरोफेज मनुष्यों के लिए सीधे हानिकारक नहीं हैं। इनका प्रमुख महत्व विषाणु विज्ञान, विषाणु विकास तथा सूक्ष्मजीवी पारिस्थितिकी को समझने में है।

भविष्य में संभावनाएं: वायरोफेज की खोज ने वायरस विज्ञान में एक नया शोध क्षेत्र खोल दिया है। भविष्य में इनके अध्ययन से विशाल वायरस के विकास (giant viruses evolution), प्रतिकृति (replication) और पारिस्थितिक व्यवहार (echological behaviour) के बारे में नई जानकारी मिल सकती है। यह भी संभव है कि वायरोफेज की आणविक कार्यप्रणाली (molecular mechanism) को समझकर वैज्ञानिक यह पता लगा सकें कि किसी विशाल वायरस की प्रतिकृति को प्राकृतिक रूप से कैसे प्रभावित किया जा सकता है। हालांकि, इनके किसी चिकित्सीय या उपचारात्मक उपयोग की संभावना को लेकर अभी और शोध की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

वायरोफेज ने हमें यह समझाया है कि वायरस की दुनिया हमारी सोच से कहीं अधिक जटिल और रोचक है। जहाँ एक वायरस किसी कोशिका को संक्रमित करता है, वहीं दूसरा वायरस उसी वायरस की वृद्धि को प्रभावित कर सकता है। वायरोफेज बड़े वायरस की प्रतिकृति में बाधा डालकर प्रकृति में सूक्ष्मजीवी संतुलन बनाए रखने में भूमिका निभा सकते हैं। इनके अध्ययन से वायरसों के बीच होने वाले संबंधों को समझने का एक नया रास्ता खुला है।



ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

मसूर फसल के प्रमुख रोग एवं प्रबंधन

श्रद्धा कर्चो सहायक प्राध्यापक, पादप रोग विज्ञान
रमेश अमूले तकनीकी सहायक, पादप रोग विज्ञान
कृषि महाविद्यालय, वारासिवनी, बालाघाट (म.प्र.)

मसूर की दाल दुनिया के कई हिस्सों में महत्वपूर्ण फ़सल की भुमिका निभाती है। जिसकी खेती में अब विभिन्न उत्पादन प्रणालियों के तहत की जाती है। मसूर की फ़सल बैक्टीरिया, कवक, वायरस और निमेटोड के कारण होने वाली कई बीमारियों से प्रभावित होती है। कुछ रोग दुनियाभर में मसूर की खेती करने वाली अधिकांश क्षेत्रों में आम है। जबकि अन्य कुछ उत्पादन क्षेत्रों में आम हैं, जबकि कुछ उत्पादन क्षेत्रों तक ही सीमित है किसी विशेष बीमारी का आर्थिक महत्व ज़रूरी नहीं है की उसकी भौगोलिक वितरण से संबंधित है। किसी भी फ़सल में बीमारी की घटना सीमित हो सकती है लेकिन फिर भी यह महत्वपूर्ण आर्थिक नुक़सान का कारण बन सकती हैं। अनुकूल परिस्थितियों में ये रोग अकेले या सामूहिक रूप से अनाज की उपज और गुणवत्ता दोनों में महत्वपूर्ण कमी ला सकते हैं। इसलिए, मसूर की स्थाई उत्पादकता और लाभ सुनिश्चित करने के लिए इन रोगों का उचित प्रबंधन आवश्यक है।

भारत में सन 1934 में अविभाजित बंगाल में मसूर के ऊकठा रोग को पहली बार देखा गया था। ये एक मृदा जनित रोग है जो पूरे भारत में दूर दूर तक फैला तथा गंभीर बीमारी के रूप में जाना जाता है। यह भारत में 1978 में मध्य प्रदेश कि नर्मदा घाटी में मसूर के रतुआ रोग का भयंकर प्रकोप दर्ज किया गया था। उत्तराखंड के तराई क्षेत्र और उसके आस पास रतुआ रोग का प्रकोप देखा गया जिससे उत्पादन में काफ़ी नुक़सान पता है।

रोगों के नाम	रोगजनक
एस्कॉकाइटा ब्लाईट	एस्कॉकाइटा लेंटिस
ऊकठा रोग	फ़्यूज़रियम ऑक्सिस्पोरम
3 रतुआ रोग	यूरोमाइसिस विसिए फेबे
4 मोजेक रोग	बेगोमो वायरस

एस्कॉकाइटा ब्लाईट
रोगजनक : एस्कॉकाइटा लेंटिस




लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण पुष्प आने के समय अथवा फलियाँ बनने के समय देखे जा सकते हैं। यह रोग कम तापमान और बीच बीच में वर्षा तथा आर्द्रता की मात्रा बढ़ने से प्रकोप अधिक होता है। पौधों की संख्या सधन होने के कारण भी ये आने की संभावनाएं बढ़ जाती है। पौधों के निचले भाग में भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। यह धब्बे तनौ एवं फलियो में भी दिखाई देते हैं, जिनके। किनारे गहरे भूरे रंग के होते हैं, जिससे उत्पादन में कमी आती है। यह रोग मुख्य रूप से मृदा एवं बीज के द्वारा फैलता है।

रोकथाम

1. मसूर कि रोग प्रतिरोधी किस्मों का ही चयन करे । 2. मसूर के बीजों की बुवाई से पूर्व थायरम या मैंकोज़ेब 2.5 ग्रा/किलो बीज की दर से बीजोपचारित करें। 3. संक्रमित पौधों को जड़ से उखाड़ कर नष्ट कर दें। 4. पौधों को उचित दूरी पर लगाएं 5. कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50% डबल्यू. पी. 500-600 ग्रा/एकर की दर से छिड़काव करें।

6. डिफ़ानोकॉनोज़ोल 25% ई.सी. का छिड़काव 2 एमएल/लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करे ।

ऊकठा रोग

रोगजनक- फ़्यूज़रियम ऑक्सिस्पोरम

लक्षण- यह एक मृदा जनित रोग है.जो खेतों के बीच बीच में चकती के रूप में दिखाई देता है। यह रोग सामान्यतः पौध अवस्था में अथवा पुष्प आने के समय में इस रूप के लक्षण दिखाई देते हैं। पौधा अवस्था में पौध झुक जाता है, उसकी पत्तियां सूख जाती है एवं पौधा मर जाता है। मसूर की पत्तियां पीली हो कर मुरझाने लगती है। तने के निचले हिस्से पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। तनो को चीर कर देखने पर उसमें भुरे रंग का कवक दिखाई देता है।




रोकथाम

1. मसूर के साथ गेहुं और मक्का को फसल चक्र कि रूप में अपनाए ।
2. खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिये।
3. गर्मी में गहरी जुतायी करे ।
4. खेतों में उपस्थित फ़सलो के अवशेषों को नष्ट करे ।
5. थायरम + कार्बोक्सिन से 4 ग्रा/किलो बीज की दर से बीजोपचारित करें।
6. रोग प्रतिरोधी किस्म पंत एल 4, पंत एल 6, पंत एल 8 और नूरी का चयन करे ।

रतुआ रोग

रोगजनक- यूरोमाइसिस विसिए फेबे

लक्षण- पत्तियाँ, डंठल और तने पर रतुआ रोग के धब्बे दिखाई देते हैं। प्रारंभ में यह धब्बे पत्तियों की निचली सतहों पर और फलियों पर एक करके या छोटे समूहों में गोलाकार रूप में पीले रंग की पिक्नीडिया दिखाई देते हैं। बाद में पत्तियों, तने और फलियों में की सतह पर भूरे रंग की यूरीडियल और दिखाई देते हैं, जो 1 मी.मी. व्यास की अंडाकार से गोलाकार आकार के होते हैं। यह स्पोर आपस में मिलकर पत्तियों की अधिक भाग को संक्रमित कर देता है। रोग की अधिक प्रकोप से पत्तियाँ झड़ जाती है और पौधे समय से पहले ही सूख जाते हैं। प्रभावित पौधों की फलियों में दाने नहीं बनते हैं, यदि बीज बन जाते हैं तो बीज आकार में छोटे एवं शुभ सिकुडे हुए होते हैं।




रोकथाम

1. रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें जैसे के शेखर 3, शेखर 4, पंत एल 639 और पंत एल 406 ।
2. स्वस्थ बीच का चयन करें ।
3. फसल चक्र अपनाना चाहिए।
4. आस पास की जगह को खरपतवार रहित रखना चाहिए
5. खेत में पड़े अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए
6. रोग दिखाई देने पर मैंकोज़ेब 0.2त्न या कैलेक्सिन 0.2% का छिड़काव करना चाहिए।
7. डायथेन M-45 का छिड़काव बहुत प्रभावी होता है।

मोज़ैक रोग
रोगजनक- बेगोमो वायरस

लक्षण

मोज़ैक वायरस रोक से प्रभावित मसूर के पौधों की पत्तियों पर पीले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। धीरे धीरे इन धब्बों का आकार बदलने लगता है तथा इस रोग के लक्षण पौधों की तनों पर भी दिखाई देते हैं। सामान्यतः इस रोग के लक्षण पत्तियों की शिराओं में दिखाई देते हैं जैसे ही रोक का प्रकोप बढ़ने लगता है पत्तियां सिकुड़ने लगती है। पौधों की वृद्धि नहीं होती है, फूल बनने में समस्या होती है, यदि फलियों का निर्माण होता है तो उसमें पीले रंग के धब्बे उबारने रखते हैं। फलियों का आकार बहुत छोटा होता है जिससे उत्पादन में कमी आती है.

रोकथाम

1. वायरस प्रतिरोधी मसूर की किस्मों का चयन करें।
2. संक्रमित पौधे को खेत से तुरंत उखाड़कर नष्ट करना एवं जला देना चाहिए।
3. रोग के प्रारंभिक शुरुआत में नीम के तेल का 2-3 मि.ली. / लीटर पानी की साथ मिलाकर छिड़काव करें।
4. कीटनाशी दवा इमडाक्लोप्रिड 200 एस. एल. 2 मिली लीटर पानी के साथ मिलाकर स्प्रे करें।
5. क्लोरोपाइरिफ़ॉस 50% + साइपरमेथ्रिन 5% इ.सी. कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

सर्दी के मौसम में लेयर मुर्गियों का वैज्ञानिक प्रबंधन

डॉ. अनिल कुमार गिरि सहायक
प्राध्यापक, कृषि महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

1. प्रस्तावना: भारत में कुक्कुट पालन ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में रोजगार, स्वरोजगार तथा आय का एक महत्वपूर्ण साधन बन चुका है। अंडा उत्पादन के क्षेत्र में व्यावसायिक लेयर मुर्गियों का विशेष महत्व है। देश में लाखों किसान एवं उद्यमी लेयर फार्मिंग के माध्यम से अंडों का उत्पादन कर अपनी आजीविका चला रहे हैं। मुर्गी पालन में प्रत्येक मौसम की अपनी अलग चुनौतियां होती हैं, विशेषकर सर्दियों के मौसम में कम तापमान, ठंडी हवाएं, कोहरे, कम धूप तथा दिन की छोटी अवधि के कारण मुर्गियों के स्वास्थ्य एवं अंडा उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। यदि इस मौसम में मुर्गियों का उचित प्रबंधन नहीं किया जाए तो अंडा उत्पादन में कमी, दाना खाने की मात्रा में परिवर्तन, श्वसन संबंधी समस्याएं तथा अंडों की गुणवत्ता में गिरावट देखने को मिल सकती है। सर्दियों में मुर्गियों को केवल ठंड से बचाना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनके आवास, आहार, पानी, प्रकाश, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता का संतुलित प्रबंधन करना भी आवश्यक है। वैज्ञानिक तरीके अपनाकर सर्दियों में भी मुर्गियों से अच्छा अंडा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।



2. सर्दी के मौसम का मुर्गियों के स्वास्थ्य एवं अंडा उत्पादन पर प्रभाव: सामान्यतः मुर्गियां अपने शरीर का तापमान बनाए रखने में सक्षम होती हैं, लेकिन जब वातावरण का तापमान बहुत कम हो जाता है तो शरीर की गर्मी बनाए रखने के लिए उन्हें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। सर्दियों में निम्नलिखित समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं-

1. दाना खाने की मात्रा में वृद्धि: कम तापमान में शरीर का तापमान बनाए रखने हेतु मुर्गियां अधिक ऊर्जा खर्च करती हैं। इसलिए उनकी ऊर्जा की आवश्यकता और दाना खाने की मात्रा बढ़ सकती है।

2. अंडा उत्पादन में कमी: सर्दियों में दिन की प्राकृतिक प्रकाश अवधि कम हो जाती है। यदि कृत्रिम प्रकाश की उचित व्यवस्था नहीं की जाती है तो अंडा उत्पादन प्रभावित हो सकता है।

3. श्वसन संबंधी समस्याएं: ठंडी हवाओं के सीधे संपर्क, खराब वायु संचार तथा अधिक नमी के कारण श्वसन संबंधी बीमारियों का खतरा बढ़ सकता है।

4. पानी की खपत में कमी: ठंड के मौसम में मुर्गियां सामान्यतः कम पानी पीती हैं। इससे शरीर की सामान्य क्रियाओं एवं अंडा उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

5. बिछावन में नमी एवं अमोनिया गैस का बढ़ना: सर्दियों में वायु संचार कम होने के कारण मुर्गीघर में नमी एवं अमोनिया गैस जमा हो सकती है। अतः सर्दियों में उचित प्रबंधन अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

3. मुर्गीघर का उचित प्रबंधन (Poultry House Management)-सर्दियों में मुर्गियों को ठंडी हवाओं, कोहरे, वर्षा तथा अत्यधिक नमी से बचाने के लिए मुर्गीघर का उचित प्रबंधन करना चाहिए।

(क) ठंडी हवाओं से बचाव : इसके लिए निनम लिखित उपाय करना चाहिए :- * मुर्गीघर के खुले किनारों पर आवश्यकतानुसार पर्दे या तिरपाल की व्यवस्था करनी चाहिए। * ठंडी हवाओं का सीधा प्रवेश मुर्गियों के शरीर पर नहीं होना चाहिए। * विशेषकर रात के समय तथा सुबह जल्दी ठंडी हवाओं से बचाव करना चाहिए। * मुर्गीघर में धूप आने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। * छत में पानी का रिसाव नहीं होना चाहिए तथा फर्श सूखा रहना चाहिए।

(ख) उचित वायु संचार (Ventilation) ; सर्दियों में कई मुर्गीपालक ठंड से बचाने के लिए मुर्गीघर के सभी दरवाजे एवं खिड़कियां बंद कर देते हैं। यह एक गलत प्रबंधन है। मुर्गियों के मल एवं सांस से मुर्गीघर में नमी तथा अमोनिया गैस उत्पन्न होती है। यदि पर्याप्त वायु संचार नहीं होगा तो इनकी मात्रा बढ़ सकती है, जिससे आंखों में जलन, श्वसन संबंधी समस्याएं तथा उत्पादन में गिरावट हो सकती है। इसलिए ठंडी हवा के सीधे झोंकों से मुर्गियों को बचाते हुए ताजी हवा के आने-जाने की व्यवस्था बनाए रखनी चाहिए।

(ग) तापमान का प्रबंधन ; व्यावसायिक लेयर मुर्गियों के लिए तापमान का प्रबंधन उनकी आयु, नस्ल, स्वास्थ्य एवं उत्पादन अवस्था के अनुसार करना चाहिए। सामान्यतः लगभग 18-24°C का वातावरण वयस्क लेयर मुर्गियों के लिए अनुकूल माना जा सकता है, हालांकि अलग-अलग स्ट्रेन की प्रबंधन पुस्तिकाओं में कुछ अंतर हो सकता है। मध्य भारत जैसे मध्य प्रदेश में सामान्य सर्दियों के दौरान स्वस्थ वयस्क मुर्गियों के लिए हर समय हीटर चलाना आवश्यक नहीं होता। यदि तापमान बहुत नीचे चला जाए तो सुरक्षित हीटिंग व्यवस्था की जा सकती है। हीटर का उपयोग करते समय आग लगने, बिजली के झटके तथा धुएं से बचाव का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

4. बिछावन (Litter) का उचित प्रबंधन-मुर्गियों के स्वास्थ्य एवं आराम के लिए सूखा और साफ बिछावन बहुत महत्वपूर्ण है। सर्दियों में फर्श की नमी तथा ठंड से बचाव के लिए धान की भूसी, लकड़ी का बुरादा अथवा अन्य उपयुक्त बिछावन सामग्री का उपयोग किया जा सकता है।

बिछावन के प्रबंधन में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए: * बिछावन हमेशा सूखा एवं भुरभुरा रखना चाहिए। * गीले एवं चिपके हुए बिछावन को तुरंत हटाना चाहिए। * आवश्यकता के अनुसार नया बिछावन डालना चाहिए। * पानी की टंकियों एवं ड्रिंकरों के आसपास नमी जमा नहीं होने देनी चाहिए। * बिछावन में अत्यधिक नमी होने पर अमोनिया गैस की समस्या बढ़ सकती है। अच्छा बिछावन मुर्गियों को आरामदायक वातावरण प्रदान करता है तथा उनके स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायता करता है।

5. संतुलित आहार का प्रबंधन (Feeding Management)-सर्दियों में लेयर मुर्गियों के आहार प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। कम तापमान में शरीर का तापमान बनाए रखने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ जाती है। इसलिए संतुलित आहार की निरंतर उपलब्धता आवश्यक है।

(क) ऊर्जा की पर्याप्त उपलब्धता : मुर्गियों को उनकी आयु एवं उत्पादन अवस्था के अनुसार संतुलित लेयर राशन देना चाहिए। सर्दियों में दाना खाने की मात्रा बढ़ सकती है, इसलिए फीडर में पर्याप्त दाना उपलब्ध होना चाहिए। यदि मुर्गियों की ऊर्जा आवश्यकता बढ़ती है तो आहार में ऊर्जा का संतुलन पोषण विशेषज्ञ की सलाह से किया जा सकता है। बिना आवश्यकता आहार में अधिक तेल या वसा मिलाना उचित नहीं है।

(ख) प्रोटीन एवं अमीनो अम्ल : अंडे के निर्माण, शरीर के रखरखाव एवं पंखों की गुणवत्ता हेतु प्रोटीन आवश्यक है। इसलिए आहार में पर्याप्त मात्रा में संतुलित प्रोटीन तथा आवश्यक अमीनो अम्ल जैसे लाइसिन एवं मेथियोनीन उपलब्ध होने चाहिए।

(ग) कैल्शियम एवं फास्फोरस : अंडे के छिलके के निर्माण में कैल्शियम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लेयर मुर्गियों के आहार में पर्याप्त कैल्शियम, उपलब्ध फास्फोरस एवं विटामिन D3 होना आवश्यक है। संतुलित कैल्शियम की उपलब्धता से अंडों के छिलके की मजबूती बनाए रखने में सहायता मिलती है। कैल्शियम की कमी से पतले छिलके एवं टूटे हुए अंडों की समस्या बढ़ सकती है।

(घ) विटामिन एवं खनिज तत्व : विटामिन A, D3, E तथा बी-कॉम्प्लेक्स के साथ आवश्यक खनिज तत्व मुर्गियों के सामान्य स्वास्थ्य एवं उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण हैं। आहार में संतुलित विटामिन-मिनरल प्रीमिक्स का उपयोग करना चाहिए। किसी भी सप्लीमेंट का अनावश्यक या अत्यधिक उपयोग नहीं करना चाहिए।

विशेष सुझाव: सर्दियों में अचानक दाना बदलने से बचना चाहिए। दाने का परिवर्तन धीरे-धीरे करना चाहिए ताकि मुर्गियों की उत्पादन क्षमता प्रभावित न हो।

6. स्वच्छ एवं पर्याप्त पानी की व्यवस्था- अंडा उत्पादन में पानी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अंडे में लगभग 65% पानी होता है। इसलिए पानी की उपलब्धता में कमी होने पर अंडा उत्पादन एवं अंडे का आकार प्रभावित हो सकता है। सर्दियों में मुर्गियां अपेक्षाकृत कम पानी पीती हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें कम पानी उपलब्ध कराया जाए। मुर्गियों को दिन-रात साफ एवं ताजा पानी उपलब्ध कराना चाहिए। ध्यान रहे कि पानी की कमी होने पर मुर्गियां पर्याप्त दाना नहीं खा पाती हैं, जिससे उत्पादन प्रभावित हो सकता है।

7. प्रकाश व्यवस्था (Lighting Management)- लेयर मुर्गियों में अंडा उत्पादन बनाए रखने हेतु प्रकाश अवधि का विशेष महत्व है। प्रकाश का सीधा संबंध मुर्गियों की प्रजनन प्रणाली एवं अंडा उत्पादन से होता है। सर्दियों में दिन छोटे होने के कारण प्राकृतिक प्रकाश की अवधि कम हो जाती है। इसलिए कृत्रिम प्रकाश की सहायता से कुल प्रकाश अवधि को उचित स्तर पर बनाए रखना चाहिए।

लेयर मुर्गियों के लिए सामान्य प्रकाश कार्यक्रम * उत्पादन अवस्था में कुल प्रकाश अवधि सामान्यतः 16 घंटे प्रतिदिन रखी जाती है। * प्राकृतिक प्रकाश एवं कृत्रिम प्रकाश को मिलाकर कुल प्रकाश अवधि निर्धारित करनी चाहिए। * प्रकाश का समय नियमित होना चाहिए। * टाइमर का उपयोग करके प्रकाश व्यवस्था को स्वचालित बनाया जा सकता है। * बल्ब एवं LED लाइट की नियमित सफाई करनी चाहिए ताकि प्रकाश की तीव्रता समान बनी रहे। उदाहरण के लिए, यदि प्राकृतिक प्रकाश की अवधि 11 घंटे है तो कृत्रिम प्रकाश की सहायता से कुल प्रकाश अवधि 16 घंटे पूरी की जा सकती है।

महत्वपूर्ण सावधानी: प्रकाश अवधि में अचानक वृद्धि या कमी नहीं करनी चाहिए। लेयर मुर्गियों में प्रकाश कार्यक्रम को उनकी आयु एवं कंपनी की स्ट्रेन-विशिष्ट प्रबंधन पुस्तिका के अनुसार अपनाना चाहिए। उत्पादन अवस्था में एक बार स्थापित प्रकाश अवधि को बिना वैज्ञानिक कारण कम नहीं करना चाहिए।

8. स्वास्थ्य एवं रोग नियंत्रण (Health Management)- सर्दियों में मुर्गियों के स्वास्थ्य की नियमित निगरानी करना आवश्यक है। इस मौसम में ठंडी हवा, नमी, खराब वायु संचार तथा जैव सुरक्षा में लापरवाही के कारण विभिन्न रोगों का खतरा बढ़ सकता है।

विशेष रूप से निम्नलिखित रोगों के प्रति सतर्क रहना चाहिए:

(क) रानीखेत रोग (Newcastle Disease)-यह मुर्गियों का एक महत्वपूर्ण संक्रामक विषाणुजनित रोग है। इससे मुर्गियों में श्वसन एवं तंत्रिका तंत्र संबंधी लक्षण दिखाई दे सकते हैं तथा अंडा उत्पादन में गिरावट हो सकती है।

(ख) संक्रामक ब्रोंकाइटिस (Infectious Bronchitis)- यह एक विषाणुजनित रोग है, जो श्वसन तंत्र एवं प्रजनन प्रणाली को प्रभावित कर सकता है। इससे अंडा उत्पादन में कमी तथा अंडों के छिलकों की गुणवत्ता में गिरावट हो सकती है।

(ग) क्रॉनिक रेस्पिरेटरी डिजीज (CRD)-इस रोग में मुर्गियों में छींकना, खांसी, सांस लेने में परेशानी तथा नाक से स्राव जैसे लक्षण दिखाई दे सकते हैं। खराब वायु संचार एवं अमोनिया की अधिकता श्वसन संबंधी समस्याओं को बढ़ा सकती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

आंवले की खेती एवं प्रसंस्करण से अतिरिक्त आय

सुनित भदरगे पिएच.डी. शोध छात्र, (फल विज्ञान) बागवानी विभाग, स्कूल ऑफ एग्रीकल्चर, आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर-475001 (म.प्र.)

1. प्रस्तावना-भारत में फल उत्पादन किसानों की आय बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण साधन है। विभिन्न फल फसलों में आंवला (Phyllanthus emblica L.), जिसे भारतीय गूजबेरी (Indian Gooseberry) भी कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण औषधीय एवं पौष्टिक फल फसल है। इसके फलों में विटामिन-C, खनिज तत्व, फाइबर तथा विभिन्न जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं। आंवले की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी खेती कम वर्षा वाले क्षेत्रों तथा अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमि में भी की जा सकती है। यह पौधा सूखा सहन करने की क्षमता रखता है और उचित प्रबंधन के साथ लंबे समय तक उत्पादन देता है। आंवले का उपयोग केवल ताजे फल के रूप में ही नहीं, बल्कि मुरब्बा, कैंडी, अचार, जूस, पाउडर एवं अन्य प्रसंस्कृत उत्पादों के निर्माण में भी किया जाता है। इसलिए आंवले की खेती के साथ-साथ प्रसंस्करण अपनाकर किसान अपनी आय के अतिरिक्त स्रोत विकसित कर सकते हैं।

2. आंवले का महत्व एवं उपयोगिता: आंवला भारत की महत्वपूर्ण पारंपरिक फल फसलों में से एक है। इसके प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं- * इसमें विटामिन-C प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। * इसमें एंटीऑक्सीडेंट गुण वाले जैव सक्रिय यौगिक होते हैं। * फल का उपयोग खाद्य एवं प्रसंस्करण उद्योग में किया जाता है। * सूखे और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फल फसल है। * फल प्रसंस्करण से ग्रामीण स्तर पर रोजगार के अवसर पैदा होते हैं। * इसके फल, पत्तियों और बीजों का विभिन्न पारंपरिक उपयोगों में महत्व है।

3. जलवायु एवं भूमि का चयन-आंवले की खेती उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में सफलतापूर्वक की जा सकती है। यह गर्मी तथा सूखे की परिस्थितियों को सहन कर सकता है।

भूमि- अच्छी जल निकासी वाली दोमट या हल्की भारी मिट्टी उपयुक्त रहती है। आंवला कुछ हद तक लवणीय एवं क्षारीय मिट्टी में भी उगाया जा सकता है, लेकिन जलभराव वाली भूमि से बचना चाहिए।

जलवायु- गर्म एवं शुष्क जलवायु इसके विकास और उत्पादन के लिए अनुकूल होती है।

4. उन्नत किस्मों का चयन-व्यावसायिक खेती के लिए निम्नलिखित किस्मों पर विचार किया जा सकता है-

किस्म एवं प्रमुख विशेषता

NA-7- अच्छी गुणवत्ता एवं प्रसंस्करण के लिए उपयोगी

NA-10- व्यावसायिक खेती के लिए लोकप्रिय

Kanchan (NA-4)-फल उत्पादन के लिए उपयोगी

Krishna (NA-5)-अच्छी फल गुणवत्ता

Chakaiya-प्रसंस्करण के लिए महत्वपूर्ण किस्म

किस्म का चुनाव स्थानीय जलवायु, बाजार की मांग और प्रसंस्करण के उद्देश्य के अनुसार करना चाहिए।

5. पौधरोपण एवं बाग की स्थापना- आंवले का प्रवर्धन मुख्य रूप से बीज तथा वानस्पतिक विधियों से किया जाता है। व्यावसायिक बाग स्थापना के लिए कलम या बडिंग द्वारा तैयार पौधों को प्राथमिकता देनी चाहिए, ताकि किस्म की शुद्धता बनी रहे।

* पौधरोपण का उपयुक्त समय सामान्यतः वर्षा ऋतु है। * सामान्य बागों में 8×8 मीटर की दूरी अपनाई जा सकती है। * लगभग 6×6 मीटर दूरी भी उपयुक्त परिस्थितियों में अपनाई जाती है। * गड्ढों में सड़ी हुई गोबर की खाद एवं ऊपरी मिट्टी मिलाकर पौधरोपण करना चाहिए। * प्रारंभिक अवस्था में पौधों को नियमित सिंचाई एवं सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए।

6. खाद एवं उर्वरक प्रबंधन- अच्छी वृद्धि एवं फल उत्पादन के लिए संतुलित पोषण प्रबंधन आवश्यक है। * सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट का उपयोग करें। * मिट्टी परीक्षण के आधार पर रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करें। * जैव उर्वरकों का उपयोग मृदा स्वास्थ्य सुधारने में सहायक हो सकता है। * पौधों की आयु एवं उत्पादन अवस्था के अनुसार खाद की मात्रा निर्धारित करें। * जैविक पदार्थों का उपयोग मिट्टी की जल धारण क्षमता एवं संरचना सुधारने में मदद करता है।

7. सिंचाई एवं खरपतवार प्रबंधन- आंवले के पौधे स्थापित होने के बाद सूखे की स्थिति को सहन कर सकते हैं, लेकिन छोटे पौधों तथा फल विकास की अवस्था में आवश्यकतानुसार सिंचाई करना जरूरी है। ड्रिप सिंचाई से पानी की बचत की जा सकती है। पौधों के आसपास जैविक मल्चिंग करने से मिट्टी में नमी बनी रहती है और खरपतवारों की वृद्धि कम होती है।

8. फल तुड़ाई एवं उपज- आंवले के पौधे सामान्यतः रोपण के लगभग 3-4 वर्ष बाद फल देना शुरू कर सकते हैं, विशेषकर कलम या बडिंग से तैयार पौधों में। पूर्ण उत्पादन तक पहुँचने में अधिक समय लगता है। फल सामान्यतः नवंबर से फरवरी के बीच किस्म एवं क्षेत्र के अनुसार पकते हैं। परिपक्व फल आकार में बड़े, हरे से हल्के पीले रंग के तथा कठोर होते हैं।

तुड़ाई करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए-

* फलों की तुड़ाई सही परिपक्वता अवस्था में करें। * फलों को पेड़ से सावधानीपूर्वक तोड़ें। * चोट लगे एवं रोगग्रस्त फलों को अलग रखें। * फलों को साफ एवं हवादार क्रेट में रखें। * प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त आकार एवं गुणवत्ता के फलों का चयन करें।

9. आंवले का प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन- आंवले की व्यावसायिक उपयोगिता बढ़ाने का सबसे अच्छा तरीका इसका प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन है। ताजे फल जल्दी खराब हो सकते हैं, इसलिए इनसे विभिन्न उत्पाद तैयार करके अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

प्रमुख प्रसंस्कृत उत्पाद निम्नलिखित हैं-

1. आंवला कैंडी- आंवले के फलों को साफ करके, बीज निकालकर, टुकड़ों को चीनी की चाशनी में उपचारित किया जाता है। इसके बाद सुखाकर कैंडी तैयार की जाती है।

2. आंवला मुरब्बा- साबुत या उपयुक्त आकार के आंवले को चीनी की चाशनी में पकाकर मुरब्बा बनाया जाता है। यह पारंपरिक एवं लोकप्रिय खाद्य उत्पाद है।

3. आंवला अचार-आंवले में नमक, मसाले, तेल एवं अन्य आवश्यक सामग्री मिलाकर स्वादिष्ट अचार तैयार किया जाता है।

4. आंवला जूस- फलों से रस निकालकर उचित खाद्य प्रसंस्करण एवं संरक्षण तकनीक अपनाकर बोतलबंद जूस बनाया जाता है।

5. आंवला पाउडर- फलों के टुकड़ों को नियंत्रित तापमान पर सुखाकर पीसा जाता है। इससे पाउडर तैयार होता है, जिसका उपयोग खाद्य उत्पादों में किया जा सकता है।

6. आंवला जैम एवं जेली- आंवले के गूदे या रस से जैम एवं जेली तैयार की जा सकती है।

7. आंवला चटनी एवं माउथ फ्रेशनर- मसालों के साथ आंवले से स्वादिष्ट चटनी एवं विभिन्न प्रकार के माउथ फ्रेशनर तैयार किए जा सकते हैं। इन उत्पादों की प्रसंस्करण विधियों के लिए TNAU एवं NIFTEM द्वारा प्रकाशित तकनीकी जानकारी उपयोगी है।

10. आंवला प्रसंस्करण से अतिरिक्त आय के अवसर-किसान केवल ताजे आंवले बेचने तक सीमित न रहें, बल्कि छोटे स्तर पर प्रसंस्करण इकाई स्थापित करके अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं।

इसके लिए निम्नलिखित व्यवसाय शुरू किए जा सकते हैं-

* आंवला कैंडी निर्माण इकाई। * आंवला मुरब्बा एवं अचार निर्माण। * आंवला जूस एवं स्क्वैश निर्माण। * आंवला पाउडर निर्माण एवं पैकेजिंग। * स्थानीय बाजारों में ब्रांडेड उत्पादों की बिक्री। * स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से ग्रामीण स्तर पर खाद्य प्रसंस्करण।

एक छोटा उदाहरण- यदि किसान अपने बाग के फलों से कैंडी, अचार एवं मुरब्बा तैयार करता है, तो वह कच्चे फल के साथ-साथ तैयार उत्पादों को भी अलग-अलग बाजारों में बेच सकता है। इससे उत्पादों का मूल्य संवर्धन होता है और स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर बढ़ते हैं।

11. आंवले की खेती में अंतरवर्तीय फसलें- आंवले के बाग में प्रारंभिक वर्षों के दौरान खाली स्थान का उपयोग अंतरवर्तीय फसलें उगाने के लिए किया जा सकता है।

उपयुक्त परिस्थितियों में निम्नलिखित फसलें ली जा सकती हैं-

* हल्दी * अदरक * अरबी * दलहनी फसलें * कुछ मौसमी सब्जियाँ

डॉ. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय के आंवला आधारित कृषि-बागवानी मॉडल में हल्दी, अदरक एवं अरबी के साथ अंतरवर्तीय खेती से अतिरिक्त आर्थिक लाभ की संभावना बताई गई है।

12. आधुनिक तकनीकों का उपयोग- आंवले की खेती को अधिक लाभकारी बनाने के लिए आधुनिक तकनीकों को अपनाना आवश्यक है।

1.ड्रिप सिंचाई द्वारा जल प्रबंधन। 2.जैविक मल्चिंग द्वारा मिट्टी की नमी संरक्षण। 3.मृदा परीक्षण आधारित पोषण प्रबंधन। 4.जैव उर्वरकों एवं कम्पोस्ट का उपयोग। 5.वैज्ञानिक छंटाई एवं पौधों का उचित आकार प्रबंधन। 6.सौर ऊर्जा आधारित सुखाने की तकनीक। 7.आधुनिक पैकेजिंग एवं भंडारण तकनीक।विशेष रूप से प्रसंस्करण के क्षेत्र में ओस्मोटिक डिहाइड्रेशन (Osmotic Dehydration) एक उपयोगी तकनीक है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IIHR) द्वारा आंवले के निर्जलित स्लाइस की तकनीक विकसित की गई है।

13. विपणन एवं उद्यमिता-आंवले से तैयार उत्पादों की बिक्री के लिए किसान निम्नलिखित बाजारों का उपयोग कर सकते हैं- * स्थानीय फल एवं सब्जी मंडियाँ। * किराना एवं सुपरमार्केट। * आयुर्वेदिक एवं खाद्य उत्पाद विक्रेता। * ऑनलाइन ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म। * किसान उत्पादक संगठन (FPO)। * स्थानीय मेले एवं कृषि प्रदर्शनियाँ। प्रसंस्कृत खाद्य उत्पादों के व्यावसायिक निर्माण एवं बिक्री के लिए लागू FSSAI लाइसेंस या पंजीकरण, स्वच्छता, लेबलिंग और पैकेजिंग नियमों का पालन करना आवश्यक है।

14. किसानों के लिए सरकारी सहायता एवं प्रशिक्षण-किसान आंवला प्रसंस्करण व्यवसाय शुरू करने से पहले निम्न संस्थाओं से जानकारी एवं प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं- * कृषि विज्ञान केंद्र (KVK)। * राज्य कृषि विश्वविद्यालय। * ICAR के फल अनुसंधान संस्थान। * उद्यानिकी विभाग। * खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय की योजनाएँ एवं PMFME कार्यक्रम। इन संस्थाओं से प्रसंस्करण तकनीक, प्रशिक्षण, उद्यमिता एवं उपलब्ध योजनाओं की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। सहायता की पात्रता एवं उपलब्धता संबंधित योजना के वर्तमान दिशा-निर्देशों पर निर्भर करती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

मुर्गियों में अत:परजीवी संक्रमण एवं उनका प्रबंधन

डॉ. रवि कुमार खरे, डॉ. आलोक कुमार सिंह
डॉ. आलोक कुमार दीक्षित, डॉ. कुमार गोविल
पशुचिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन
महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

भारत में मुर्गीपालन उद्योग विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका प्रदान करता है। विश्व में अंडा उत्पादन व मुर्गी के मांस उत्पादन में भारत क्रमशः द्वितीय एवं चौथे स्थान पर है। बुनियादी पशुपालन आँकड़े (2025) के अनुसार, देश में अंडों का कुल उत्पादन 149.11 अरब है, जो पिछले वर्ष की तुलना में 4.44 प्रतिशत की वृद्धि दर्शाता है। देश में अंडों का उत्पादन 6.87 प्रतिशत की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ रहा है। भूमिहीन किसानों व उनकी महिलाओं एवं युवा वर्ग के लिए सामाजिक-आर्थिक जीवन में मुर्गीपालन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः मुर्गीपालन भारत की ग्रामीण आबादी के लिए अति महत्वपूर्ण व्यवसाय है। परंतु मुर्गीपालन में बढ़ते हुए परजीवी संक्रमण के कारण मुर्गियों की मृत्यु और उनका उत्पादन प्रभावित होता जा रहा है। मुर्गियों में पाए जाने वाले परजीवी मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं अतः परजीवी एवं बहिः परिजीवी। अतःपरजीवियों में गोलकृमि संक्रमण, फीता कृमि संक्रमण, पर्णकृमि संक्रमण एवं कोक्सिडिओसिस के कारण महत्वपूर्ण आर्थिक नुकसान होता है। नुकसान का मुख्य कारण मुर्गियों में शारीरिक वजन में कमी और फीड रूपांतरण अनुपात में परिवर्तन है। मुर्गियों में बहिः परिजीवी संक्रमण मुख्यतः जूँ, पिस्सू, किलनी एवं माइट् के कारण होता है, जिससे मुर्गियों के उत्पादन में कमी देखने को मिलती हैं। अतः मुर्गीपालन में अतःपरजीवी एवं बहिःपरिजीवी संक्रमण से बचने के लिए उचित समय पर इलाज एवं रोकथाम-संबंधी उपाय लेना बहुत जरूरी है।

अंत:कृमि परजीवी संक्रमण

गोलकृमि संक्रमण: एस्केरिडिया गैलाई, हेटेराकिस गैलिनेरम, ट्राइकोस्ट्रांगाइलस टेनुइस, सिनगैमस ट्रेकिया, केपिलारिया प्रजाति आदि गोलकृमियों का संक्रमण मुर्गियों में देखने को मिलता है। हेटेराकिस गैलिनेरम एवं सिनगैमस ट्रेकिआ को मुर्गियों का क्रमशः सीकल वर्म एवं ट्रेकिअल वर्म कहा जाता है। एस्केरिडिया गैलाई को मुर्गियों का सबसे बड़ा गोलकृमि कहा जाता है। यह मुख्यतः मुर्गियों की छोटी आंत में संक्रमण करता है। अधिकतर 1-3 सप्ताह की मुर्गी संक्रमण के प्रति संवेदनशील होती है। जबकि 3 महीने से अधिक उम्र के मुर्गे संक्रमण के प्रति अधिक प्रतिरोधी होते हैं। मुर्गियों में विटामिन ए, बी, बी12, खनिज और प्रोटीन जैसे कुछ आहारों की कमी से भारी संक्रमण होने का खतरा रहता है।

रोगजनकता और नैदानिक लक्षण: एस्केरिडिया गैलाई अपरिपक्व कृमियों के आंत की म्यूकोसा में प्रवेश करने के कारण चिह्नित घाव उत्पन्न होते हैं। बड़े पैमाने पर लार्वा के आक्रमण के परिणामस्वरूप गंभीर रक्तस्रावी आंत्रशोथ हो जाता है और मुर्गियां एनीमिया से ग्रस्त हो जाती हैं। दस्त, एनीमिया, मितव्ययिता, क्षीणता, मंद विकास और लेयर मुर्गियों में अंडे के उत्पादन में कमी देखी जाती है। गंभीर संक्रमणों में कृमि आंतों में रुकावट पैदा करते हैं और आंतों में छेद कर देते हैं, जिससे पेरिटोनाईटिस और मृत्यु हो जाती है। हेटेराकिस गैलिनेरम केवल भारी संक्रमण में रोगजनक है, जिससे आंतो की सतह पर कई पेटीचियल रक्तस्राव के साथ सीकल म्यूकोसा मोटा हो जाता है। प्रभावित मुर्गियों में कुछ दस्त और दुर्बलता हो सकती है। ट्राइकोस्ट्रॉन्गिलस टेनुइस रक्तस्रावी टिफलाइटिस और गंभीर आंत्रशोथ का कारण बनता है।

चूजों को सिनगैमस ट्रेकिआ गोलकृमि से सबसे अधिक परेशानी होती है। नैदानिक लक्षणों में अरुचि, निष्क्रियता, कमजोरी, हाथ-पैर फैलाकर फर्श पर बैठना और शुरुआती चरण में कृमि के माध्यम से वायु मार्ग अवरुद्ध होने के कारण सांस लेने में परेशानी आदि शामिल है। बाद में श्वासनली में बलगम जमा होने के कारण हांफने की आवाज आना, ऐंठन होना, खांसी आना, गर्दन का फैलना, चोंच खोलना और सिर को इधर-उधर हिलाना, एनीमिया और क्षीणता देखा जाता है। गंभीर रूप से प्रभावित पक्षी विशेषकर चूजे इस अवस्था में दम घुटने के कारण मर जाते हैं।

उपचार एवं रोकथाम: 1.पाइपरजीन एडिपेट 300-440 मिली ग्राम प्रति कि.ग्रा. शारीरिक वजन के अनुसार फीड में दें। 2.हाइग्रोमाइसिन बी 8 ग्राम प्रति टन फीड को 8 सप्ताह तक दिया जाना, संक्रमण को नियंत्रित करने में अत्यधिक प्रभावी है। 3.मेबेंडाजोल 28 किलो फीड में 2 ग्राम दिया जाता है एवं पीने के पानी में टेट्रामिसोल 10 प्रतिशत घोल दें। 4.थियाबेंडाजोल 500 मिलीग्राम प्रति कि.ग्रा. शरीर के वजन के अनुसार मौखिक रूप से सिनगैमस ट्रेकिआ के इलाज के लिए उपयोग करें। 5.डीप लिटर प्रणाली में मल-मूत्र की नियमित रूप से सफाई करें एवं लिटर गीला होने पर बदलना चाहिए। 6.मुर्गी और टर्की पक्षी को फार्म में अलग-अलग पाला जाना चाहिए। झुंड से संक्रमित मुर्गियों को अलग करके इलाज करना चाहिए।

फीताकृमि संक्रमण : फीताकृमि संक्रमण का सबसे अधिक असर फ्री रेंज या बैकयार्ड मुर्गीपालन प्रणाली या बड़े पैमाने पर पाले जाने वाले मुर्गियों पर पड़ रहा है। ये परजीवी मुख्यतः मुर्गियों की छोटी आंत में संक्रमण फैलाते हैं। मुर्गियों में पाये जाने वाले फीताकृमि निम्नलिखित हैं - डेवैनिया प्रोग्लोटिना, रेलिटीना टेट्रागोना, रेलिटीना इकाइनोबोथ्रिडा, कॉटुग्निया डायगोनोफोरा, अमीबोटेनिया क्यूनेटा, चॉनोटेनिया इन्फंडिबुलम, मेट्रोलियास्थनीज ल्यूसिडा, हाइमेनोलेपिस कैरिओका, हाइमेनोलेपिस लांसियोलाटा आदि। कुक्कुट घर और उसके आसपास बड़ी संख्या में उपलब्ध मध्यवर्ती मेजबानों के कारण मुर्गियों में फीताकृमि संक्रमण फैलता है। इन मध्यवर्ती मेजबानों (मक्खियाँ, बीटल, गैस्ट्रोपॉड मोलस्क, चींटियाँ, घरेलू मक्खी, केंचुआ, टिड्डे, जलीय क्रस्टेशियंस आदि) के अंदर फीताकृमियों की लार्वल अवस्था (सिस्टीसरकोइड) चलती रहती है, जिसको मुर्गियां खाने के साथ संक्रमित हो जाती हैं।

रोगजनकता और नैदानिक लक्षण: डेवैनिया प्रोग्लोटीना मुर्गियों में बड़ी संख्या में पाए जाने वाले फीताकृमि की अत्यधिक रोगजनक प्रजाति है। परजीवी आंतों की गहराई में प्रवेश करते हैं और परिगलन और रक्तस्रावी आंत्रशोथ का कारण बनते हैं। संक्रमण जानलेवा हो सकता हैं। दीर्घकालिक संक्रमण में मुख्य रूप से विकास दर में कमी, क्षीणता, कमजोरी और उत्पादन में कमी देखी जाती है। भारी संक्रमण में दिखाई देने वाले लक्षण सुस्ती, सूखे पंख, सुस्त गति और रक्तस्रावी दस्त हैं। मुर्गियों में रेलिटीना इकाइनोबोथ्रिडा भी अधिक रोगजनक होता है। इसे मुर्गियों का ÷नोड्यूलर फीताकृमि÷ भी कहा जाता है। यह मुर्गियों में ÷नोड्यूलर टैनियोसिस÷ का कारण होता है, क्योंकि आंत में ट्यूबरकल जैसी गांठें बन जाती हैं और हाइपरप्लास्टिक आंत्रशोथ हो जाता है। रेलिटीना टेट्रागोना मुर्गियों का कम रोगजनक फीताकृमि है, लेकिन इसके द्वारा मुर्गियों के वजन एवं उत्पादन में कमी आती है।

उपचार एवं रोकथाम–1.ब्यूटायरोनोरेट 75-15 मिलीग्राम प्रति कि.ग्रा. शरीर के वजन के अनुसार व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। 2.निक्लोसेमाइड 75 मिलीग्राम प्रति कि.ग्रा. शरीर के वजन के अनुसार । 3.हेक्साक्लोरोफिन भी मुर्गियों के फीताकृमियों के खिलाफ प्रभावी दवा हैं। 4.प्राजीक्वांटल 15 मिलीग्राम प्रति कि.ग्रा. शरीर के वजन के अनुसार और ब्रॉडस्पेक्ट्रम बेंजिमिडाजोल, एल्बेंडाजोल एवं ऑक्सफेंडाजोल उपयोगी होते हैं। 5.फेनबेंडाजोल का प्रयोग 5 मिली ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से किया जाता हैं।

मध्यवर्ती मेजबानों का नियंत्रण

1.कीटनाशकों का उपयोग मक्खियों और चींटियों के नियंत्रण के लिए किया जा सकता हैं। 2.गैस्ट्रोपॉड मोलस्क (स्लग) के नियंत्रण के लिए मेटलडिहाइड प्रलोभन । 3.केंचुआ, बीटल और क्रस्टेशियंस के नियंत्रण के लिए फिनोल का स्प्रे करे । 4.कीटवृद्धि नियामक जैसे-साइरोमाजिन, जो मोल्टिंग अवरोधक है और डाईफ्लुबेनजुरोन, लुफेनुरोन, जो काइटिन संश्लेषण अवरोधक है, घरेलू मक्खियों के खिलाफ उपयोग किया जाता है। 5.लेयर मुर्गियों को नियमित रूप से 3 महीने में कम से कम एक बार कृमिनासक दवाई दी जानी चाहिए।

पर्णकृमि संक्रमण: पर्णकृमि जैसे-प्रोस्थोगोनिमस ओवेटस, इकाईनोस्टोमा, नोटोकोटाइलस, कैटाट्रोपिस वेरुकोसा, ट्रैकिओफिलस सिंबियस आदि का संक्रमण मुर्गियों में देखने को मिलता है। प्रोस्थोगोनिमस ओवेटस को मुर्गियों का "ओवीडक्ट फ्लूक" के नाम से जाना जाता है। यह मुर्गियों के बरसा फैब्रिसीयस एवं ओबीडेक्ट में पाया जाता है। यह संक्रमण आमतौर पर वसंत और गर्मियों की शुरुआत में देखा जाता है। इसका संक्रमण मुख्यतः जलीय घोंघे एवं ड्रैगन मक्खी की निंफल अवस्था को मुर्गी के द्वारा खाने से फैलता है।

रोगजनकता और नैदानिक लक्षण: प्रोस्थोगोनिमस ओवेटस मुर्गियों को प्रभावित करने वाला सबसे अधिक रोगजनक फ्लूक है। सबसे पहले पक्षी का सामान्य स्वास्थ्य खराब नहीं होता है, रोगजनन तब शुरू होता है जब कई मुर्गियाँ नरम छिलके वाले या बिना छिलके वाले (असामान्य) अंडे देना शुरू कर देती हैं। प्रभावित मुर्गियाँ के ओविडक्ट में असामान्य रेट्रोपेरिस्टाल्टिक हलचल होती है, जिससे योल्क और एल्ब्यूमिन टूट जाता है। इसके बाद प्रभावित पक्षियों का पेट लटक जाता है और पक्षी पैर फैलाकर चलते हैं। फ्लूक पेरिटोनियल गुहा में प्रवेश करते हैं, जहां वे पेरिटोनाईटिस स्थापित करते हैं और बड़ी संख्या में मुर्गियों की मृत्यु हो जाती है। अग्रिम मामलों में जब स्राव में योल्क भी आती है तो स्राव का रंग पीला हो जाता है और यदि इसकी जांच की जाए तो इसमें वयस्क परजीवी भी होते है। इकाईनोस्टोमा प्रजाति परजीवी मेजबान की आंत की म्यूकोसा को चूसते हैं और रक्तस्रावी आंत्रशोथ नुकसान पहुंचाते हैं। प्रभावित मुर्गियाँ में क्षीणता, दस्त, एनीमिया और पैरों की कमजोरी का कारण बनता है। ट्रैकिओफिलस सिंबियस परजीवी श्वासनली में रुकावट पैदा करते हैं और पक्षी दम घुटने से मर सकते हैं।

उपचार एवं रोकथाम 1.संक्रमण को नियंत्रित करने के लिए पोल्ट्री में एल्बेंडजोल और प्राजीक्वांटल दवाओं का उपयोग किया जाता है। 2.मुर्गी के पेट में 2 मिली लीटर कार्बन टेट्राक्लोराइड इंजेक्ट करके उपचारित किया जा सकता है। 3.ऑक्सीक्लोजेनाइड 15-30 मिलीग्राम प्रति कि.ग्रा. शरीर के वजन के अनुसार दें। 4.मध्यवर्ती मेजबान जैसे घोंघा का विनाश कॉपर सल्फेट के घोल द्वारा करना चाहिए। 5.मुर्गियों को ड्रैगन मक्खी की निंफल अवस्था खाने से रोकना चाहिए ।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

गुलाब से गिलास तक: खुशबू से भरपूर शरबत बनाने की विधि

सुनील कुमार गुप्ता पीएचडी शोधार्थी, उद्यानिकी (पोस्ट हार्वेस्ट मैनेजमेंट) विभाग, महात्मा गांधी उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ़

रोहित कुमार मिश्रा कार्यक्रम सहायक, दीनदयाल शोध संस्थान, केवीके चित्रकूट

गीतेश चंद्रा, राधा गुप्ता एवं रानी यादव बी.एससी. (हॉर्टिकल्चर) , महात्मा गांधी उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ़

1. परिचय: गुलाब का फूल सदियों से मानव जीवन का अभिन्न हिस्सा रहा है। चाहे वह प्रेम का प्रतीक हो, पूजा का हिस्सा हो या सौंदर्य एवं सुगंध के लिए उपयोग किया जाने वाला पुष्प–गुलाब का विशेष महत्व है। जब भी गुलाब की बात होती है, तो सबसे पहले उसके आकर्षक रंग, मनमोहक खुशबू और नाजुक पंखुड़ियों का ध्यान आता है। हालाँकि, गुलाब केवल एक सजावटी फूल ही नहीं है, बल्कि इसकी पंखुड़ियों में विभिन्न जैव सक्रिय यौगिक भी पाए जाते हैं। गुलाब की कुछ प्रजातियों, विशेषकर Rosa damascena, का उपयोग सुगंध, खाद्य पदार्थों तथा पारंपरिक उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। इसकी पंखुड़ियों में प्राकृतिक रंग प्रदान करने वाले एंथोसायनिन (Anthocyanins), सुगंधित यौगिक तथा अन्य फाइटोकेमिकल्स पाए जा सकते हैं। भारत में प्राचीन काल से ही गुलाब का उपयोग खाद्य एवं पेय पदार्थों में किया जाता रहा है। गुलकंद, गुलाबजल और गुलाब का शरबत इसके प्रमुख उदाहरण हैं। गुलाब का शरबत अपने मीठे स्वाद, आकर्षक रंग और मनमोहक सुगंध के कारण लोकप्रिय है। गर्मियों में इसे ठंडे पानी या दूध के साथ मिलाकर ताज़गी देने वाले पेय के रूप में सेवन किया जाता है।

गुलाब और शरबत का इतिहास: गुलाब के उपयोग का इतिहास प्राचीन फारस (वर्तमान ईरान) और पश्चिमी एशिया की संस्कृतियों से जुड़ा हुआ है। इन क्षेत्रों में गुलाब की पंखुड़ियों से सुगंधित जल, अर्क और विभिन्न पेय पदार्थ तैयार करने की परंपरा विकसित हुई। समय के साथ गुलाब से बने उत्पादों का उपयोग अन्य क्षेत्रों में भी फैल गया। 'शरबत' शब्द अरबी भाषा के 'शरबा' शब्द से संबंधित माना जाता है, जिसका अर्थ पीना है। मध्यकाल में शरबत बनाने की परंपरा भारतीय उपमहाद्वीप में अधिक लोकप्रिय हुई। मुगलकाल के दौरान सुगंधित पेय पदार्थों को विशेष महत्व मिला और गुलाब से बने पेय शाही खानपान का हिस्सा बने।



परंपरागत रूप से गुलाब के शरबत का उपयोग: * गर्मियों में ठंडा और ताज़गी देने वाला पेय तैयार करने के लिए किया जाता था। * विशेष अवसरों और अतिथियों के स्वागत में किया जाता था। * सुगंधित एवं स्वादिष्ट पेय के रूप में किया जाता था। इस प्रकार, गुलाब का शरबत केवल एक पेय पदार्थ नहीं, बल्कि भारतीय खानपान, सांस्कृतिक परंपराओं और पारंपरिक खाद्य प्रसंस्करण का भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

3. गुलाब का शरबत क्यों खास है? गुलाब के शरबत की प्रमुख विशेषताएँ इसका आकर्षक रंग, विशिष्ट सुगंध और मीठा स्वाद हैं। इसकी गुणवत्ता मुख्य रूप से इस्तेमाल की गई गुलाब की प्रजाति, पंखुड़ियों की ताज़गी, निष्कर्षण की विधि तथा निर्माण प्रक्रिया पर निर्भर करती है। गुलाब की पंखुड़ियों में एंथोसायनिन जैसे प्राकृतिक वर्णक और विभिन्न जैव सक्रिय यौगिक पाए जा सकते हैं। इनकी मात्रा गुलाब की प्रजाति, रंग, परिपक्वता और प्रसंस्करण की परिस्थितियों के अनुसार बदलती है। घर पर तैयार किए गए गुलाब के शरबत में सामग्री की गुणवत्ता और स्वच्छता पर नियंत्रण रखा जा सकता है। हालाँकि, इसमें चीनी की मात्रा अधिक हो सकती है। इसलिए इसे सीमित मात्रा में सेवन करना उचित है। प्राकृतिक रंग और सुगंध की उपस्थिति अपने आप में किसी पेय को स्वास्थ्यवर्धक या औषधीय सिद्ध नहीं करती।

तालिका 1. ताज़ी गुलाब की पंखुड़ियों में खनिज तत्वों की मात्रा

खनिज तत्व	मात्रा (मिलीग्राम/100 ग्राम)
पोटैशियम	153.39
फॉस्फोरस	34.53
कैल्शियम	13.78
सल्फर	16.72
मैग्नीशियम	12.75
सोडियम	7.61
कॉपर (ताँबा)	1.82
आयरन (लोहा)	1.33
ज़िंक (जस्ता)	0.29

गुलाब का शरबत बनाने की विधि: गुलाब का शरबत तैयार करने हेतु ताज़ी पंखुड़ियों, पानी, चीनी और नींबू के रस का उपयोग किया जाता है। इसकी तैयारी में पंखुड़ियों से रंग एवं सुगंध निकालना, अर्क को छानना, चीनी मिलाना तथा मिश्रण को गर्म करना प्रमुख चरण हैं।

4.1 आवश्यक सामग्री

तालिका 2. गुलाब का शरबत तैयार करने के लिए आवश्यक सामग्री

क्र. सं.	सामग्री	मात्रा
1	ताज़ी गुलाब की पंखुड़ियाँ	50 ग्राम
2	पानी (कुल मात्रा)	1 लीटर
3	चीनी	600–650 ग्राम
4	नींबू का रस (कुल मात्रा)	30–40 मिलीलीटर
5	साफ काँच की बोतलें	आवश्यकतानुसार

शरबत बनाने की विस्तृत प्रक्रिया

चरण 1: ताज़ी गुलाब की पंखुड़ियाँ लेना-सबसे पहले 50 ग्राम ताज़ी, सुगंधित और साफ गुलाब की पंखुड़ियाँ लें। खाद्य उपयोग के लिए सुरक्षित गुलाब चुनें। सजावटी पौधों या ऐसे फूलों का उपयोग न करें जिन पर कीटनाशकों अथवा अन्य रसायनों का छिड़काव किया गया हो।

चरण 2: पंखुड़ियों की धुलाई- पंखुड़ियों को साफ, पीने योग्य पानी से धीरे-धीरे धो लें। इससे उन पर मौजूद धूल, मिट्टी और अन्य बाहरी अशुद्धियाँ हटाने में मदद मिलती है। धुलाई के दौरान पंखुड़ियों को अधिक न मसलें, ताकि उनकी संरचना और सुगंध बनी रहे।

चरण 3: पानी और नींबू के रस में पंखुड़ियाँ डालना- धुली हुई पंखुड़ियों को एक साफ, खाद्य-उपयोग योग्य बर्तन में डालें। इसमें लगभग 250 मिलीलीटर पानी और 10 मिलीलीटर नींबू का रस मिलाएँ। नींबू के रस की अम्लता पंखुड़ियों के प्राकृतिक रंग को प्रभावित कर सकती है और मिश्रण का pH कम कर सकती है।

चरण 4: पंखुड़ियों को भिगोना और अर्क निकालना

बर्तन को ढककर मिश्रण को लगभग 24-48 घंटे तक ठंडे स्थान पर रखें। खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से इसे फिज में रखना अधिक उचित है। इस दौरान पंखुड़ियों से कुछ रंग, सुगंधित यौगिक और पानी में घुलनशील घटक पानी में आ सकते हैं। ध्यान दें कि लंबे समय तक कमरे के तापमान पर भिगोने से सूक्ष्मजीवों की वृद्धि हो सकती है। केवल भिगोने की अवधि के आधार पर शरबत की सुरक्षा सुनिश्चित नहीं होती।

चरण 5: गुलाब के अर्क को छानना-भिगोने के बाद मिश्रण को साफ, बारीक छलनी या खाद्य-उपयोग योग्य साफ कपड़े से छान लें। इससे पंखुड़ियाँ अलग हो जाएँगी और गुलाब का तरल अर्क प्राप्त होगा।

चरण 6: चीनी और शेष पानी मिलाना-प्राप्त अर्क में 600-650 ग्राम चीनी और शेष पानी मिलाएँ। यदि कुल पानी की मात्रा 1 लीटर रखनी है, तो पहले उपयोग किए गए पानी की मात्रा को घटाकर शेष पानी डालें। मिश्रण को अच्छी तरह चलाएँ, ताकि चीनी समान रूप से घुल जाए। चीनी शरबत में मिठास और घुलनशील ठोस पदार्थों की मात्रा बढ़ाती है।

चरण 7: मिश्रण को गर्म करना- मिश्रण को धीमी आँच पर गर्म करते हुए लगातार चलाएँ, ताकि चीनी पूरी तरह घुल जाए। लगभग 70°C तक गर्म करने से चीनी घुलने में मदद मिल सकती है। हालाँकि, केवल इस तापमान तक गर्म करने से शरबत का सुरक्षित संरक्षण सुनिश्चित नहीं होता। यदि शरबत को लंबे समय तक संग्रहित करना है, तो उसके लिए उपयुक्त ताप-प्रसंस्करण, अम्लता, स्वच्छ भराई और भंडारण की परिस्थितियों का सत्यापन आवश्यक है।

चरण 8: शेष नींबू का रस मिलाना- अब बचा हुआ नींबू का रस मिलाएँ, ताकि कुल मात्रा लगभग 30ङ्क40 मिलीलीटर हो जाए। नींबू का रस स्वाद और अम्लता को प्रभावित करता है तथा गुलाब के प्राकृतिक रंग की स्थिरता पर भी प्रभाव डाल सकता है।

हालाँकि, केवल नींबू का रस मिलाने से शरबत सुरक्षित रूप से संरक्षित हो जाएगा, ऐसा नहीं माना जाना चाहिए। लंबे समय तक सुरक्षित रखने के लिए अंतिम उत्पाद का श्ग्ग और संरक्षण प्रक्रिया निर्धारित करना आवश्यक है।

चरण 9: शरबत को ठंडा करना-मिश्रण को स्वच्छ परिस्थितियों में ठंडा होने दें। इसे लंबे समय तक कमरे के तापमान पर खुला न छोड़ें। यदि तुरंत बोतलबंद नहीं करना है, तो इसे उचित तापमान पर सुरक्षित रखें।

चरण 10: अंतिम छानना-ठंडा होने के बाद शरबत को आवश्यकता के अनुसार एक बार फिर साफ, बारीक छलनी से छान लें। इससे बचे हुए छोटे कण हटाने और शरबत को अधिक साफ बनाने में मदद मिलती है।

चरण 11: साफ बोतलों में भरना-शरबत को साफ, खाद्य-उपयोग योग्य काँच की बोतलों में भरें। बोतलें और ढक्कन उपयुक्त तरीके से साफ तथा सैनिटाइज़ किए हुए होने चाहिए। भराई के दौरान दोबारा संदूषण से बचना आवश्यक है।

चरण 12: भंडारण-बोतलों को अच्छी तरह बंद करके फ्रिज में रखें। घर पर तैयार किए गए इस शरबत की सुरक्षित भंडारण अवधि बिना परीक्षण के निश्चित नहीं की जा सकती। इसलिए इसे कम मात्रा में तैयार करना, ठंडा रखना और कम समय में उपयोग करना अधिक सुरक्षित विकल्प है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

धनिया में माहू कीट का प्रबंधन

डॉ. सुष्मिता कश्यप (अतिथि वैज्ञानिक, कीट विज्ञान)
डॉ. ज्योति साहू (अतिथि वैज्ञानिक, आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन)
डॉ. सत्यनारायण सिंह (अतिथि वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान)
डॉ. ए. के. सिंह (प्रमुख वैज्ञानिक, पादप रोग विज्ञान)
कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र रायगढ़ (छत्तीसगढ़)

परिचय-धनिया एक प्रमुख बीजीय मसाला फसल है, जिसकी पत्तियों का उपयोग सब्जियों एवं अन्य व्यंजनों में भी किया जाता है। वर्तमान में धनिया की बुवाई का समय है। इस फसल में ''धनिया माहू (चीपक)'' एक प्रमुख हानिकारक कीट है, जो पौधों के कोमल भागों एवं पुष्पक्रम से रस चूसकर फसल को आर्थिक क्षति पहुँचाता है। इसके प्रकोप से पौधों की वृद्धि, बीज उत्पादन एवं बीजों की गुणवत्ता प्रभावित होती है। अतः किसान भाई धनिया की फसल का नियमित निरीक्षण करें तथा माहू के प्रारंभिक प्रकोप की पहचान कर उचित एवं समेकित कीट प्रबंधन उपाय अपनाएँ, ताकि फसल की उपज एवं गुणवत्ता को सुरक्षित रखा जा सके। माहू भारत में वसंत ऋतु में धनिये का एक प्रमुख कीट माना जाता है । इसके अलावा सौंफ, जीरा, अजवाइन और गाजर शामिल हैं।

भारत में धनिया का मुख्य कीट माहू(हायदाफिस कोरियाड्रे) है, जो के तने, पत्तियाँ और पुष्प गुच्छो में पाये जाते हैं और उनका रस चूसकर उपज में 40-50 प्रतिशत तक का नुकसान करते हैं, मुख्यतः फरवरी और मार्च महीने में इनकी संख्या अधिक होती है जिससे बीज या पत्तियां सूखकर पीली, मुड़ी हुई या बेकार हो जाती हैं। जिससे उपज की गुणवत्ता व मात्रा में भारी कमी आती है। शरीर रचना-धनिया के माहू पीले-हरे रंग के होते हैं और उन पर भूरे रंग की मोम जैसी परत चढ़ी होती है। इनमें छोटे, गहरे रंग के, थोड़े फूले हुए सिफंकुली (या कॉर्निकल्स) होते हैं, जो चौड़ाई से लगभग दोगुने लंबे होते हैं। इनसे चिपचिपा पदार्थ निकलता है जो चिटियो को आकर्षित करता है। इस वजह से शूटी मोल्ड (काली फंगस) जैसे समस्याएँ भी होती है। जीवन चक्र-धनिया पर पाए जाने वाले माहू (चीपक) का विकास चार निम्फ अवस्थाओं में पूरा होता है। वयस्क माहू की औसत आयु लगभग 8-11 दिन की होती है, जबकि कुल शिशु आयु अवधि लगभग 5-6 दिन रहती है। एक वयस्क मादा माह प्रतिदिन औसतन 5-8 शिशुओं को जन्म देती है तथा अपने पूरे जीवन काल में लगभग 10-45 शिशुओं को जन्म देती है।

गर्मी के मौसम में माहू की कई पीढ़ियाँ होती हैं। सभी माहू की अनिषेक जननीय मादाएँ (ऐसी जननी (मादा) जो बिना नर के संयोग के संतान उत्पन्न करे) होती हैं, लेकिन धनिये के पौधे की गुणवत्ता और माहू के कॉलोनी में घनत्व के आधार पर वे पंखयुक्त या पंख रहित हो सकती हैं। यदि धनिये के पौधे की गुणवत्ता कम हो जाती है या कॉलोनी में घनत्व बढ़ जाता है, तो पंखयुक्त माहू पैदा होते हैं जो नए पौधों पर कॉलोनियाँ बनाते हैं। शरद ऋतु में, ठंडे तापमान और छोटे दिनों के कारण अनिषेकजननीय मादाएँ प्रवासी एफिड्स के रूप में आती हैं। ये शीतकालीन धनिया के पौधों पर लौट आती हैं, जहाँ वे अंडे देने वाली मादाओं को जन्म देती हैं। इसी प्रकार, गर्मियों की कॉलोनियाँ शरद ऋतु में पंखयुक्त नर एफिड्स पैदा करती हैं। ये नर भी शीतकालीन धनिया के पौधों पर लौट आते हैं, जहाँ वे अंडे देने वाली मादाओं के साथ सहवास करके शीतकालीन अंडों का उत्पादन करते हैं।

क्षति की प्रकृति- ये पौधों की पत्तियों, शाखाओं और तनों पर घनी और अक्सर नुकसानदायक कॉलोनियां बनाते हैं। इनकी संख्या अधिक होने से ये धनिया की कलीकाली(शूटी मोल्ड) और सुख जाति है।



प्रबंधन

सांस्कृतिक प्रबंधन उपाय : कीट प्रबंधन में सांस्कृतिक विधियाँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये कीटों द्वारा होने वाली आर्थिक हानि को कम करने में सहायता करती हैं। विभिन्न सांस्कृतिक उपाय निम्न प्रकार से वर्गीकृत किए गए हैं।

बुवाई का समय : फसल की शीघ्रबुवाई से पौधों का जल्दी अंकुरण एवं स्थापना होती है, जिससे वे माहू(चेपा) के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों से बच जाते हैं। इससे माहू की प्रजनन प्रक्रिया बाधित होती है तथा उनकी संख्या कम होती है। देर से बुवाई करने पर पौधों की वृद्धि अवस्थाओं और प्राकृतिक शत्रुओं की गतिविधियों के बीच बेहतर समन्वय स्थापित होता है, जिससे माहू प्रबंधन में सहायता मिलती है। शीघ्र बुवाई करने पर माहू का प्रकोप कम पाया गया। शीघ्र बोई गई फसलों में देर से बोई गई फसलों की तुलना में माहू का प्रकोप कम देखा गया।

फसलचक्र: फसल चक्र माहू प्रबंधन की एक प्रभावी सांस्कृतिक विधि है। यह माहू के जीवन चक्र को बाधित करता है, मिट्टी में उपस्थित कीटों की संख्या कम करता है तथा मेजबान-विशिष्ट रोगों के चक्र को तोड़ता है। पसंदीदा मेजबान पौधों को हटाने से माहू की प्रजनन दर में उल्लेखनीय कमी आती है। इसलिए यह समेकित कीट प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण घटक है।

यांत्रिक नियंत्रण: इस विधि में माहू की आबादी को बिना कीटनाशकों के भौतिक तरीकों द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रभावित पौधों पर माहू की संख्या को रोकना या कम करना है।

ट्रैप फसल: ट्रैप क्रॉपिंग मुख्य फसल को कीटों के आक्रमण से बचाने की एक प्रभावी तकनीक है। इसमें मुख्य फसल के चारों ओर ऐसी फसलें लगाई जाती हैं जो कीटों को आकर्षित करती हैं। पत्तागोभी, फूलगोभी, गांठगोभी, ब्रोकोली, मूली, शलजम एवं चुकंदर जैसी क्रूसीफेरस फसलें माहू के लिए ट्रैप फसल के रूप में उपयोग की जाती हैं। ये फसलें विभिन्न माहू प्रजातियों को आकर्षित कर उनके नियंत्रण में सहायक होती हैं।

स्टिकी ट्रैप: स्टिकी ट्रैप समेकित कीट प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। यह कीटों की निगरानी करने तथा प्रकोप की प्रारंभिक जानकारी प्राप्त करने का सर्वोत्तम तरीका माना जाता है। माहू पीले रंग की ओर अधिक आकर्षित होते हैं। 20-25 ट्रैप प्रति एकड़ उपयोग करें।

जैविक नियंत्रण: जैविक नियंत्रण समेकित कीट प्रबंधन का सबसे महत्वपूर्ण घटक है। इसमें जीवित जीवों का उपयोग करके कीट आबादी को आर्थिक क्षतिस्तर से नीचे रखा जाता है। इसके लिए परभक्षी, परजीवी तथा कीट रोग जनक जीवों का उपयोग किया जाता है।

जैव-कीटनाशी: जैव-कीटनाशी पौधों, सूक्ष्मजीवों एवं खनिजों जैसे प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त होते हैं और रासायनिक कीटनाशकों का पर्यावरण-अनुकूल विकल्प प्रदान करते हैं। लेकैनिसिलियम लेकानी तथा एजाडिरैक्टिन (नीम आधारित) जैविक उत्पाद का उपयोग माहू के नियंत्रण में प्रभावी एवं किफायती पाया गया है। कीट रोगजनक जीवाणु कीटों में रोग उत्पन्न कर उन्हें नष्ट कर देते हैं। पौध-संबद्ध जीवाणु भी रक्षा यौगिक उत्पन्न करके पौधों में प्रणालीगत प्रतिरोध विकसित करने में सहायता करते हैं।

रासायनिक नियंत्रण: जब अन्य सभी प्रबंधन उपाय आर्थिक क्षतिस्तर से नीचे कीट आबादी को नियंत्रित करने में असफल हो जाते हैं, तब रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग अंतिम विकल्प के रूप में किया जाता है। कीटनाशकों का उपयोग आवश्यकता एवं निगरानी आधारित होना चाहिए। प्रणालीगत कीटनाशक पौधों द्वारा अवशोषित होकर विभिन्न भागों में पहुँच जाते हैं और रस चूसने वाले माहू इनके प्रभाव से मर जाते हैं या उनकी प्रजनन क्षमता घट जाती है। संपर्क कीटनाशक सीधे संपर्क में आने पर माहू को नष्ट कर देते हैं। नीम तेल, लकड़ी की राख तथा राख जैसे पारंपरिक एवं वनस्पति आधारित उपाय पर्यावरण के लिए सुरक्षित पाए गए हैं। इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एसएल, इमिडाक्लोप्रिड 70% डब्ल्यूजी, एसेटामिप्रिड 20% एसपी, एसेफेट 75% एसपी माहू के विरुद्ध अत्यंत प्रभावी पाए गए।



ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

प्रयोगशाला में उगता सोना: उच्च-मूल्य वाले मशरूम उत्पादन का बढ़ता चलन

डॉ. निशा ठाकुर सहायक प्राध्यापक (पौध रोग विज्ञान)
श्री उंडी अनुश अतिथि शिक्षक (कृषि विस्तार शिक्षा)
डॉ. पायल देवी चंद्राकर सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान)
डॉ. नमिता सिंह सहायक प्राध्यापक (आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन), उद्यानिकी महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र, अर्जुन्दा, बालोद, छत्तीसगढ़

एक छोटे से प्रयोगशाला कल्चर से लेकर प्रीमियम खाद्य उत्पाद तक कैसे नियंत्रित परिस्थितियों में मशरूम उत्पादन उच्च-मूल्य वाले मशरूम उत्पादन को अधिक सुलभ बना रहा है। कल्पना कीजिए कि ऐसी फसल उगाई जा सकती है जिसके लिए न तो विशाल खेत की आवश्यकता हो, न उपजाऊ मिट्टी की और न ही पूरी तरह मौसम पर निर्भर रहना पड़े। अब कल्पना कीजिए कि यही फसल बाजार में प्रीमियम कीमत प्राप्त कर सकती है। यह कोई भविष्य की कल्पना नहीं, बल्कि नियंत्रित प्रयोगशाला एवं इनडोर परिस्थितियों में मशरूम उत्पादन की तेजी से विकसित होती दुनिया है। मशरूम अब केवल पारंपरिक खाद्य सामग्री तक सीमित नहीं रह गए हैं। आज कई उच्च-मूल्य वाले मशरूम अपने पोषण, औषधीय एवं व्यावसायिक महत्व के कारण तेजी से आकर्षण का केंद्र बन रहे हैं। लायन्स मेन, शिटाके, कॉर्डिसेप्स तथा कुछ विशेष प्रकार के ऑयस्टर मशरूम को नियंत्रित वातावरण में तेजी से उगाया जा रहा है, जहाँ तापमान, आर्द्रता, प्रकाश, वायु-संचार और स्वच्छता को सावधानीपूर्वक नियंत्रित किया जा सकता है। इसकी अवधारणा सरल लेकिन प्रभावशाली है प्रकृति से संघर्ष करने के बजाय, मशरूम के लिए ऐसी परिस्थितियाँ तैयार करना जिनमें वह सर्वोत्तम रूप से विकसित हो सके।

महंगे मशरूम की खेती क्यों करें?

सभी मशरूमों का बाजार मूल्य समान नहीं होता। सामान्य रूप से उगाए जाने वाले मशरूम अपेक्षाकृत सस्ती कीमत पर उपलब्ध हो सकते हैं, जबकि विशेष एवं उच्च-मूल्य वाले मशरूम अपनी विशिष्ट आकृति, स्वाद, पोषण संबंधी गुणों, सीमित उपलब्धता और विशेष उत्पादन आवश्यकताओं के कारण काफी अधिक कीमत प्राप्त कर सकते हैं। उद्यमियों, किसानों, विद्यार्थियों और युवा कृषि स्नातकों के लिए उच्च-मूल्य वाले मशरूम पारंपरिक कृषि उत्पादों से आगे बढ़कर विशेषीकृत एवं मूल्य-वर्धित कृषि की ओर जाने का एक अच्छा अवसर प्रदान करते हैं। मशरूम उत्पादन का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसके लिए आवश्यक नहीं कि बड़े क्षेत्रफल वाली कृषि भूमि उपलब्ध हो। प्रजाति और उत्पादन के स्तर के अनुसार मशरूम का उत्पादन छोटे कमरों, ग्रोइंग चैंबर, शेड या प्रयोगशालाओं में भी किया जा सकता है। यही कारण है कि विशेष मशरूम उत्पादन शहरी एवं शहरों के आसपास के क्षेत्रों में रहने वाले उद्यमियों के लिए विशेष रूप से आकर्षक बन रहा है।

प्रयोगशाला: जहाँ से सफर शुरू होता है

प्रीमियम मशरूम की खेती उस समय शुरू नहीं होती जब पहला मशरूम दिखाई देता है। इसकी शुरुआत एक स्वस्थ मशरूम कल्चर से होती है। प्रयोगशाला में इच्छित मशरूम प्रजाति या स्ट्रेन को स्वच्छ एवं नियंत्रित परिस्थितियों में सुरक्षित रखा जाता है। इसके बाद इस कल्चर को बढ़ाया जाता है और अंततः इसका उपयोग स्पॉन तैयार करने के लिए किया जाता है, जो मशरूम उत्पादन में रोपण सामग्री का कार्य करता है। पारंपरिक फसलों के विपरीत, मशरूम की शुरुआत बीज से नहीं होती। इसकी शुरुआत माइसीलियम से होती है, जो कवक का धागेनुमा वानस्पतिक जाल होता है। इसलिए स्वस्थ मशरूम ऊतक का एक छोटा टुकड़ा या पहले से स्थापित कल्चर बड़े उत्पादन तंत्र की शुरुआत बन सकता है। प्रयोगशाला सुविधाएँ इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि अवांछित कवक या बैक्टीरिया से होने वाला संक्रमण उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है। इसलिए उचित स्वच्छता, स्टरलाइजेशन और एसेप्टिक तकनीक सफल मशरूम उत्पादन के मूल आधार हैं।

कल्चर से स्पॉन तक

एक बार शुद्ध और मजबूत मशरूम कल्चर तैयार हो जाने के बाद इसे उपयुक्त माध्यम में स्थानांतरित कर इसकी वृद्धि की जाती है। इससे विकसित होने वाले माइसीलियम का उपयोग स्पॉन तैयार करने के लिए किया जाता है। स्पॉन की तुलना मशरूम उत्पादन के ''बीज'' से की जा सकती है, हालांकि जैविक रूप से यह वास्तविक बीज से अलग होता है। व्यावसायिक उत्पादन के लिए उच्च गुणवत्ता वाला, तेजी से वृद्धि करने वाला और संक्रमण-मुक्त स्पॉन अत्यंत आवश्यक है। खराब गुणवत्ता वाला स्पॉन धीमी माइसीलियल वृद्धि, कमजोर फलन और कम उत्पादन का कारण बन सकता है। यही कारण है कि प्रयोगशाला आधारित उत्पादन प्रणालियाँ महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनके माध्यम से शुरुआती उत्पादन सामग्री की गुणवत्ता पर अधिक नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

उत्तम उत्पादन वातावरण का निर्माण

प्रयोगशाला एवं नियंत्रित वातावरण में मशरूम उत्पादन की वास्तविक शक्ति पर्यावरण प्रबंधन में निहित है। विभिन्न मशरूम प्रजातियों की अलग-अलग आवश्यकताएँ होती हैं। तापमान, सापेक्ष आर्द्रता, कार्बन डाइऑक्साइड की सांद्रता, ताजी हवा का आदान-प्रदान, प्रकाश और नमी को मशरूम की प्रजाति तथा वृद्धि की अवस्था के अनुसार समायोजित करना आवश्यक होता है। वानस्पतिक अवस्था के दौरान मशरूम का माइसीलियम अपने बढ़ने वाले सब्सट्रेट को पूरी तरह से उपनिवेशित करता है। जब सब्सट्रेट का उपनिवेशीकरण पूरा हो जाता है, तब फलन को प्रोत्साहित करने के लिए पर्यावरणीय परिस्थितियों में आवश्यक परिवर्तन किए जाते हैं। इस प्रकार मशरूम उत्पादन को अनिश्चित बाहरी मौसम की परिस्थितियों पर कम निर्भर बनाया जा सकता है। एक अच्छी तरह से प्रबंधित ग्रोइंग रूम में उत्पादक पर्यावरण को सावधानीपूर्वक नियंत्रित कर सकते हैं और पूरे वर्ष अधिक समान एवं स्थिर उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

विशेष मशरूम: आकार छोटा, मूल्य बड़ा

विशेष मशरूमों में लायन्स मेन ने अपनी विशिष्ट आकृति के कारण काफी लोकप्रियता प्राप्त की है। सामान्य मशरूम की टोपी जैसी संरचना के बजाय इसमें नीचे की ओर लटकती हुई सफेद कांटेनुमा संरचनाएँ विकसित होती हैं, जो शेर की अयाल जैसी दिखाई देती हैं। शिटाके एक अन्य उच्च-मूल्य वाला मशरूम है, जो अपने समृद्ध स्वाद और एशियाई व्यंजनों में व्यापक उपयोग के लिए जाना जाता है। कई देशों में यह एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक मशरूम बन चुका है। कॉर्डिसेप्स, विशेष रूप से खेती की जाने वाली प्रजाति, ने भी नियंत्रित उत्पादन प्रणालियों में काफी रुचि उत्पन्न की है। इसके आकर्षक नारंगी रंग के फलन शरीर तथा पारंपरिक औषधीय उपयोगों से जुड़े होने के कारण इसका विशेष महत्व है। ये मशरूम विशेषीकृत कृषि के एक महत्वपूर्ण सिद्धांत को प्रदर्शित करते हैं: मूल्य हमेशा अधिक उत्पादन से ही नहीं बल्कि कई बार अलग और अधिक वांछनीय उत्पाद तैयार करना ही अधिक मूल्य पैदा करता है।

निष्कर्ष

उच्च-मूल्य वाले मशरूम का उत्पादन आधुनिक कृषि के एक रोमांचक और उभरते हुए क्षेत्र के रूप में सामने आ रहा है। प्रयोगशाला आधारित कल्चर तकनीक, गुणवत्तापूर्ण स्पॉन, नियंत्रित उत्पादन वातावरण और उपयुक्त तकनीक की सहायता से महंगे विशेष मशरूमों का अधिक स्थिरता और दक्षता के साथ उत्पादन किया जा सकता है। हालाँकि, सफलता केवल स्पॉन खरीदने और एक ग्रोइंग रूम तैयार करने से प्राप्त नहीं होती। तकनीकी ज्ञान, संक्रमण का प्रभावी प्रबंधन, पर्यावरणीय नियंत्रण, गुणवत्ता आश्वासन और मजबूत बाजार रणनीति इस व्यवसाय की वास्तविक नींव हैं। मशरूम आकार में भले ही छोटा हो, लेकिन इसमें एक बड़े कृषि उद्यम में बदलने की अपार क्षमता है। जैसे-जैसे उपभोक्ताओं की रुचि पौष्टिक, विशेष एवं टिकाऊ रूप से उत्पादित खाद्य पदार्थों की ओर बढ़ रही है, वैसे-वैसे नियंत्रित परिस्थितियों में उच्च-मूल्य वाले मशरूमों की खेती एक साधारण कवक को उच्च-मूल्य वाले कृषि व्यवसाय में बदल सकती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

नस्ल पंजीकरण से क्या मिलेगा लाभ? छत्तीसगढ़ के पशुपालकों के मन में उठते सवाल

डॉ. प्रतिमा घृतलहरे पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, दाऊ श्री वासुदेव चंद्राकर कामधेनु विश्वविद्यालय , दुर्ग (छत्तीसगढ़)

भारत में पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार है। छत्तीसगढ़ में भी बड़ी संख्या में किसान खेती के साथ गाय और भैंस पालकर अपनी आजीविका चलाते हैं। राज्य की स्थानीय पशु आबादी यहां की जलवायु, उपलब्ध चारे और ग्रामीण परिस्थितियों के अनुरूप ढली हुई है। अंजोरी और कोसली जैसी स्थानीय गायों तथा छत्तीसगढ़ की भैंस आबादी की पहचान और संरक्षण की दिशा में पशुपालकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। लेकिन कई पशुपालकों के मन में एक सवाल उठता है—"जब हम वर्षों से अपने पशुओं को पाल रहे हैं, तो उनकी नस्ल का पंजीकरण कराने से हमें क्या लाभ होगा?

इस सवाल का जवाब समझने के लिए नस्ल पंजीकरण के उद्देश्य और उससे होने वाले व्यावहारिक लाभों को जानना आवश्यक है।



नस्ल पंजीकरण क्या है?

नस्ल पंजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से किसी मान्यता प्राप्त पशु नस्ल की पहचान, उसके विशिष्ट लक्षणों और संबंधित अभिलेखों को व्यवस्थित रूप से दर्ज किया जाता है। इसमें पशु की शारीरिक बनावट, रंग, सींगों का आकार, शरीर का माप, क्षेत्रीय वितरण और उपलब्ध वंशावली जैसी जानकारियां महत्वपूर्ण हो सकती हैं।

नस्ल की पहचान केवल रंग या बाहरी बनावट के आधार पर नहीं की जाती, बल्कि उसके अन्य लक्षणों, उत्पत्ति और उपलब्ध वैज्ञानिक प्रमाणों पर भी विचार किया जाता है। इसलिए स्थानीय पशुओं की सही पहचान और उनका रिकॉर्ड तैयार करना नस्ल संरक्षण की पहली महत्वपूर्ण सीढ़ी है।

पशुपालकों को नस्ल पंजीकरण से क्या लाभ हो सकते हैं?

1. **अपने पशुओं की पहचान और महत्व को पहचानना-** नस्ल पंजीकरण से किसी मान्यता प्राप्त नस्ल के विशिष्ट लक्षणों और पहचान को व्यवस्थित रूप से दर्ज करने में सहायता मिलती है। इससे पशुपालकों को अपने पशुधन की पहचान के महत्व को समझने और स्थानीय पशु संसाधनों के संरक्षण में भाग लेने का अवसर मिलता है।

2. **स्थानीय नस्लों के संरक्षण में योगदान-** स्थानीय पशु नस्लें हमारी आनुवंशिक धरोहर हैं। समय के साथ अनियोजित संकरण, बदलती पशुपालन पद्धतियों और प्रजनन संबंधी रिकॉर्ड की कमी के कारण कुछ विशिष्ट आनुवंशिक लक्षणों के खोने का खतरा हो सकता है। नस्लों की पहचान और पंजीकरण से उनके संरक्षण तथा वैज्ञानिक प्रजनन कार्यक्रमों की योजना बनाने में सहायता मिल सकती है।

3. **भविष्य में वैज्ञानिक प्रजनन सुधार की संभावना-** जब पशुओं की पहचान, वंशावली, दूध उत्पादन और प्रजनन संबंधी रिकॉर्ड उपलब्ध होते हैं, तो श्रेष्ठ प्रजनन पशुओं का चयन अधिक वैज्ञानिक तरीके से किया जा सकता है। इससे नस्ल के उपयोगी गुणों को बनाए रखने और आने वाली पीढ़ियों में सुधार की योजना बनाने में मदद मिलती है।

4. **पशुपालकों की स्थानीय पहचान को बढ़ावा-** किसी स्थानीय नस्ल की वैज्ञानिक पहचान होने से उस क्षेत्र के पशुपालकों और पशुधन की विशिष्टता को पहचान मिल सकती है। इससे स्थानीय पशु संसाधनों के महत्व के प्रति जागरूकता बढ़ती है और संरक्षण संबंधी गतिविधियों में समुदाय की भागीदारी को प्रोत्साहन मिलता है।

5. **सरकारी योजनाओं और वैज्ञानिक कार्यक्रमों से जुड़ने का अवसर-** नस्ल संरक्षण, पशु प्रजनन और पशुधन विकास से संबंधित कार्यक्रमों में पशुओं की सही पहचान और रिकॉर्ड उपयोगी हो सकते हैं। हालांकि, केवल नस्ल पंजीकरण से किसी पशुपालक को आर्थिक सहायता, अनुदान या अन्य लाभ स्वतः प्राप्त होने की गारंटी नहीं होती। इसके लिए संबंधित योजना की पात्रता और सरकारी नियमों को समझना आवश्यक है।

पशुपालक अपने स्तर पर क्या कर सकते हैं?

स्थानीय पशु नस्लों के संरक्षण में भाग लेने के लिए पशुपालक कुछ सरल कदम अपना सकते हैं—

- अपने पशुओं की स्पष्ट तस्वीरें रखें और उनके रंग, शारीरिक बनावट तथा पहचान संबंधी लक्षणों का रिकॉर्ड बनाएं।
- प्रत्येक पशु का जन्म, ब्यांत, दूध उत्पादन, प्रजनन और स्वास्थ्य संबंधी विवरण लिखें।
- उपलब्ध होने पर पशु की वंशावली और माता-पिता की जानकारी सुरक्षित रखें।
- पशुओं की नस्ल पहचान और पंजीकरण संबंधी जानकारी के लिए पशुपालन विभाग, पशु चिकित्सक या संबंधित पशु आनुवंशिकी विशेषज्ञ से संपर्क करें।
- स्थानीय नस्ल के संरक्षण के लिए वैज्ञानिक सलाह के अनुसार प्रजनन पशुओं का चयन करें और अनियोजित संकरण से बचने के उपायों को समझें।

निष्कर्ष

नस्ल पंजीकरण केवल सरकारी रिकॉर्ड में नाम दर्ज कराने तक सीमित नहीं है। यह स्थानीय पशुधन की पहचान, आनुवंशिक विविधता के संरक्षण और भविष्य में वैज्ञानिक प्रजनन सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। छत्तीसगढ़ के पशुपालकों के लिए अंजोरी और कोसली जैसी स्थानीय गायों तथा क्षेत्र की भैंस आबादी का सही दस्तावेजीकरण विशेष महत्व रखता है।



01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

मेथी–एक औषधीय जड़ी–बूटी

डॉ. ज्योति साहू (अतिथि वैज्ञानिक, आनुवंशिकी और पादप प्रजनन)

डॉ. सुष्मिता कश्यप (अतिथि वैज्ञानिक, कीट विज्ञान)

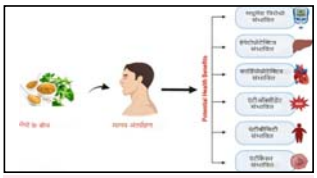
डॉ. सत्यनारायण सिंह (अतिथि वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान)

डॉ. अजीत कुमार सिंह (प्रमुख वैज्ञानिक, पादप रोग विज्ञान), कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, रायगढ़, (छत्तीसगढ़)

मेथी (ट्राइगोनेला फोएनम ग्रेकम) प्राचीन काल से ज्ञात सबसे उपयोगी औषधीय जड़ी-बूटियों में से एक है, और इसका पोषण मूल्य भी बहुत अधिक है। इसके हरे पत्ते और बीज कई तरह के कामों में उपयोगी होते हैं। इसके बीजों को आमतौर पर मेथी दाना कहा जाता है और इनका उपयोग भारतीय करी और अचार में मसाले के रूप में, साथ ही ब्रेड, पनीर, सिरप और अन्य व्यंजनों में स्वाद बढ़ाने के लिए किया जाता है। इसके पत्तों और छोटे पौधों का उपयोग सर्दियों के व्यंजनों में किया जाता है। रोमन और यूनानी लोग इसका उपयोग अपने पशुओं को खिलाने के लिए करते थे। मिस्र में इसका उपयोग प्रसव और दूध के प्रवाह को बेहतर बनाने के लिए किया जाता था। कई मिस्र की महिलाओं ने मासिक धर्म में ऐंठन से राहत पाने के लिए इसका उपयोग किया। इसके औषधीय गुणों का आयुर्वेदिक, चीनी, अरबी, ग्रीक और लैटिन औषधीय साहित्य में व्यापक रूप से वर्णन किया गया है। मेथी के बीजों में 22% से 26% तक प्रोटीन, 58% कार्बोहाइड्रेट, 25% फाइबर और 0.9% लिपिड पाया जाता है। मेथी के पत्तों में क्रमशः 6%, 4.4% और 1.1% कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और फाइबर पाया जाता है (वाणी एवं कुमार, 2018)।

मेथी के बीजों की पोषण संरचना

मेथी में मौजूद विविध पोषक तत्व और जैवसक्रिय यौगिक समग्र स्वास्थ्य और जैविक प्रणालियों की प्रभावकारिता में सुधार के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।



स्रोतः खाद्य विज्ञान और पोषण, 2024

मेथी के औषधीय गुण

वैज्ञानिकों ने पाया है कि मेथी के कई चिकित्सीय अनुप्रयोग हैं। इसमें मधुमेह-रोधी, हाइपोग्लाइसेमिक, हाइपरलिपिडेमिक, कैंसर-रोधी, सूक्ष्मजीव-रोधी, स्तनपान उत्तेजक, कैंसर-रोधी, कृमि-रोधी, एंटीऑक्सीडेंट, अल्सर-रोधी, गैस्ट्रोप्रोटेक्टिव और यकृत-रक्षक गुण पाए गए हैं। रात भर भिगोए हुए मेथी के बीजों का उपयोग बालों और त्वचा पर मुलायम और मुलायम प्रभाव के लिए किया जाता है। यह हृदयाघात और स्ट्रोक से जुड़े हृदयाघात और असामान्य रक्त के थक्के जमने के जोखिम को कम करता है। यह वजन घटाने में मदद करता है और सूजन को ठीक करता है। कई अध्ययनों से पता चला है कि इसमें कैंसर-रोधी और तंत्रिका-सुरक्षात्मक गुण होते हैं। इसमें आयरन, कैल्शियम, सल्फर, क्लोरीन और विटामिन ए और सी प्रचुर मात्रा में होते हैं। पहले, मेथी का उपयोग पैरों की कमज़ोरी और सूजन के इलाज के लिए एक टॉनिक के रूप में किया जाता था। इसका उपयोग आमतौर पर मासिक धर्म में ऐंठन से राहत पाने और स्तनपान को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है। मेथी के सक्रिय घटक मधुमेह, तंत्रिका-अपक्षयी विकारों, हृदय संबंधी जटिलताओं, कैंसर, हाइपोलिपिडेमिया, गैस्ट्रोप्रोटेक्टिव प्रभाव, गठिया आदि जैसी बीमारियों से बचाव करने में कारगर साबित हुए इसके रोग-निवारक गुणों की पहचान प्रायोगिक साक्ष्यों और नैदानिक अध्ययनों के माध्यम से की गई है [नीलकंठन एन, जर्नल ऑफ़ न्यूट्रिशन 2014] ।

मधुमेह-रोधी प्रभाव

मेथी के जैवसक्रिय घटक, जैसे गैलेक्टोमैनन, सैपोनिन,



ट्राइगोनेला, डायोसजेनिन और 4-हाइड्रॉक्सीआइसोल्यूसीन, मधुमेह पर सकारात्मक प्रभाव डालते पाए गए हैं। शोध में पाया गया है कि 10 ग्राम/40 मिलीलीटर तरल मेथी का अर्क रक्त में ग्लूकोज के स्तर को कम कर सकता है। यह पाया गया है कि इसकी तरल खुराक कुचले और चूर्ण के रूप में लेने से बेहतर है।

हृदय-सुरक्षात्मक प्रभाव

मधुमेह के उपचार और कोलेस्ट्रॉल कम करने में मदद करता है। यह हमारे शरीर से खराब कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने का एक उत्कृष्ट उपाय साबित हुआ है। इसका उपयोग रक्त में ग्लूकोज के स्तर को कम करने के लिए भी किया जाता है।

पाचन में सहायक

यह रक्त को शुद्ध करता है और हानिकारक विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालने में मदद करता है। यह अतिरिक्त बलगम को घोलने में मदद करता है, जिससे पाचन तंत्र तरोताजा और स्वच्छ रहता है। इसके अलावा, मेथी के बीज स्मरण शक्ति को बेहतर बनाने में भी उपयोगी होते हैं।

त्वचा संबंधी समस्याओं का इलाज

मेथी के बीज एक बेहतरीन सौंदर्य उत्पाद साबित होते हैं। ये झुर्रियों, ब्लैकहेड्स, मुंहासों, रूखेपन और रैशेज़ से बचाव में मदद करते हैं।

रूसी और बालों को मज़बूत बनाता है

मेथी न केवल बालों का झड़ना रोकने में मदद करती है, बल्कि रूसी को भी दूर रखती है। यह बालों को जूँओं से भी मुक्त रखती है।

मेथी के दुष्प्रभाव

खाद्य पदार्थों में सामान्य रूप से पाई जाने वाली मात्रा में मेथी का सेवन सुरक्षित हो सकता है। हालांकि, यदि आप इसे बहुत अधिक मात्रा में खा रहे हैं या ले रहे हैं, तो संभावित दुष्प्रभावों में दस्त, पेट फूलना और पाचन संबंधी अन्य परेशानियाँ शामिल हैं।

दैनिक खुराक और समय

खुराक की बात करें तो, संयम ही सबसे ज़रूरी है। ज़्यादातर विशेषज्ञ रोज़ाना लगभग 1-2 चम्मच मेथी के दाने खाने की सलाह देते हैं, चाहे वे भीगे हुए हों, पाउडर के रूप में हों या कच्चे। कम मात्रा से शुरुआत करना समझदारी है, क्योंकि मेथी कुछ लोगों में बहुत जल्दी ज़्यादा मात्रा में लेने पर पाचन संबंधी परेशानी पैदा कर सकती है। समय भी मायने रखता है। मेथी के दानों का सेवन रोज़ाना सुबह खाली पेट करना सबसे अच्छा है ताकि उनका अवशोषण ज़्यादा हो, खासकर अगर आप भीगे हुए मेथी के दाने खा रहे हों।

मेथी के बीजों का सेवन करने के सर्वोतम तरीके

यह आपके लक्ष्यों और आपके शरीर की प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है। एक लोकप्रिय तरीका है भीगे हुए मेथी के बीजों का उपयोग। भिगोने से बीज नरम हो जाते हैं, जिससे उन्हें पचाना आसान हो जाता है और लाभकारी एंजाइम निकलते हैं। आप एक बड़ा चम्मच मेथी के बीजों को रात भर पानी में भिगोकर सुबह सबसे पहले उनका सेवन कर सकते हैं। अगर आप मेथी के बारे में नए हैं तो यह शुरुआत करने का एक सौम्य तरीका है। वैकल्पिक रूप से, आप बीजों को पीसकर पाउडर बना सकते हैं और उन्हें स्मूदी, दही में मिला सकते हैं, या सलाद पर भी छिड़क सकते हैं। पिसी हुई मेथी थोड़ी कड़वी हो सकती है, इसलिए इसे शहद या नींबू के साथ मिलाने से स्वाद संतुलित रहता है। कुछ लोग अधिक तीव्र प्रभाव के लिए सीधे कच्चे बीजों को चबाना भी पसंद करते हैं, लेकिन अगर ज़्यादा मात्रा में किया जाए तो यह पेट के लिए हानिकारक हो सकता है।

निष्कर्ष

मेथी के बीज वास्तव में एक शक्तिशाली जड़ी-बूटी हैं, जिनका उपयोग हार्मोन संतुलन से लेकर बालों के विकास में सुधार और रक्त शर्करा को नियंत्रित करने तक होता है। मेथी के बीजों का सही तरीके से सेवन करने का तरीका जानने से इन लाभों को सुरक्षित और प्रभावी ढंग से प्राप्त किया जा सकता है। चाहे भिगोया हुआ हो, पाउडर के रूप में हो या कच्चा, मेथी को अपनी दिनचर्या में शामिल करना आपके स्वास्थ्य को बेहतर बनाने का एक प्राकृतिक और किफ़ायती तरीका है। याद रखें, कम मात्रा से शुरुआत करें और देखें कि आपका शरीर कैसे प्रतिक्रिया करता है। हमेशा अपने स्वास्थ्य सेवा प्रदाता से सलाह लें, खासकर यदि आप गर्भवती हैं, स्तनपान करा रही हैं, या पहले से ही कोई स्वास्थ्य समस्या है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

अश्वगंधा की खेती एवं उसकी उपयोग

डॉ. छत्रपाल सिंह पुहुप
श्री राकेश कुमार भगत
विषय वास्तु विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान), वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख, कृषि विज्ञान केंद्र, जशपुर (छ.ग.)

परिचय: अश्वगंधा को भारतीय जिनसेंग भी कहते है। यह औषधीय उपयोग का पौधा है। इसका वैज्ञानिक नाम विथानिया सोम्निफेरा है। यह सोलेनेसी परिवार का सदस्य है। अश्वगंधा एक टॉनिक है। यह काम क्षमता बढ़ाता है, शरीरिक क्षमता बढ़ाता है, शिक्त का पोषण करता है तथा चुस्ती-फूर्ति प्रदान करता है। यह सारे भारत में पश्चिमोत्तर भाग मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, गुजरात तथा हिमांचल में 5500 फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है। इसका पौधा झाड़ीदार 1 से 4 फुट ऊँचा बहुशखायुक्त होता हैं। शाखाएँ गोलाकार चारों ओर फैली रहती है। पत्तियाँ जोड़ें में अखण्डित अण्डाकार 5-10 सेमीण् लम्बी तथा 3 से 5 सेमी.चौड़ी होती है। पुष्प छोटे-छोटे कुछ लंबे पीलापन व हरापन लिए चिमल के आकार के होते हें। ये शाखाओं के अग्र भाग पर खिलते हैं। इन पर भी डण्ठल के समान सफेद छोटे-छोटे रोम होते हैं। फल छोटे-छोटे गोल मटर या मकोय के फल के समान पहले हरे फिर पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। फल के अन्दर कटेरी के बीजों के समान सफेद रंग के असंख्य बीज होते है। मूल 4 से 8 इंच लंबी ऊपर से मटमैली अन्दर से सफेद शंकु के आकार की होती है। यह नीचें से मोटी ऊपर से पतली, गोल व चिकनी होती है। ताजी जड़ में घोड़े के मूत्र के समान तीव्र गंध आती है। इसको हिन्दी में अश्वगंधा, संस्कृत में वराहकर्णी तथा अंग्रेजी में वीनटर चेरी कहते है। इसकी फसल जाड़ें में पककर तैयार हो जाती है।





रासायनिक घटक: अश्वगंधा में अनेको रासायनिक घटक पाये जाते है। जैसे एनाफेरीन, बीटा-सिस्टेरॉल, लौह तत्व, सोमिनिफेरीनीन, ट्रोपैनॉलस, विथेफेरीन-ए, वेथेनीन, विथेनेनीन, वेथेनॉलाइडस, सिस्टरॉल, क्लोरोजेनिक एसिड (पत्ती में)।

भूमि: अश्वगंधा विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है परन्तु उचित जल निकास वाली बलुई दोमट मृदा इसके लिए सर्वोत्तम मानी जाती है। जिसका पीएच मान 7.5-8 होना चाहिए।

प्रजातियाँ: पोषिता, डब्ल्यूएस-20 तथा जवाहर आदि।

बीज की मात्रा: नर्सरी के लिए 5 किग्रा. प्रति हेक्टेयर व छिटकवाँ विधि से 10 से 15 किग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है।

बीज शोधन: बीज को डायथेन एम-45 की 3 ग्राम मात्रा से प्रति किग्रा. बीज को उपचारित करके बोना चाहिए।

रोपण की विधि: रोपाई के समय इस बात का ध्यान रखें कि दो पौधों के बीच 8 से 10 सेमी. की दूरी हो तथा पंक्तियों के बीच 20 से 25 सेमी. की दूरी हो। बीज 1 सेमी. से ज्यादा गहराई पर न बोयें। इसके बोने की दो विधियाँ है-

छिटकवाँ विधि: अश्वगंधा के बीज बारीक होते है। अतः उनमें 50 प्रतिशत रेत मिलाकर तैयार खेत में छिडक दिया जाता है। उसके उपरान्त हल्का पाटा चलाया जाता है।

नर्सरी में पौध तैयार करनाः इस विधि में 4-5 किग्राण् बीज नर्सरी में जुलाई के महीने में बोया जाता है। 6-7 दिन बाद पौधे निकल आते हैं और 6 सप्ताह में पौधें लगाने योग्य हो जाते हैं।

बुवाई का समय: अश्वगंधा को अगस्त से लेकर सितम्बर के प्रथम सप्ताह तक बोया जा सकता है।

खाद एवं उर्वरक: संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरकों का उपयोग करना चाहिए। बुवाई के एक माह पूर्व भूमि में 5-10 टन गोबर की खाद, 15 किग्राण् नाइट्रोजन और 15 किग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

सिंचाई: अश्वगंधा को कोई सिंचाई करने की आवश्यकता नही होती है यदि काफी लम्बे समय तक वर्षा न हो तो आवश्यकतानुसार एक-दो सिंचाई कर देनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण: आइसोप्रोटुरान 0.5 किग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से डालने से खरपतवारों का नियंत्रण होता है और उपज मे वृद्धि होती है।

फसल सुरक्षा: अश्वगंधा पर रोग व कीटों का विशेष प्रभाव नही पड़ता है। कभी-कभी माहू कीट तथा पर्ण झुलसा रोग से फसल प्रभावित होती है। ऐसी परिस्थिति में मोनोक्रोटोफास का डायथेन एम-45, 3 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर बुवाई के 30 दिन के अंदर छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर 15 दिन के अंदर दोबारा छिड़काव करें।

खुदाई: रोपण के 180 दिन बाद अश्वगंधा की खुदाई करने से जड़ें अधिकतम मिलती हैं क्योंकि उनके आकार में वृद्धि हो जाती है। क्षाराभ की मात्रा भी अधिकतम मिलती है। पूरे पौधों को उखाड़ लिया जाता है फिर जडों को पौधों से अलग कर लिया जाता है तथा फिर उन्हें सुखा लिया जाता है।

अश्वगंधा के औषधीय उपयोग * तीन ग्राम अश्वगंधा चूर्ण लेकर, तिल व घी 10-10 ग्राम लेकर और और 3 ग्राम शहद मिलाकर नित्य सर्दी में सेवन करने से कमजोर शरीर वाला मोटा हो जाता है। * अश्वगंधा एक वर्ष तक यथाविधि सेवन करने से शरीर रोग रहित हो जाता है। केवल सर्दियों में ही इसके सेवन से दुर्बल व्यक्ति भी बलवान होता है। वृद्धावस्था देर होकर नवयौवन प्राप्त होता है। * अश्वगंधा के चूर्ण को 3 ग्राम की मात्रा में लेकर शहद के साथ चाटने से शरीर में ताकत बढ़ती है। * एक ग्राम अश्वगंधा चूर्ण में लगभग 1 ग्राम का चौथा भाग मिश्री डालकर उबलें हुए दूध के साथ सेवन करने से वीर्य पुष्ट होता है और बल बढ़ता है।

* थकावट में लगभग 3 से 6 ग्राम अश्वगंधा के चूर्ण को मिश्री मिले हुए दूध के साथ सुबह-शाम लेने से शरीर में ताजगी और जोश आ जाता है। * अश्वगंधा, विधारा, सतावरी 50-50 ग्राम कूट-पीसकर छान लें, फिर इसमें 150 ग्राम चीनी मिला दें। 10-10 ग्राम दूध से सुबह-शाम लें। 300 ग्राम अश्वगंधा को बारीक पीस लें। इसकी 20 ग्राम मात्रा को 250 ग्राम दूध में मिलाकर उबालें, जब यह गाढ़ा हो जाए तो इसमें चीनी मिलाकर पीना चाहिए। * अश्वगंधा और बहेड़ा दोनों को कूट-पीसकर चूर्ण बना लें। फिर 3 ग्राम चूर्ण में थोड़ा सा गुड़ मिलाकर हल्के गर्म पानी से सेवन करें। इस से दिल की तेज धड़कन और निर्बलता नष्ट होती है। * अश्वगंधा 3-3 ग्राम सुबह-शाम गर्म दूध से लें। इस से दिल दिमाग की कमजोरी ठीक हो जाती है। * अश्वगंधा चूर्ण 3 ग्राम, सूरजमुखी बीज का चूर्ण 2 ग्राम, मिश्री 5 ग्राम और गिलोय का बारीक चूर्ण 1 ग्राम की मात्रा में लेकर पानी के साथ दिन में 2-3 बार सेवन करने से उच्च रक्तचाप में लाभ होता है। * अश्वगंधा के पंचांग (जड़, तना, फल, फूल और पत्ती) को खाने से लाभ प्राप्त होता है।

उपज: अश्वगंधा की उपज भूमि की उर्वरा शक्ति, किस्म तथा देखभाल पर निर्भर करती है। इसकी प्रति हेक्टेयर 3-4 क्वि. सूखी जड़ें और 50-75 कि.ग्रा. बीज की प्राप्ति होती है।

संग्रह संरक्षण की अवधि: * उत्तम जड़ों को चुनकर सुखाकर एयरटाइट सूखे ठंडें स्थानों पर रखते हैं। इन्हें एक वर्ष तक प्रयुक्त किया जा सकता है। * अश्वगंधा और विधारा 500-500 ग्राम कूट पीसकर रख लें। 10 ग्राम दवा सुबह गाय के दूध के साथ खाने से वातरोग खत्म हो जाता हैं। * अश्वगंधा 50 ग्राम, सफेद मूसली 50 ग्राम, काली मूसली 50 ग्राम मात्रा में कूटकर छानकर रख लें और इसे 10 ग्राम की मात्रा में सुबह दूध के साथ लेने से मोटापा दूर होता है। * अश्वगंधा और शतावर की बराबर मात्रा का चूर्ण 3 ग्राम ताजे पानी के साथ सेवन करने से प्रदर में लाभ होता है। 5-10 ग्राम अश्वगंधा चूर्ण सुबह-शाम घी के साथ सेवन करने से प्रदर में आराम मिलता है। * अश्वगंधा की 10 ग्राम जड़ को कूट लें। इसमें 10 ग्राम मिश्री मिलाकर 400 ग्राम पानी में पकाएं जब 8वां हिस्सा रह जाये तो थोड़ा-थोड़ा पिलाने से कुकुर खांसी या वात जन्य खांसी पर विशेष लाभ होता है। * वात के कारण उत्पन्न हृदय रोग में अश्वगंधा का चूर्ण दो ग्राम गर्म पानी के साथ लेने सें लाभ होता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

बैंगन की वैज्ञानिक खेती

नितेश्वरी बघेले क्रांतिवीर तात्या टोपे विश्वविद्यालय, गुना (म.प्र.)
शिखा त्रिपाठी, उदयभान निषाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

बैंगन (सोलेनम मेलोंजेना) भारत की प्रमुख एवं लोकप्रिय सब्जी फसलों में से एक है। यह सोलेनेसी ;वसदंबमंम) कुल का पौधा है। बैंगन के कोमल एवं अपरिपक्व फलों का उपयोग सब्जी, भरता, भुर्ता, अचार तथा विभिन्न व्यंजनों में किया जाता है। इसके फल विभिन्न आकार, रंग और आकृति के होते हैं, जैसे गोल, अंडाकार, लंबे, बेलनाकार तथा बैंगनी, गहरे बैंगनी, हरे या सफेद रंग के।बैंगन की फसल लगभग पूरे भारत में उगाई जाती है। यह किसानों को लंबे समय तक नियमित तुड़ाई के माध्यम से आय प्रदान कर सकती है। वैज्ञानिक ढंग से खेती करने पर गुणवत्तापूर्ण उत्पादन प्राप्त करने के साथ-साथ कीट एवं रोगों से होने वाले नुकसान को भी काफी कम किया जा सकता है।

बैंगन का महत्व-बैंगन एक महत्वपूर्ण पोषण एवं आर्थिक फसल है। इसके फलों में आहार रेशा, पोटैशियम, कैल्शियम, आयरन तथा विभिन्न जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं। बैंगन में उपस्थित एंथोसाइनिन जैसे यौगिक विशेष रूप से गहरे रंग वाली किस्मों में पाए जाते हैं।

बैंगन की प्रमुख विशेषताएं

* लंबे समय तक तुड़ाई की संभावना। * वर्ष के विभिन्न मौसमों में उत्पादन। * स्थानीय बाजार में लगातार मांग। * छोटी एवं सीमांत जोतों में भी खेती की संभावना। * खुले खेत तथा संरक्षित परिस्थितियों में उत्पादन की संभावना। * उचित प्रबंधन से अच्छी उत्पादकता एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

जलवायु-बैंगन गर्म मौसम की फसल है। इसके लिए सामान्यतः 22-30°C के आसपास का तापमान अनुकूल माना जाता है। बीज अंकुरण, पौध वृद्धि, फूल आने तथा फल बनने हेतु पर्याप्त तापमान आवश्यक है। बहुत अधिक ठंड से पौधों की वृद्धि रुक सकती है और अत्यधिक तापमान एवं नमी की कमी से फूल एवं छोटे फल झड़ सकते हैं। लगातार वर्षा और खेत में जलभराव से जड़ संबंधी रोग बढ़ सकते हैं।

अनुकूल जलवायु की विशेषताएं

* पर्याप्त धूप * मध्यम तापमान * उचित मिट्टी की नमी * अच्छी जल निकासी * अत्यधिक पाला एवं जलभराव से सुरक्षा

भूमि का चयन-बैंगन की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है, लेकिन अच्छी जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है। मिट्टी में पर्याप्त जैविक पदार्थ होने से पौधों की वृद्धि बेहतर होती है। बहुत भारी एवं जलभराव वाली भूमि में बैंगन लगाने से जड़ सड़न तथा अन्य रोगों की समस्या बढ़ सकती है। मिट्टी का चभ् लगभग 5.5-7.5 उपयुक्त माना जाता है। क्षारीय या बहुत अम्लीय भूमि में पौधों की पोषक तत्व ग्रहण करने की क्षमता प्रभावित हो सकती है।

खेत की तैयारी-खेत को अच्छी तरह तैयार करने के लिए एक गहरी जुताई करने के बाद 2-3 बार हल्की जुताई करनी चाहिए। अंतिम जुताई के समय खेत को समतल एवं भुरभुरा बना लेना चाहिए।

* खरपतवार एवं फसल अवशेष निकालें। * सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिलाएं। * जल निकास की उचित व्यवस्था करें। * मृदा परीक्षण के आधार पर पोषक तत्वों का प्रबंधन करें।

उन्नत किस्मों का चयन-बैंगन में किस्म का चयन स्थानीय जलवायु, मौसम, बाजार की मांग तथा प्रमुख कीट एवं रोगों की स्थिति के आधार पर करना चाहिए।

किस्म चुनते समय निम्न गुणों पर ध्यान दें

* क्षेत्र के अनुकूलता। * अधिक फल उत्पादन। * फलों का आकर्षक रंग एवं आकार। * बाजार की मांग। * परिवहन सहनशीलता। * प्रमुख कीट एवं रोगों के प्रति सहनशीलता। * तुड़ाई की अवधि एवं उत्पादन अवधि।

उन्नत किस्में- काशी उत्सव, काशी मनोहर, काशी तरु, काशी संदेश, पूसा उत्तम, पूसा पर्पल लॉन्ग, पूसा पर्पल क्लस्टर, काशी प्रकाश तथा पूसा कृष्णा।

बीज की गुणवत्ता-उच्च उत्पादन के लिए प्रमाणित एवं उच्च गुणवत्ता वाले बीज का प्रयोग करना चाहिए। बीज की अंकुरण क्षमता अच्छी होनी चाहिए तथा बीज किसी प्रमुख रोग से संक्रमित नहीं होना चाहिए। संकर किस्मों में हमेशा प्रमाणित स्रोत से बीज खरीदना चाहिए।

नर्सरी प्रबंधन-बैंगन की व्यावसायिक खेती में सामान्यतः पहले पौध तैयार करके खेत में रोपाई की जाती है। स्वस्थ पौध तैयार करना उच्च उत्पादन की आधारशिला है।

नर्सरी के लिए स्थान- नर्सरी ऐसी जगह बनाएं जहां

* पर्याप्त धूप मिले। * जल निकास अच्छा हो। * सिंचाई की सुविधा हो। * पिछली फसल में गंभीर रोग या कीट का प्रकोप न रहा हो।

नर्सरी प्रबंधन-बीजों को उपचारित करके साफ एवं रोगमुक्त माध्यम में बोना चाहिए। बीजों को बहुत गहराई में नहीं बोना चाहिए। अंकुरण के बाद पौधों को पर्याप्त प्रकाश एवं नियंत्रित नमी उपलब्ध कराएं।अत्यधिक सिंचाई से नर्सरी में डैम्पिंग-ऑफ रोग की समस्या बढ़ सकती है।

पौध की रोपाई-जब पौध पर्याप्त स्वस्थ एवं मजबूत हो जाए और उसमें कई स्वस्थ पत्तियां विकसित हो जाएं, तब खेत में रोपाई की जा सकती है। रोपाई सामान्यतः शाम के समय या बादल वाले मौसम में करना लाभकारी होता है। रोपाई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए।

सामान्य रोपाई दूरी-किस्म के अनुसार लगभग-* कतार से कतार- 60-75 सेमी * पौधे से पौधे- 45-60 सेमी

संकर एवं अधिक फैलाव वाली किस्मों के लिए दूरी स्थानीय अनुशंसा के अनुसार समायोजित की जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन-बैंगन में संतुलित पोषण से पौधों की वृद्धि, फूल एवं फल उत्पादन बेहतर होता है। उर्वरकों की वास्तविक मात्रा मृदा परीक्षण के आधार पर निर्धारित करना सबसे उपयुक्त है।

जैविक खाद-खेत की तैयारी के समय लगभग 20-25 टन अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट प्रति हेक्टेयर देना उपयोगी हो सकता है।

रासायनिक उर्वरक-नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश की मात्रा मिट्टी की उर्वरता और स्थानीय सिफारिश के अनुसार दें। नाइट्रोजन की पूरी मात्रा एक बार में देने के बजाय उसे विभाजित करके देना अधिक उचित होता है। इससे पौधों को लगातार पोषण मिलता है और अत्यधिक कोमल अमहमजंजपअम हतवूजी से बचा जा सकता है।

सूक्ष्म पोषक तत्व-जिंक, बोरॉन, आयरन या अन्य सूक्ष्म तत्वों की कमी होने पर मृदा या पत्ती परीक्षण के आधार पर सुधारात्मक उपाय करें।

सिंचाई प्रबंधन- बैंगन को नियमित एवं संतुलित सिंचाई की आवश्यकता होती है। सिंचाई का अंतराल मिट्टी के प्रकार, मौसम, पौधों की अवस्था और सिंचाई प्रणाली पर निर्भर करता है। फूल एवं फल बनने के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी बनाए रखना विशेष रूप से आवश्यक है। पानी की कमी से फूल एवं छोटे फल गिर सकते हैं तथा फलों का आकार प्रभावित हो सकता है। दूसरी ओर अत्यधिक सिंचाई एवं जलभराव से जड़ों में ऑक्सीजन की कमी तथा जड़ रोग बढ़ सकते हैं।

ड्रिप सिंचाई

ड्रिप सिंचाई बैंगन में उपयोगी तकनीक है। इससे- * पानी की बचत होती है। * जड़ क्षेत्र में नियंत्रित नमी बनी रहती है। * पत्तियां अनावश्यक रूप से गीली नहीं होतीं। * फर्टिगेशन द्वारा पोषक तत्वों की आपूर्ति की जा सकती है। * खरपतवार की वृद्धि कम हो सकती है।

मल्चिंग-बैंगन में जैविक या उपयुक्त प्लास्टिक मल्च का प्रयोग किया जा सकता है। मल्च मिट्टी की नमी बनाए रखने, खरपतवार कम करने तथा फल एवं मिट्टी के प्रत्यक्ष संपर्क को कम करने में सहायक होता है। मल्च का उपयोग विशेष रूप से ड्रिप सिंचाई के साथ प्रभावी हो सकता है।

खरपतवार प्रबंधन- बैंगन की प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार फसल के साथ पानी, पोषक तत्व, प्रकाश और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। इसलिए रोपाई के बाद खेत को खरपतवार से मुक्त रखना आवश्यक है।

नियंत्रण के उपाय * समय पर निराई-गुड़ाई। * हाथ से खरपतवार निकालना। * मल्च का प्रयोग। * खेत एवं मेड़ों को खरपतवार मुक्त रखना। * आवश्यकतानुसार पंजीकृत एवं अनुशंसित खरपतवारनाशी का प्रयोग। खरपतवारनाशी का उपयोग केवल बैंगन के लिए स्वीकृतध्अनुशंसित उत्पाद, सही मात्रा और लेबल निर्देशों के अनुसार करें।

जैन बीज भण्डार
एवं पशु आहार
मैन बाजार, चीनोर रोड,
छीमक जिला–ग्वालियर (म.प्र.)
प्रो. मुकेश जैन, मोबाइल: 9977638510
04/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

धान फसल को राइस लीफ फोल्डर कीट से बचाने के प्रभावी उपाय

अभिषेक सिंह सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. ललित कुमार सनोदिया
डॉ. अखिलेश कुमार सिंह सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रस्तावना: धान भारत की प्रमुख खाद्यान्न फसलों में से एक है। देश के लाखों किसान धान की खेती पर निर्भर हैं। धान की अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए फसल को विभिन्न कीटों और रोगों से बचाना आवश्यक है। धान की फसल में लगने वाला राइस लीफ फोल्डर (Rice Leaf Folder) एक प्रमुख हानिकारक कीट है, जो पत्तियों को मोड़कर उनके अंदर रहता है और हरे भाग को खाता है। इससे पत्तियों पर सफेद धारियाँ दिखाई देने लगती हैं तथा पौधों की प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया प्रभावित होती है। यदि समय पर इस कीट का नियंत्रण नहीं किया जाए, तो फसल की वृद्धि और उत्पादन में कमी आ सकती है।

1. **राइस लीफ फोल्डर कीट की पहचान:** राइस लीफ फोल्डर का वैज्ञानिक नाम Cnaphalocrocis medinalis है। यह एक छोटा पतंगा होता है, जिसकी सुंडियाँ धान की पत्तियों को लंबाई में मोड़कर रेशमी धागों से जोड़ देती हैं। सुंडी मुड़ी हुई पत्ती के अंदर रहकर हरे ऊतकों को खाती है।

इस कीट के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं-

* धान की पत्तियाँ लंबाई में मुड़ी हुई दिखाई देती हैं। * पत्तियों के अंदर हरे भाग के स्थान पर सफेद या पारदर्शी धारियाँ बन जाती हैं। * अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ सूखने लगती हैं। * पौधों की भोजन बनाने की क्षमता कम हो जाती है। * गंभीर प्रकोप की स्थिति में फसल की वृद्धि और उपज प्रभावित हो सकती है।

2. **राइस लीफ फोल्डर के प्रकोप के कारण-**इस कीट का प्रकोप कई परिस्थितियों में बढ़ सकता है। खेत में अधिक नाइट्रोजनयुक्त उर्वरक का प्रयोग, घनी फसल, अधिक नमी तथा कीटों की अनुकूल परिस्थितियाँ इसके प्रकोप को बढ़ावा दे सकती हैं। इसके अतिरिक्त, खेत में नियमित निगरानी न करना और समय पर नियंत्रण उपाय नहीं अपनाना भी नुकसान बढ़ा सकता है।

3. **राइस लीफ फोल्डर से बचाव के प्रभावी उपाय**

(क) खेत की नियमित निगरानी- किसानों को धान की फसल का नियमित निरीक्षण करना चाहिए। पत्तियों के मुड़ने और सफेद धारियों जैसे लक्षणों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। शुरुआती अवस्था में कीट की पहचान होने से नियंत्रण करना आसान होता है।

(ख) संतुलित उर्वरकों का प्रयोग- धान की फसल में नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग नहीं करना चाहिए। नाइट्रोजन की अनुशंसित मात्रा को उचित समय पर देना चाहिए। संतुलित उर्वरक प्रबंधन से फसल की अनावश्यक कोमल वृद्धि कम होती है और कीट प्रकोप की आशंका घटाने में सहायता मिलती है।

(ग) खरपतवार और खेत की स्वच्छता- खेत तथा उसके आसपास खरपतवारों का उचित प्रबंधन करना चाहिए। कटाई के बाद फसल के अवशेषों और अन्य पौधों का प्रबंधन भी आवश्यक है। इससे कीटों के आश्रय स्थलों को कम करने में मदद मिल सकती है।

(घ) प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण- धान के खेत में मकड़ियाँ, परजीवी कीट तथा अन्य लाभकारी जीव हानिकारक कीटों की संख्या को नियंत्रित करने में मदद करते हैं। इसलिए बिना आवश्यकता के कीटनाशकों का छिड़काव नहीं करना चाहिए। प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण एकीकृत कीट प्रबंधन का महत्वपूर्ण भाग है।

(ङ) यांत्रिक नियंत्रण- यदि खेत में प्रभावित पत्तियाँ कम संख्या में हों, तो उन्हें सावधानीपूर्वक हटाकर नष्ट किया जा सकता है। खेत का निरीक्षण करते समय मुड़ी हुई पत्तियों को खोलकर सुंडी की उपस्थिति की जाँच करनी चाहिए। बड़े खेतों में इस उपाय को अन्य नियंत्रण विधियों के साथ अपनाया जा सकता है।

(च) फेरोमोन ट्रैप और प्रकाश प्रपंच- निगरानी के लिए उपयुक्त फेरोमोन ट्रैप का उपयोग कीट की उपस्थिति का पता लगाने में सहायता कर सकता है। प्रकाश प्रपंच से पतंगों की गतिविधि का आकलन किया जा सकता है, लेकिन केवल इनके आधार पर कीट का पूर्ण नियंत्रण मान लेना उचित नहीं है।

(ज) आवश्यकता पड़ने पर रासायनिक नियंत्रण- यदि कीट का प्रकोप अधिक हो और फसल को नुकसान पहुँचने की आशंका हो, तो कृषि विशेषज्ञ की सलाह से राइस लीफ फोल्डर के लिए पंजीकृत कीटनाशक का प्रयोग किया जा सकता है। कीटनाशक की मात्रा, पानी की मात्रा, छिड़काव का समय और प्रतीक्षा अवधि उत्पाद के लेबल तथा स्थानीय कृषि विभाग की सिफारिश के अनुसार ही निर्धारित करनी चाहिए। छिड़काव करते समय दस्ताने, मास्क और अन्य आवश्यक सुरक्षा उपकरणों का उपयोग करना चाहिए। तेज हवा या वर्षा की संभावना में छिड़काव नहीं करना चाहिए तथा मधुमक्खियों और अन्य लाभकारी जीवों की सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए।आपकी धान की फसल 60-90 दिन की है और राइस लीफ फोल्डर का प्रकोप मध्यम है, तो ICAR– राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान की कृषि सलाह के अनुसार निम्न विकल्पों पर विचार किया जा सकता है। सलाह में प्रति एकड़ 200 लीटर पानी का उल्लेख है। **कुछ कीटनाशक जिनका उपयोग धान में इस कीट के नियत्रण के लिए किया जाता है, वे हैं-**

* क्लोरान्ट्रानिलिप्रोल (Chlorantraniliprole)
* फ्लूबेंडियामाइड (Flubendiamide)
* इमामेक्टिन बेंजोएट (Emamectin benzoate)

दवा का नाम और फॉर्मूलेशन :	प्रति एकड़ मात्रा	पानी
क्लोरान्ट्रानिलिप्रोल 18.5% sc-60	मिलीलीटर	200 लीटर
फ्लूबेंडियामाइड 20% WG	50 ग्राम	200 लीटर

4. एकीकृत कीट प्रबंधन का महत्व- राइस लीफ फोल्डर की रोकथाम के लिए किसी एक उपाय पर निर्भर रहने के बजाय एकीकृत कीट प्रबंधन (Integrated Pest Management—IPM) अपनाना अधिक उपयोगी है। इसमें खेत की नियमित निगरानी, संतुलित उर्वरक प्रबंधन, प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण, यांत्रिक उपाय और आवश्यकता के अनुसार कीटनाशकों का विवेकपूर्ण प्रयोग शामिल है। इस पद्धति से कीटों की संख्या को आर्थिक नुकसान के स्तर से नीचे बनाए रखने, खेती की लागत को नियंत्रित करने और पर्यावरण पर अनावश्यक दुष्प्रभाव कम करने में सहायता मिलती है।

5. किसानों के लिए महत्वपूर्ण सुझाव

1. धान की फसल का नियमित निरीक्षण करें।
2. पत्तियों पर सफेद धारियाँ और मुड़ने के लक्षण दिखाई देने पर कीट की पहचान करें।
3. नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग न करें।
4. लाभकारी कीटों और प्राकृतिक शत्रुओं को सुरक्षित रखें।
5. बिना आवश्यकता के कीटनाशकों का छिड़काव न करें।
6. कीटनाशक का प्रयोग केवल अनुशंसित मात्रा और सुरक्षा निर्देशों के अनुसार करें।
7. समस्या अधिक होने पर कृषि विज्ञान केंद्र या स्थानीय कृषि विभाग से सलाह लें।

निष्कर्ष-राइस लीफ फोल्डर धान की फसल को नुकसान पहुँचाने वाला महत्वपूर्ण कीट है। इसकी समय पर पहचान और उचित प्रबंधन से फसल को होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। किसानों को नियमित निगरानी, संतुलित उर्वरक प्रयोग, प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण तथा एकीकृत कीट प्रबंधन को अपनाना चाहिए। रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग केवल आवश्यकता पड़ने पर विशेषज्ञों की सलाह के अनुसार करना चाहिए। इन उपायों को अपनाकर धान की फसल को स्वस्थ रखने और बेहतर उत्पादन प्राप्त करने में सहायता मिल सकती है।



01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

टमाटर, बैंगन और मिर्च में लगने वाली प्रमुख बीमारियां एवं उनका निदान

प्रद्युम्न कुमार सिंह शोध छात्र, पादप रोग विज्ञान विभाग, बाँदा कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, बाँदा, उत्तर प्रदेश

प्रस्तावना- सब्जियाँ मानव आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इनमें विटामिन, खनिज लवण, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, रेशे तथा शरीर के लिए आवश्यक अनेक पोषक तत्व पाए जाते हैं। भारत में टमाटर, बैंगन, मिर्च, आलू, भिंडी, फूलगोभी, पत्तागोभी, प्याज, लहसुन, मटर, खीरा, लौकी, कद्दू, करेला तथा अन्य सब्जियों की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है। सब्जी फसलें अपेक्षाकृत कम अवधि में तैयार होती हैं और किसानों को अच्छा आर्थिक लाभ देती हैं।

हालाँकि, सब्जियों की खेती में कीट एवं रोग उत्पादन में कमी के प्रमुख कारण हैं। विभिन्न रोगों के कारण पौधों की जड़, तना, पत्ती, फूल और फल प्रभावित होते हैं। रोगों की तीव्रता अधिक होने पर पूरी फसल नष्ट भी हो सकती है। सब्जियों में रोग मुख्य रूप से फफूंद, जीवाणु, विषाणु, निमेटोड तथा कुछ अन्य रोगकारकों के कारण होते हैं। रोगों का समय पर सही निदान करके उनका समेकित रोग प्रबंधन अपनाना आवश्यक है। इसमें स्वस्थ बीज एवं पौध सामग्री, फसल चक्र, खेत की स्वच्छता, उचित सिंचाई एवं जल निकास, रोगरोधी किस्मों का प्रयोग, जैविक नियंत्रण तथा आवश्यकता के अनुसार अनुमोदित कृषि-रसायनों का प्रयोग शामिल है।

टमाटर के प्रमुख रोग-टमाटर एक महत्वपूर्ण सब्जी फसल है। इसमें फफूंद, जीवाणु तथा विषाणुजनित अनेक रोग पाए जाते हैं।

1. अगेती झुलसा

रोगकारक: अल्टरनेरिया सोलेनाई

रोग के लक्षण: इस रोग में सबसे पहले पुरानी पत्तियों पर छोटे भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। धब्बों में गोलाकार छल्ले दिखाई देने के कारण इन्हें लक्ष्याकार धब्बे भी कहा जाता है। रोग बढ़ने पर पत्तियाँ पीली होकर गिरने लगती हैं। तने तथा फलों पर भी गहरे धब्बे बन सकते हैं।

रोकथाम एवं प्रबंधन: मैनकोजेब 75% WP (2-2.5 ग्राम/लीटर पानी) अथवा एजोक्सीस्ट्रोबिन 23% SC (1 मिलीलीटर/लीटर पानी) अथवा एजोक्सीस्ट्रोबिन 11.5% + मैनकोजेब 30% WP (1.5-1.75 ग्राम/लीटर पानी) में से किसी एक का घोल बनाकर छिड़काव करें। * स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें। * संक्रमित पत्तियों एवं पौध अवशेषों को खेत से हटाएँ। * फसल चक्र अपनाएँ। * खेत में उचित वायु संचार बनाए रखें। * पत्तियों को अनावश्यक रूप से लंबे समय तक गीला न रखें। * आवश्यकता होने पर स्थानीय कृषि विशेषज्ञ की अनुशंसा के अनुसार पंजीकृत फफूंदनाशी का प्रयोग करें।

2. पछेती झुलसा

रोगकारक: फाइटोफ्थोरा इन्फेस्टन्स

रोग के लक्षण: ठंडे और अधिक नमी वाले मौसम में यह रोग तेजी से फैल सकता है। पत्तियों पर पानी से भीगे हुए अनियमित भूरे-काले धब्बे बनते हैं। अनुकूल मौसम में पत्तियाँ तेजी से झुलस सकती हैं और फल पर भी भूरे धब्बे दिखाई देते हैं।

रोकथाम एवं प्रबंधन: * मैनकोजेब 75% WP (2-3 ग्राम/लीटर पानी), फोसेटिल-Al 80% WP (2 ग्राम/लीटर पानी) अथवा एजोक्सीस्ट्रोबिन 11.5% + मैनकोजेब 30% WP (1.5-1.75 ग्राम/लीटर पानी) में से किसी एक का अनुशंसित मात्रा में घोल बनाकर छिड़काव करें। * खेत में जल निकास रखें। * संक्रमित पौध भाग हटाएँ। * अत्यधिक नमी से बचें और स्थानीय अनुशंसा के अनुसार उपयुक्त फफूंदनाशी का प्रयोग करें।

3. जीवाणु मुरझान

रोगकारक: राल्स्टोनिया सोलानेसीरम

रोग के लक्षण: पौधे की पत्तियाँ बिना किसी स्पष्ट पत्ती धब्बे के मुरझाने लगती हैं। कुछ समय बाद पूरा पौधा मुरझा सकता है। यह रोग मिट्टी और संक्रमित पौध सामग्री के माध्यम से फैल सकता है।

रोकथाम एवं प्रबंधन: * स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस आधारित जैव-नियंत्रक मिट्टी में जड़ क्षेत्र के आसपास प्रयोग करें। * बैसिलस आधारित जैव-नियंत्रक उत्पाद के लेबल के अनुसार मिट्टी में प्रयोग करें। * रोगरोधी टमाटर की किस्में अगली फसल में रोगरोधी किस्म लगाएँ। * स्वस्थ पौध लगाएँ। * जल निकास की अच्छी व्यवस्था रखें। * फसल चक्र अपनाएँ। * रोगग्रस्त पौधों को जड़ सहित निकालकर नष्ट करें। * क्षेत्र के लिए उपयुक्त प्रतिरोधी/सहनशील किस्म एवं रूटस्टॉक का प्रयोग करें।

4. टमाटर लीफ कर्ल वायरस

रोगकारक: सफेद मक्खी (बेमिसिया टैबैसी)

रोग के लक्षण: इस रोग में पत्तियाँ ऊपर की ओर मुड़ने लगती हैं, पौधे की वृद्धि रुक जाती है तथा पत्तियाँ छोटी रह जाती हैं। फल बनने की क्षमता भी कम हो सकती है। रोग का प्रसार मुख्यतः सफेद मक्खी जैसे वाहक कीट से होता है।

रोकथाम एवं प्रबंधन:

* इमिडाक्लोप्रिड 17.8% SL (0.3 मिलीलीटर/लीटर पानी) या थायमेथोक्साम 25% WG (0.3 ग्राम/लीटर पानी) में से किसी एक को मिलाकर छिड़काव करें। * स्वस्थ पौध तैयार करें। * संक्रमित पौधों को हटाएँ तथा सफेद मक्खी की निगरानी और समेकित नियंत्रण करें।

मिर्च के प्रमुख रोग

1. मिर्च का एन्थ्रेक्नोज एवं फल सड़न रोग

रोगकारक: कोलेटोट्राइकम प्रजातियां

रोग के लक्षण: प्रारम्भ में फलों पर छोटे, गोल एवं हल्के भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में धब्बे बड़े होकर गहरे भूरे या काले हो जाते हैं। संक्रमित फल सिकुड़ने और सड़ने लगते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में धब्बों पर गुलाबी/नारंगी रंग के बीजाणु समूह दिखाई दे सकते हैं। रोगग्रस्त फल समय से पहले गिर सकते हैं। टहनियों पर संक्रमण होने पर शाखाएं ऊपर से नीचे की ओर सूख सकती हैं।

रोकथाम एवं प्रबंधन: * मैनकोजेब 75% WP (2-2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी), कार्बेन्डाजिम 50% WP (1 ग्राम प्रति लीटर पानी) अथवा टेबुकोनाजोल 25.9% EC (लगभग 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी) में से किसी एक कवकनाशी का घोल बनाकर छिड़काव करें। * स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें। * रोगग्रस्त फलों को तोड़कर खेत से बाहर नष्ट करें। * खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था रखें। * अत्यधिक घनी बुवाई से बचें। * फसल अवशेषों को खेत में न छोड़ें। * फसल चक्र अपनाएं। * आवश्यकता होने पर मिर्च के लिए वर्तमान में अनुमोदित फफूंदनाशी का लेबल के अनुसार प्रयोग करें।

2. मिर्च का डैम्पिंग ऑफ / पौध गलन रोग

रोगकारक: पिथियम, राइज़ोक्टोनिया आदि।

रोग के लक्षण: यह रोग मुख्यतः नर्सरी में छोटे पौधों को प्रभावित करता है। बीज अंकुरित होने से पहले ही सड़ सकता है। अंकुरित पौधों में जमीन की सतह के पास तना पतला एवं कमजोर हो जाता है। पौधे अचानक गिरकर सूख जाते हैं। अधिक नमी तथा जलभराव में रोग तेजी से फैलता है।

रोकथाम एवं प्रबंधन: * नर्सरी की मिट्टी में कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50% WP (2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी) से ड्रेंचिंग करें। * बीजोपचार के लिए थिरम 75% WS (4 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) अथवा मेटालेक्सिल 35% SD (2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) का उपयोग करें। * उठी हुई क्यारियों में पौध तैयार करें। * अत्यधिक सिंचाई न करें। * अच्छी जल निकास वाली मिट्टी का प्रयोग करें। * बीजोपचार करें। * नर्सरी में अत्यधिक पौध घनत्व न रखें। * ट्राइकोडर्मा आधारित जैव-एजेंट का उपयोग स्थानीय अनुशंसा के अनुसार किया जा सकता है।



08/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

जलवायु परिवर्तन: सतत कृषि पर प्रभाव, अनुकूलन एवं शमन रणनीतियाँ

अनामिका पटेल, नारायण दत्त मिश्र
भावना सैनी, डॉ. अभिनन्दन सिंह
(सहायक प्राध्यापक) सस्य विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

सारांश-जलवायु परिवर्तन वैश्विक पर्यावरणीय स्थिरता, खाद्य सुरक्षा और मानव कल्याण के लिए सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक बनकर उभरा है। बढ़ता तापमान, वर्षा के स्वरूप में बदलाव, सूखा, बाढ़ और लू की बढ़ती आवृत्ति तथा अन्य चरम मौसमी घटनाएँ कृषि उत्पादन प्रणालियों को लगातार प्रभावित कर रही हैं। कृषि विशेष रूप से संवेदनशील है, क्योंकि फसलों और पशुधन की उत्पादकता तापमान, वर्षा, मृदा नमी तथा अन्य जलवायवीय कारकों पर बहुत अधिक निर्भर करती है। इस लेख में जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारणों और परिणामों की समीक्षा की गई है, विशेष रूप से कृषि तथा प्राकृतिक संसाधनों पर इसके प्रभावों पर ध्यान दिया गया है। जलवायु परिवर्तन फसलों की विकास-अवस्थाओं को बदल सकता है, फसल अवधि घटा सकता है, उपज क्षमता कम कर सकता है, कीट एवं रोगों का दबाव बढ़ा सकता है तथा जल उपलब्धता को प्रभावित कर सकता है। संवेदनशील क्षेत्रों और छोटे किसान परिवारों पर इसका प्रभाव विशेष रूप से गंभीर होता है।

हालाँकि, जलवायु-सहिष्णु किस्मों को अपनाना, बुवाई की तिथियों में समायोजन, संरक्षण कृषि, कुशल सिंचाई, फसल विविधीकरण, एकीकृत पोषक तत्त्व प्रबंधन, कृषि वानिकी और मौसम-आधारित निर्णय जैसी अनुकूलन रणनीतियाँ कृषि की सहनशीलता बढ़ा सकती हैं। नाइट्रोजन उपयोग दक्षता में सुधार, संरक्षण जुताई, फसल अवशेष प्रबंधन, कृषि वानिकी, मृदा में कार्बन संचयन तथा पशुधन और धान प्रबंधन में सुधार जैसे शमन उपाय ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम करने में योगदान दे सकते हैं। इसलिए अनुकूलन, शमन, संसाधन संरक्षण और पारिस्थितिकी तंत्र प्रबंधन को जोड़ने वाले एकीकृत दृष्टिकोण आवश्यक हैं। वैज्ञानिकाक नवाचार, किसानों की भागीदारी, संस्थागत सहयोग और उपयुक्त नीतियों से समर्थित जलवायु-सहिष्णु कृषि बदलती जलवायु में सतत खाद्य उत्पादन में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

मुख्य शब्द-जलवायु परिवर्तन, कृषि, अनुकूलन, शमन, जलवायु सहनशीलता, खाद्य सुरक्षा, सतत कृषि

परिचय- जलवायु परिवर्तन इक्कीसवीं सदी की सबसे महत्त्वपूर्ण वैश्विक चुनौतियों में से एक है, जो कृषि उत्पादकता, खाद्य सुरक्षा, प्राकृतिक संसाधनों और कृषक समुदायों की आजीविका के लिए गंभीर खतरे उत्पन्न करता है। इसका प्रमुख कारण वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), मीथेन (CH_4) और नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) जैसी ग्रीनहाउस गैसों की बढ़ती सांद्रता है। जीवाश्म ईंधनों का दहन, वनों की कटाई, औद्योगिक गतिविधियाँ और अस्थिर कृषि पद्धतियाँ इन गैसों में वृद्धि करती हैं। इसके परिणामस्वरूप वैश्विक तापमान बढ़ता है, वर्षा के स्वरूप में बदलाव आता है, चरम मौसमी घटनाएँ अधिक बार होती हैं तथा लंबे समय तक सूखा और बाढ़ जैसी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनका विश्वभर की कृषि प्रणालियों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

कृषि इन परिवर्तनों के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील है, क्योंकि फसलों की वृद्धि, विकास, उपज निर्माण और संसाधन उपयोग दक्षता तापमान, वर्षा, सौर विकिरण तथा वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड की सांद्रता जैसी जलवायवीय परिस्थितियों पर निर्भर करती है। भारत जैसे विकासशील देशों में, जहाँ कृषि उत्पादन का बड़ा हिस्सा मानसूनी वर्षा और छोटे किसानों पर निर्भर है, जलवायु परिवर्तन अतिरिक्त चुनौतियाँ पैदा करता है। बढ़ता तापमान, मानसून का अनिश्चित व्यवहार, भूजल का ह्रास, मृदा क्षरण और चरम मौसमी घटनाएँ फसल उपज तथा किसानों की आय के लिए खतरा हैं। इसलिए किसानों की अनुकूलन क्षमता बढ़ाने हेतु जलवायु-सहिष्णु तकनीकों को स्थानीय रूप से उपयुक्त कृषि पद्धतियों, कृषि अनुसंधान, प्रसार सेवाओं और सहायक सरकारी नीतियों के साथ जोड़ना आवश्यक है। अनुकूलन, शमन और सतत संसाधन प्रबंधन का संतुलित दृष्टिकोण खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, किसानों की आजीविका, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तथा दीर्घकालिक कृषि स्थिरता को बढ़ावा दे सकता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारक

1.जीवाश्म ईंधनों का दहन और ऊर्जा खपत-जीवाश्म ईंधनों की खपत वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों की सांद्रता बढ़ाती है, जिससे वैश्विक तापवृद्धि तेज होती है और जलवायु परिस्थितियों में बदलाव आता है। सौर एवं पवन ऊर्जा जैसे नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों की ओर बढ़ना तथा कृषि कार्यों में ऊर्जा दक्षता बढ़ाना इन उत्सर्जनों को कम करने में मदद कर सकता है।

2.वनों की कटाई और भूमि उपयोग में परिवर्तन-वनों की कटाई तथा वनों, घासभूमियों और आर्द्रभूमियों को कृषि भूमि, बस्तियों और औद्योगिक क्षेत्रों में बदलना जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारक हैं। वन और अन्य प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करके तथा वनस्पति और मिट्टी में कार्बन जमा करके कार्बन सिंक का कार्य करते हैं। जब इन पारिस्थितिकी तंत्रों को साफ किया जाता है, जलाया जाता है या उनका क्षरण होता है, तो संचित कार्बन वायुमंडल में मुक्त हो जाता है और भविष्य में कार्बन संचयन की क्षमता घट जाती है। भूमि उपयोग में परिवर्तन वाष्पोत्सर्जन, सतही तापमान और स्थानीय वर्षा के स्वरूप को भी प्रभावित करता है।

3.कृषि गतिविधियाँ और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन: फसल और पशुधन उत्पादन प्रणालियों से मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड और कार्बन डाइऑक्साइड निकलने के कारण कृषि जलवायु परिवर्तन में योगदान देती है। कृषि उत्सर्जन के प्रमुख स्रोतों में जुगाली करने वाले पशुओं में आंत्र किण्वन, गोबर प्रबंधन, जलमग्न धान की खेती, नाइट्रोजन उर्वरकों का प्रयोग और फसल अवशेषों को जलाना शामिल हैं।

4.रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग और अप्रभावी पोषक तत्व प्रबंधन: नाइट्रोजन उर्वरकों का गहन उपयोग कृषि मिट्टी से नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। जब फसल की आवश्यकता से अधिक नाइट्रोजन दी जाती है या अनुपयुक्त मृदा-नमी परिस्थितियों में उर्वरक प्रयोग होता है, तो नाइट्रीकरण और विनाइट्रीकरण जैसी सूक्ष्मजीवी प्रक्रियाओं से नाइट्रस ऑक्साइड वायुमंडल में निकल सकती है। इसके अतिरिक्त, उर्वरकों के उत्पादन और परिवहन में ऊर्जा खर्च होती है तथा संबंधित ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन होता है। उर्वरकों का अनुचित प्रबंधन नाइट्रोजन उपयोग दक्षता घटाता है और निक्षालन तथा गैसीय उत्सर्जन से पोषक तत्त्वों की हानि बढ़ाता है।

5.पशुधन उत्पादन और मीथेन उत्सर्जन: पशुधन उत्पादन मुख्यतः आंत्र किण्वन से मीथेन तथा गोबर प्रबंधन से मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन के माध्यम से जलवायु परिवर्तन में योगदान देता है। गाय, भैंस, भेड़ और बकरी जैसे जुगाली करने वाले पशुओं में चारे के सूक्ष्मजीवी पाचन के दौरान मीथेन बनती है। पशु गोबर के अवायवीय परिस्थितियों में विघटित होने पर भी मीथेन निकल सकती है।

6.औद्योगीकरण, शहरीकरण और जनसंख्या वृद्धि: औद्योगीकरण और शहरीकरण से ऊर्जा, परिवहन, निर्माण सामग्री, भोजन तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों की माँग बढ़ती है। जीवाश्म ईंधनों का दहन, औद्योगिक प्रक्रियाएँ, निर्माण गतिविधियाँ और शहरी क्षेत्रों का विस्तार ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में योगदान करते हैं। जनसंख्या वृद्धि और उपभोग के बदलते तरीके कृषि भूमि, वनों, जल संसाधनों और ऊर्जा आपूर्ति पर दबाव बढ़ा सकते हैं। इससे प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र कृषि भूमि और बस्तियों में परिवर्तित हो सकते हैं, जिससे उत्सर्जन बढ़ता है और कार्बन सिंक कम होते हैं।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

1.फसल वृद्धि और उत्पादकता पर प्रभाव: बढ़ता तापमान और वर्षा के स्वरूप में परिवर्तन फसलों की वृद्धि, विकास और उत्पादकता को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित कर सकते हैं। उच्च तापमान फसल के पकने की प्रक्रिया तेज कर सकता है, वानस्पतिक वृद्धि की अवधि घटा सकता है और प्रकाश संश्लेषण तथा दाना भरने के लिए उपलब्ध समय कम कर सकता है। फूल आने के समय गर्मी का तनाव पराग की जीवितता, निषेचन और दाना निर्माण को बाधित कर सकता है, जिससे अंततः उपज घटती है। सूखा और अनियमित वर्षा जल तथा पोषक तत्वों के अवशोषण को सीमित करके पौधों की वृद्धि को और प्रभावित कर सकते हैं।

2.मृदा स्वास्थ्य और उर्वरता पर प्रभाव: जलवायु परिवर्तन तापमान, नमी, अपरदन और जैविक पदार्थों के अपघटन में बदलाव के माध्यम से मिट्टी के गुणों को प्रभावित करता है। उपयुक्त नमी और वायु-संचार की परिस्थितियों में अधिक तापमान मृदा जैविक पदार्थ के अपघटन को तेज कर सकता है, जिससे मिट्टी से कार्बन की हानि बढ़ सकती है।



09/2026-27

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

कीटनाशक और मधुमक्खियां: फसलों की सुरक्षा के साथ परागणकर्ताओं का संरक्षण

परमानन्द कुमार मौर्य (शोध छात्र)
वरुण आर्य (जे. आर. एफ.)
श्रीनिवास एन (सहायक प्राध्यापक) कीट विज्ञान एवं कृषि जन्तु विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश: आधुनिक कृषि में कीटनाशकों का उपयोग फसल को कीटों से होने वाली क्षति कम करने तथा उत्पादन और गुणवत्ता बनाए रखने के लिए किया जाता है। हालांकि, कुछ कीटनाशक लक्ष्य कीटों के अतिरिक्त मधुमक्खियों और अन्य परागणकर्ताओं को भी प्रभावित कर सकते हैं। मधुमक्खियाँ केवल शहद उत्पादन के लिए ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, बल्कि अनेक फसलों और जंगली पौधों के परागण में भी योगदान देती हैं। कीटनाशकों के संपर्क से मधुमक्खियों में तत्काल मृत्यु के अतिरिक्त दिशा-ज्ञान, उड़ान क्षमता, भोजन-संग्रह, सीखने-स्मरण, प्रतिरक्षा, प्रजनन और कॉलोनी के विकास पर भी प्रभाव पड़ सकता है। इन प्रभावों की तीव्रता सक्रिय रसायन, मात्रा, संपर्क के मार्ग, संपर्क की अवधि, मधुमक्खी की प्रजाति और पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुसार बदलती है। वैश्विक शोध में नियोनिकोटिनॉइड, पाइरेथ्रॉइड तथा कुछ अन्य कीटनाशकों के संभावित प्रतिकूल प्रभावों के प्रमाण मिले हैं, जबकि कुछ नियंत्रित खेत-अध्ययनों में निर्धारित परिस्थितियों के अंतर्गत मधुमक्खी कॉलोनियों पर स्पष्ट प्रतिकूल प्रभाव नहीं मिले। इसलिए कीटनाशकों के जोखिम का आकलन संतुलित और संदर्भ-आधारित होना चाहिए। भारत में सरसों, सूरजमुखी, फल-सब्जियों, दलहनी फसलों और अन्य परागण-निर्भर कृषि प्रणालियों के लिए यह विषय विशेष महत्त्व रखता है। यह लेख मधुमक्खियों पर कीटनाशकों के प्रभावों, प्रमुख शोध-अध्ययनों, भारतीय कृषि के संदर्भ और परागणकर्ताओं की सुरक्षा के लिए व्यावहारिक उपायों की समीक्षा करता है। अंततः, समेकित कीट प्रबंधन, सुरक्षित छिड़काव, फूलों के समय जोखिम कम करना, किसान-प्रशिक्षण और वैज्ञानिक निगरानी के माध्यम से फसल-सुरक्षा तथा परागणकर्ता-संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित किया जा सकता है।

मुख्य शब्द: मधुमक्खियाँ, कीटनाशक, परागण, नियोनिकोटिनॉइड, समेकित कीट प्रबंधन, जैव विविधता, कृषि स्थिरता, Apis mellifera, Apis cerana

1. प्रस्तावना- कृषि और मधुमक्खियों के बीच महत्त्वपूर्ण संबंध

कृषि केवल बीज बोने, उर्वरक देने और फसल काटने की प्रक्रिया नहीं है; यह अनेक जीवों और पर्यावरणीय प्रक्रियाओं के सहयोग से चलने वाली एक जटिल जैविक प्रणाली है। इस प्रणाली में मधुमक्खियाँ और अन्य परागणकर्ता महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फूलों से रस और पराग एकत्र करते समय मधुमक्खियाँ परागकणों को एक फूल से दूसरे फूल तक पहुँचाती हैं, जिससे अनेक पौधों में निषेचन, बीज निर्माण और फल-विकास की प्रक्रिया को सहायता मिलती है। भारत में सरसों, तिलहन, फल, कई सब्जियाँ, दलहनी फसलें और अनेक बीज-उत्पादन प्रणालियाँ मधुमक्खियों तथा दूसरे कीट-परागणकर्ताओं से लाभान्वित हो सकती हैं। मधुमक्खी पालन ग्रामीण आजीविका, शहद उत्पादन और कृषि-आधारित उद्यमों के लिए भी अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार मधुमक्खियों का संरक्षण खाद्य उत्पादन, जैव विविधता और ग्रामीण अर्थव्यवस्था–तीनों से जुड़ा हुआ है। दूसरी ओर, कृषि में कीटों, रोगों और खरपतवारों का प्रबंधन आवश्यक है। कीटों के प्रकोप से फसल की उपज और गुणवत्ता घट सकती है, इसलिए किसान विभिन्न रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग करते हैं। समस्या तब उत्पन्न होती है जब इन रसायनों का संपर्क लक्ष्य कीटों के अतिरिक्त लाभकारी जीवों से भी होता है। यदि कीटनाशक का छिड़काव फूलों पर सक्रिय रूप से भोजन एकत्र कर रही मधुमक्खियों के समय किया जाए, या रसायन पराग, पुष्परस, पानी अथवा आसपास की वनस्पति तक पहुँच जाए, तो परागणकर्ताओं के लिए जोखिम बढ़ सकता है।

2. कीटनाशक और मधुमक्खियों का संपर्क कैसे होता है?

मधुमक्खियों तक कीटनाशक कई रास्तों से पहुँच सकते हैं। जोखिम का आकलन करते समय इन संपर्क-मार्गों को समझना आवश्यक है।

2.1 प्रत्यक्ष संपर्क: छिड़काव के दौरान मधुमक्खियों के शरीर पर कीटनाशक की बूंदें पड़ सकती हैं। यह संपर्क विशेष रूप से तब चिंता का विषय होता है जब मधुमक्खियाँ फूलों पर भोजन एकत्र कर रही हों। रसायन की विषाक्तता, बूंदों का आकार, छिड़काव की विधि, मौसम और संपर्क की मात्रा के अनुसार प्रभाव बदल सकता है।

2.2 दूषित पुष्परस और पराग: कुछ कीटनाशक पौधों के ऊतकों में प्रवेश कर सकते हैं। ऐसे रसायनों की उपस्थिति परिस्थितियों के अनुसार पुष्परस या पराग में भी हो सकती है। मधुमक्खियाँ जब दूषित पुष्परस और पराग एकत्र करती हैं, तो उन्हें भोजन के माध्यम से रसायन का संपर्क हो सकता है। संपर्क की मात्रा फसल, रसायन, प्रयोग की विधि, पौधे की अवस्था और समय के अनुसार बदलती है।

2.3 बीज उपचार और मिट्टी के माध्यम से संपर्क: कुछ फसलों के बीज बोने से पहले कीटनाशक से उपचारित किए जाते हैं। बुवाई के दौरान उत्पन्न धूल आसपास के क्षेत्रों में फैल सकती है और मधुमक्खियों के संपर्क में आ सकती है। व्यवस्थित रूप से कार्य करने वाले (systemic) कीटनाशक पौधे में प्रवेश कर सकते हैं; कुछ परिस्थितियों में उनके अवशेष पौधे के विभिन्न भागों में पाए जा सकते हैं।

2.4 पानी और आसपास के आवास: मधुमक्खियाँ पानी के स्रोतों पर भी जाती हैं। खेतों के पास स्थित छोटे जलाशय, सिंचाई का पानी, गीली मिट्टी और वनस्पति पर जमा रसायन संभावित संपर्क-मार्ग बन सकते हैं। इसके अतिरिक्त, खेत की मेड़ों और आसपास के जंगली फूलों पर मौजूद अवशेष भी महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। इस कारण जोखिम केवल उपचारित फसल तक सीमित नहीं रहता।

2.5 बार-बार और मिश्रित संपर्क: किसी एक बार के संपर्क से होने वाला प्रभाव और कई दिनों या सप्ताहों तक कम मात्रा में होने वाला संपर्क अलग हो सकता है। मधुमक्खियाँ अलग-अलग फसलों और फूलों से भोजन एकत्र करती हैं, इसलिए उन्हें एक से अधिक रसायनों का संपर्क भी मिल सकता है। मिश्रित संपर्क के परिणामों का अनुमान केवल प्रत्येक रसायन के अलग-अलग प्रभावों को जोड़कर हमेशा नहीं लगाया जा सकता। कुछ मिश्रणों में प्रभाव बढ़ सकता है, जबकि अन्य परिस्थितियों में ऐसा प्रभाव प्रदर्शित न हो। इसलिए मिश्रित कीटनाशकों का मूल्यांकन वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर करना आवश्यक है।

3. मधुमक्खियों पर कीटनाशकों के संभावित प्रभाव:

कीटनाशकों का प्रभाव केवल यह देखकर नहीं समझा जा सकता कि कितनी मधुमक्खियाँ तुरंत मर गईं। कुछ प्रभाव दिखाई देने वाले और तीव्र होते हैं, जबकि कुछ व्यवहार, प्रजनन या कॉलोनी के विकास में बदलाव के रूप में सामने आते हैं।

3.1 तीव्र विषाक्तता और मृत्यु: पर्याप्त मात्रा में किसी मधुमक्खी-विषाक्त कीटनाशक के संपर्क से मधुमक्खियों की मृत्यु हो सकती है। छिड़काव के समय प्रत्यक्ष संपर्क इसके संभावित कारणों में से एक है। हालांकि, खेत में मधुमक्खियों की मृत्यु का कारण केवल कीटनाशक मान लेना उचित नहीं है; रोग, परजीवी, भोजन की कमी, अत्यधिक तापमान और दूसरे पर्यावरणीय तनाव भी जाँचने चाहिए।

3.2 दिशा-ज्ञान और भोजन-संग्रह: भोजन खोजने के लिए मधुमक्खियों को फूलों के स्थान याद रखने, दिशा पहचानने और छत्ते तक लौटने की आवश्यकता होती है। कुछ नियंत्रित प्रयोगों में कुछ कीटनाशकों के संपर्क के बाद मधुमक्खियों के छत्ते तक लौटने की सफलता या भोजन-संग्रह संबंधी व्यवहार में बदलाव पाया गया है। Henry और सहकर्मियों (2012) ने थायमेथॉक्सेम के संपर्क के बाद Apis mellifera में घर लौटने की विफलता और जीवित रहने की संभावना में कमी की रिपोर्ट दी। इस निष्कर्ष का अर्थ यह नहीं है कि हर खेत में हर प्रकार के संपर्क से समान प्रभाव होगा, इसका महत्व यह है कि व्यवहार-संबंधी प्रभाव जोखिम-मूल्यांकन में शामिल किए जाने चाहिए।

3.3 सीखने, स्मरण और संवेदी क्षमता पर प्रभाव: मधुमक्खियाँ गंध, रंग और स्थानिक संकेतों का उपयोग करके भोजन-स्रोत पहचानती हैं। कुछ कीटनाशक उनके सीखने और स्मरण की प्रक्रियाओं को प्रभावित कर सकते हैं। यदि भोजन की पहचान या फूलों तक पहुँचने की दक्षता घटती है, तो इससे व्यक्तिगत मधुमक्खी की कार्यक्षमता और संभावित रूप से कॉलोनी को उपलब्ध भोजन प्रभावित हो सकता है। इन प्रभावों की प्रकृति और तीव्रता रसायन, मात्रा और परीक्षण की परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

3.4 उड़ान क्षमता और शारीरिक कार्य: उड़ान मधुमक्खियों के भोजन-संग्रह, छत्ते की देखभाल और प्रजनन-संबंधी कार्यों के लिए आवश्यक है। कुछ अध्ययनों में थायमेथॉक्सेम जैसे कीटनाशकों के संपर्क से मधुमक्खियों की उड़ान क्षमता में प्रतिकूल परिवर्तन दर्ज किए गए हैं। ऐसे निष्कर्ष यह रेखांकित करते हैं कि जीवित बच जाना हमेशा सामान्य कार्यक्षमता बनाए रखने के बराबर नहीं होता।

3.5 कॉलोनी की वृद्धि और प्रजनन: मधुमक्खी कॉलोनी एक सामाजिक इकाई है। यदि कुछ श्रमिक मधुमक्खियाँ मर जाएँ या भोजन-संग्रह में कम कुशल हों, तो पूरी कॉलोनी पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ सकता है। भौंरों (Bombus spp.) पर किए गए शोध में कुछ कीटनाशक संपर्कों के बाद कॉलोनी की वृद्धि और नई रानियों के उत्पादन में कमी देखी गई है। Whitehorn और सहकर्मियों (2012) ने इमिडाक्लोप्रिड के संपर्क के बाद Bombus terrestris कॉलोनियों में वृद्धि और रानी उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव की रिपोर्ट दी। Rundl of और सहकर्मियों (2015) के खेत-अध्ययन में नियोनिकोटिनॉइड-उपचारित तिलहनी फसल से जुड़े परिदृश्य में जंगली मधुमक्खियों के कुछ समूहों पर प्रतिकूल प्रभाव पाए गए, जबकि उसी अध्ययन में प्रबंधित मधुमक्खी कॉलोनियों पर समान स्तर का प्रभाव स्पष्ट नहीं था।

3.6 प्रतिरक्षा, रोग और अन्य तनाव: कीटनाशकों का संपर्क मधुमक्खियों के शरीर-क्रियात्मक कार्यों को प्रभावित कर सकता है। कुछ शोधों में कीटनाशक संपर्क, रोगजनकों और अन्य तनावों के बीच संभावित अंतःक्रियाओं की जाँच की गई है। फिर भी, किसी एक प्रयोग के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है कि हर कीटनाशक हर रोग के प्रति संवेदनशीलता बढ़ा देता है। वास्तविक परिणाम मधुमक्खी की प्रजाति, संपर्क की मात्रा, रोगजनक, पोषण और पर्यावरणीय परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

खाद्य पैकेजिंग का भविष्य : बायोडिग्रेडेबल और स्मार्ट पैकेजिंग

आकांक्षा शोध छात्रा, सेंटर ऑफ फूड टेक्नोलॉजी इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

प्रस्तावना: खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता, सुरक्षा, ताजगी और पोषण मूल्य को बनाए रखने में पैकेजिंग की महत्वपूर्ण भूमिका है। खाद्य पैकेजिंग केवल किसी उत्पाद को ढकने या आकर्षक रूप देने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह उत्पादन इकाई से उपभोक्ता तक खाद्य पदार्थों को सुरक्षित पहुँचाने की एक आवश्यक तकनीक है। आधुनिक खाद्य उद्योग में पैकेजिंग का महत्व लगातार बढ़ रहा है, क्योंकि उपभोक्ता अब ऐसे उत्पादों की अपेक्षा करते हैं जो सुरक्षित, गुणवत्तापूर्ण, लंबे समय तक ताजा और पर्यावरण के अनुकूल हों। दूसरी ओर, प्लास्टिक पैकेजिंग के बढ़ते उपयोग से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याएँ पूरी दुनिया के लिए गंभीर चुनौती बन गई हैं। इसी संदर्भ में बायोडिग्रेडेबल पैकेजिंग और स्मार्ट पैकेजिंग जैसी आधुनिक तकनीकें खाद्य उद्योग के भविष्य को नई दिशा प्रदान कर रही हैं।

पारंपरिक प्लास्टिक पैकेजिंग अपनी कम लागत, हल्के वजन, मजबूती और उत्कृष्ट अवरोधक गुणों के कारण व्यापक रूप से उपयोग की जाती है। हालांकि, अनेक प्रकार के पारंपरिक प्लास्टिक प्राकृतिक परिस्थितियों में बहुत धीमी गति से विघटित होते हैं और इनके अनुचित निपटान से मिट्टी, जल तथा समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित होते हैं। इसके अतिरिक्त, खाद्य पदार्थों की बर्बादी भी एक बड़ी समस्या है। ऐसे में भविष्य की खाद्य पैकेजिंग का उद्देश्य केवल प्लास्टिक का विकल्प विकसित करना नहीं, बल्कि खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करते हुए संसाधनों के कुशल उपयोग, अपशिष्ट में कमी और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देना भी है।

1. **बायोडिग्रेडेबल पैकेजिंग:** पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक कदम- बायोडिग्रेडेबल पैकेजिंग ऐसी पैकेजिंग सामग्री से बनाई जाती है, जिसे उपयुक्त पर्यावरणीय परिस्थितियों में सूक्ष्मजीवों की क्रिया द्वारा जल, कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन तथा जैविक पदार्थों जैसे उत्पादों में विघटित किया जा सकता है। वास्तविक उत्पाद और विघटन की प्रक्रिया सामग्री की संरचना तथा उपलब्ध ऑक्सीजन, तापमान, नमी और अन्य परिस्थितियों पर निर्भर करती है। इसलिए यह समझना आवश्यक है कि प्रत्येक बायोडिग्रेडेबल सामग्री सामान्य मिट्टी, घरेलू खाद या समुद्री वातावरण में समान गति से विघटित नहीं होती।

बायोडिग्रेडेबल पैकेजिंग के विकास में स्टार्च, सेल्यूलोज, चिटोसान, एल्जिनेट, जिलेटिन, प्रोटीन तथा पॉलीलैक्टिक एसिड जैसे पदार्थों का उपयोग किया जा रहा है। स्टार्च आधारित पैकेजिंग अपेक्षाकृत सुलभ और नवीकरणीय कच्चे माल से बनाई जा सकती है। सेल्यूलोज आधारित फिल्में पौधों के रेशों से प्राप्त होती हैं, जबकि चिटोसान जैसी सामग्री में फिल्म निर्माण तथा कुछ परिस्थितियों में रोगाणुरोधी गुणों की संभावना पाई जाती है। दूध के मट्ठे से प्राप्त प्रोटीन, मटर प्रोटीन और अन्य पादप प्रोटीन भी खाद्य पैकेजिंग के विकास के लिए उपयोगी विकल्प हैं।

2. **खाद्य पैकेजिंग में प्राकृतिक पदार्थों की भूमिका-** भविष्य की टिकाऊ पैकेजिंग में प्राकृतिक पॉलिमर महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। स्टार्च, सेल्यूलोज, प्रोटीन और समुद्री शैवाल से प्राप्त पदार्थों का उपयोग पतली फिल्मों, कोटिंग्स और अन्य पैकेजिंग संरचनाओं के निर्माण में किया जा सकता है। इन सामग्रियों से विकसित पैकेजिंग का उपयोग फल, सब्जियों, बेकरी उत्पादों तथा कुछ अन्य खाद्य पदार्थों के संरक्षण में संभावित रूप से किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए, चिटोसान आधारित खाद्य-सम्पर्क फिल्में कुछ सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को नियंत्रित करने की क्षमता प्रदर्शित कर सकती हैं। इसी प्रकार, सेल्यूलोज आधारित फिल्मों को विभिन्न प्राकृतिक यौगिकों के साथ मिलाकर उनके अवरोधक गुणों में सुधार किया जा सकता है। प्रोटीन आधारित फिल्मों में ऑक्सीजन के प्रति अच्छा अवरोधक गुण हो सकता है, लेकिन नमी के प्रति उनकी संवेदनशीलता एक महत्वपूर्ण सीमा है। इन सामग्रियों की प्रमुख चुनौतियों में नमी के कारण कमजोर होना, यांत्रिक मजबूती में कमी, जलवाष्प के प्रति अधिक पारगम्यता और बड़े पैमाने पर उत्पादन की लागत शामिल हैं। इसलिए शोधकर्ता विभिन्न पॉलिमरों को मिलाकर, प्राकृतिक प्लास्टिसाइजर का उपयोग करके और नैनो-संरचनाओं के माध्यम से इनके गुणों में सुधार करने का प्रयास कर रहे हैं। हालांकि, खाद्य पदार्थों के संपर्क में उपयोग किए जाने वाले प्रत्येक घटक की सुरक्षा और नियामकीय उपयुक्तता सुनिश्चित करना अनिवार्य है।

3. **स्मार्ट पैकेजिंग: पैकेजिंग से आगे की तकनीक-** स्मार्ट पैकेजिंग आधुनिक खाद्य प्रौद्योगिकी का एक उभरता हुआ क्षेत्र है। पारंपरिक पैकेजिंग मुख्यतः खाद्य पदार्थों को बाहरी प्रभावों से बचाती है, जबकि स्मार्ट पैकेजिंग खाद्य उत्पाद या उसके आसपास के वातावरण में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी देने में सक्षम हो सकती है। इसके माध्यम से तापमान, नमी, गैसों या खाद्य पदार्थ के खराब होने से जुड़े कुछ संकेतकों की निगरानी की जा सकती है। स्मार्ट पैकेजिंग में सेंसर, संकेतक, डेटा रिकॉर्डर और डिजिटल पहचान प्रणालियों जैसी तकनीकों का उपयोग किया जाता है। इन तकनीकों की सहायता से खाद्य पदार्थों के भंडारण, परिवहन और वितरण के दौरान गुणवत्ता प्रबंधन अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

स्मार्ट पैकेजिंग की एक प्रमुख श्रेणी तापमान-संवेदी संकेतकों की है। उदाहरण के लिए, समय-तापमान संकेतक किसी उत्पाद के तापमान और उसके संपर्क की अवधि के आधार पर दृश्य परिवर्तन प्रदर्शित कर सकते हैं। यदि दूध, मांस या अन्य नाशवान खाद्य पदार्थों को निर्धारित तापमान से अधिक पर लंबे समय तक रखा जाता है, तो उपयुक्त संकेतक संभावित तापमान दुरुपयोग की जानकारी दे सकते हैं। इससे कोल्ड चेन प्रबंधन में सहायता मिल सकती है।

4. **खाद्य पदार्थों की ताजगी बताने वाले संकेतक-** ताजगी संकेतक स्मार्ट पैकेजिंग की एक महत्वपूर्ण तकनीक हैं। ये खाद्य पदार्थों के खराब होने के दौरान उत्पन्न होने वाले रासायनिक या जैविक परिवर्तनों से संबंधित संकेतों का पता लगाने में मदद कर सकते हैं। कुछ संकेतक पैकेज के भीतर गैसों, अम्लता या अन्य विशिष्ट परिवर्तनों के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं और रंग बदलकर जानकारी प्रदान करते हैं। मांस और मछली जैसे प्रोटीन-समृद्ध खाद्य पदार्थों के खराब होने के दौरान कुछ वाष्पशील यौगिक उत्पन्न हो सकते हैं, जिनसे पैकेज के भीतर का वातावरण बदलता है। उपयुक्त रंग-संवेदी संकेतक इन परिवर्तनों को प्रदर्शित कर सकते हैं। इसी प्रकार, कुछ फलों के पकने के दौरान निकलने वाली एथिलीन गैस की निगरानी उपयोगी हो सकती है। इन तकनीकों से उत्पाद की स्थिति के बारे में अतिरिक्त जानकारी प्राप्त करने और भंडारण प्रबंधन को बेहतर बनाने में सहायता मिल सकती है। प्राकृतिक रंगद्रव्यों, जैसे एंथोसाइनिन, पर आधारित संकेतकों पर भी शोध किया जा रहा है। ये रंगद्रव्य अम्लीय और क्षारीय परिस्थितियों में रंग बदल सकते हैं। इन्हें उपयुक्त फिल्म या कोटिंग में शामिल करके ऐसे संकेतक विकसित किए जा सकते हैं जो कुछ खाद्य पदार्थों में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी दें। हालांकि, रंग परिवर्तन की व्याख्या उत्पाद-विशिष्ट वैज्ञानिक सत्यापन के आधार पर ही की जानी चाहिए। केवल रंग देखकर सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों की सुरक्षा का निर्णय लेना उचित नहीं है।

5. **सक्रिय पैकेजिंग: खाद्य संरक्षण की उन्नत तकनीक-** सक्रिय पैकेजिंग स्मार्ट पैकेजिंग से संबंधित, लेकिन अलग अवधारणा है। इसमें पैकेजिंग सामग्री या उसके भीतर लगाए गए घटक खाद्य पदार्थ के आसपास के वातावरण को प्रभावित करके गुणवत्ता बनाए रखने में सहायता करते हैं। इसके उदाहरणों में ऑक्सीजन अवशोषक, नमी नियंत्रक, एथिलीन अवशोषक और कुछ स्वीकृत रोगाणुरोधी प्रणालियाँ शामिल हैं। ऑक्सीजन अवशोषक पैकेज के भीतर उपलब्ध ऑक्सीजन को कम करके ऑक्सीकरण की गति को नियंत्रित कर सकते हैं। यह विशेष रूप से वसा-समृद्ध खाद्य पदार्थों, सूखे उत्पादों और कुछ बेकरी उत्पादों की गुणवत्ता बनाए रखने में उपयोगी हो सकता है। इसी प्रकार, नमी नियंत्रक कुछ खाद्य पदार्थों में अवांछित नमी को कम करने या उपयुक्त नमी संतुलन बनाए रखने में मदद कर सकते हैं। फल एवं सब्जियों की पैकेजिंग में एथिलीन प्रबंधन उपयोगी हो सकता है, क्योंकि यह गैस अनेक फलों के पकने की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, नियंत्रित वातावरण पैकेजिंग और संशोधित वातावरण पैकेजिंग के माध्यम से पैकेज के भीतर गैसों की संरचना को समायोजित किया जा सकता है। इससे कुछ खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता और भंडारण अवधि में सुधार संभव है।

6. **बायोडिग्रेडेबल और स्मार्ट पैकेजिंग का संयोजन-** खाद्य पैकेजिंग के भविष्य की एक महत्वपूर्ण दिशा ऐसी सामग्री विकसित करना है जो पर्यावरणीय दृष्टि से बेहतर होने के साथ-साथ खाद्य गुणवत्ता की निगरानी भी कर सके। उदाहरण के लिए, स्टार्च, सेल्यूलोज या प्रोटीन आधारित फिल्मों में उपयुक्त प्राकृतिक संकेतक शामिल करके स्मार्ट बायोडिग्रेडेबल पैकेजिंग विकसित करने की संभावनाएँ हैं। फल और सब्जियों के लिए ऐसी पैकेजिंग उपयोगी हो सकती है जो नमी और गैसों के आदान-प्रदान को नियंत्रित करने के साथ पकने या गुणवत्ता में बदलाव के बारे में संकेत दे। डेयरी उत्पादों के क्षेत्र में उपयुक्त संकेतक तापमान के अनुचित संपर्क की पहचान में सहायता कर सकते हैं। इसी प्रकार, मांस और मछली के लिए विशेष रूप से विकसित संकेतक कुछ खराब होने संबंधी परिवर्तनों की निगरानी में उपयोगी हो सकते हैं। इन तकनीकों के विकास में वैज्ञानिकों को कई चुनौतियों का समाधान करना होगा। पैकेजिंग को पर्याप्त मजबूती, लचीलापन, नमी नियंत्रण और गैस अवरोधक गुण प्रदान करना आवश्यक है। इसके साथ ही संकेतक का रंग परिवर्तन विश्वसनीय, आसानी से समझ में आने वाला और खाद्य पदार्थ के वास्तविक गुणों से संबंधित होना चाहिए। पैकेजिंग सामग्री, संकेतक और खाद्य पदार्थ के बीच होने वाली संभावित अंतःक्रियाओं का भी परीक्षण करना होगा।

7. **भारत में खाद्य पैकेजिंग की संभावनाएं-**भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, कृषि आधारित उद्यमों और ऑनलाइन खाद्य वितरण के विस्तार के साथ सुरक्षित तथा टिकाऊ पैकेजिंग की आवश्यकता बढ़ रही है। फल, सब्जियाँ, दुग्ध उत्पाद, मांस, बेकरी उत्पाद और तैयार खाद्य पदार्थों के लिए उपयुक्त पैकेजिंग विकसित करने से भंडारण और परिवहन के दौरान होने वाली गुणवत्ता हानि को कम करने में मदद मिल सकती है।

भारत में कृषि अवशेषों और स्थानीय रूप से उपलब्ध जैविक संसाधनों का उपयोग पैकेजिंग सामग्री के विकास के लिए अवसर प्रदान करता है। चावल की भूसी, गेहूँ के भूसे, गन्ने की खोई तथा अन्य कृषि अवशेषों से प्राप्त सेल्यूलोज जैसे घटक उपयोगी कच्चे माल बन सकते हैं। हालांकि, इनका औद्योगिक उपयोग आर्थिक व्यवहार्यता, सामग्री की गुणवत्ता और उत्पादन तकनीक पर निर्भर करेगा।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

मृदा उत्पादकता में पोषक तत्वों की भूमिका एवं लाभ

राम लखन सोनी (पीएचडी शोध छात्र) मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विभाग
प्रीति बरगाह पीएचडी शोधार्थी) वन संवर्धन एवं कृषि वानिकी विभाग
अंकित सिंह (पीएचडी शोध छात्र) मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या
ऋतुराज (पीएचडी शोध छात्र) भूमि संरक्षण एवं जल प्रबंधन विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर (उ.प्र.)

परिचय: मृदा उत्पादकता कृषि विज्ञान का मूल आधार है। यह उस क्षमता को दर्शाती है जिसके माध्यम से मृदा पौधों को आवश्यक पोषक तत्व, जल और अनुकूल वातावरण प्रदान करती है। पोषक तत्वों की उपलब्धता और उनका संतुलित उपयोग मृदा की उत्पादकता को सीधे प्रभावित करता है। यदि मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों की कमी हो जाती है, तो पौधों की वृद्धि रुक जाती है और उपज में गिरावट आती है। कृषि विज्ञान में यह स्थापित तथ्य है कि नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश जैसे प्रमुख पोषक तत्वों के साथसाथ सूक्ष्म पोषक तत्व भी उतने ही आवश्यक हैं। इनका संतुलित प्रबंधन न केवल फसल उत्पादन बढ़ाता है बल्कि मृदा की दीर्घकालिक उर्वरता को भी बनाए रखता है।

मृदा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक: मृदा उत्पादकता पर तीन प्रमुख कारकों का प्रभाव पड़ता है-

भौतिक गुणधर्म- बनावट, संरचना, जल धारण क्षमता।

रासायनिक गुणधर्म – pH, विद्युत चालकता, कार्बनिक कार्बन, उपलब्ध NPK।

जैविक गुणधर्म- सूक्ष्मजीवों की सक्रियता, एंजाइम गतिविधि, कार्बन चक्र।

पोषक तत्व इन तीनों पहलुओं को प्रभावित करते हैं। उदाहरण हेतु, नाइट्रोजन की पर्याप्त उपलब्धता से पौधों की जड़ें और पत्तियाँ सशक्त होती हैं, जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्षमता बढ़ती है। वहीं फॉस्फोरस जड़ों के विकास और ऊर्जा चक्र में सहायक होता है। पोटाश पौधों को रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है और जल संतुलन बनाए रखता है।

नाइट्रोजन की भूमिका: नाइट्रोजन पौधों के लिए सबसे महत्वपूर्ण पोषक तत्वों में से एक है। यह प्रोटीन, अमीनो अम्ल और क्लोरोफिल का मुख्य घटक है। नाइट्रोजन की पर्याप्त उपलब्धता से पौधों की पत्तियाँ गहरी हरी होती हैं और प्रकाश संश्लेषण की दर बढ़ जाती है। नाइट्रोजन की कमी से पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं, वृद्धि रुक जाती है और उपज में भारी कमी आती है। वहीं अत्यधिक नाइट्रोजन से पौधों में केवल शाकीय वृद्धि होती है और दाने या फल का विकास प्रभावित होता है। इसलिए नाइट्रोजन का संतुलित उपयोग आवश्यक है।

फॉस्फोरस की भूमिका: फॉस्फोरस ऊर्जा चक्र (ATP/ADP) का प्रमुख घटक है। यह जड़ों के विकास, बीज अंकुरण और फूलफल बनने की प्रक्रिया में सहायक होता है। फॉस्फोरस की पर्याप्त उपलब्धता से पौधों की जड़ें गहरी और मजबूत होती हैं, जिससे वे अधिक पोषक तत्व और जल ग्रहण कर पाती हैं। फॉस्फोरस की कमी से पौधों की वृद्धि धीमी हो जाती है, पत्तियाँ गहरे हरे या बैंगनी रंग की हो जाती हैं और बीज उत्पादन प्रभावित होता है। इसलिए फॉस्फोरस का उचित प्रबंधन मृदा उत्पादकता के लिए अत्यंत आवश्यक है।

पोटाश की भूमिका: पोटाश पौधों में जल संतुलन बनाए रखने, एंजाइम सक्रियता और प्रकाश संश्लेषण की दक्षता बढ़ाने में सहायक होता है। यह पौधों





को रोगों और कीटों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है। पोटाश की पर्याप्त उपलब्धता से फल और बीज की गुणवत्ता बेहतर होती है तथा भंडारण क्षमता भी बढ़ती है। पोटाश की कमी से पौधों की पत्तियाँ किनारों से जलने लगती हैं, तना कमजोर हो जाता है और उपज में गिरावट आती है। इसलिए पोटाश का संतुलित उपयोग मृदा उत्पादकता के लिए अत्यंत आवश्यक है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका: जिंक, आयरन, मैंगनीज, कॉपर, बोरॉन और मोलिब्डेनम जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व पौधों की वृद्धि और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये एंजाइम सक्रियता, क्लोरोफिल निर्माण और परागण प्रक्रिया में सहायक होते हैं। सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से पौधों में विशिष्ट लक्षण दिखाई देते हैं, जैसे जिंक की कमी से पत्तियाँ छोटी और संकरी हो जाती हैं, आयरन की कमी से पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। इनकी पूर्ति से मृदा की उत्पादकता और फसल की गुणवत्ता दोनों में सुधार होता है।

पोषक तत्व	मुख्य कार्य	कमी के लक्षण
कैल्शियम (Ca)	कोशिका दीवार, जड़ वृद्धि	पत्तियाँ मुड़ना, ब्लॉसम एंड रॉट
मैग्नीशियम (Mg)	क्लोरोफिल, प्रकाश संश्लेषण	इंटरवेनियल क्लोरोसिस
सल्फर (S)	प्रोटीन, क्लोरोफिल	नई पत्तियाँ पीली
जिंक (Zn)	एंजाइम, हार्मोन	छोटी पत्तियाँ, रोसेटिंग
आयरन (Fe)	क्लोरोफिल, इलेक्ट्रॉन परिवहन	नई पत्तियाँ पीली
बोरॉन (B)	परागण, बीज निर्माण	फूल झड़ना, बीज न बनना

जैविक पोषक तत्व स्रोत-गोबर खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद और जीवामृत जैसे जैविक स्रोत मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं। ये मृदा की संरचना सुधारते हैं, कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ाते हैं और सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को प्रोत्साहित करते हैं। जैविक खादों का उपयोग मृदा की दीर्घकालिक उर्वरता बनाए रखने में सहायक होता है। साथ ही यह पर्यावरणअनुकूल और सतत कृषि के लिए आवश्यक है।

रासायनिक उर्वरक और उनका प्रभाव-रासायनिक उर्वरक त्वरित पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं और फसल उत्पादन बढ़ाने में सहायक होते हैं। परंतु इनका अत्यधिक उपयोग मृदा की संरचना और सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को प्रभावित करता है। संतुलित मात्रा में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग आवश्यक है। इनका जैविक खादों के साथ संयोजन मृदा उत्पादकता को स्थायी रूप से बढ़ा सकता है।

जैवउर्वरक- जैवउर्वरक जैसे Rhizobium, Azotobacter और PSB (Phosphate Solubilizing Bacteria) मृदा में पोषक तत्वों की घुलनशीलता बढ़ाते हैं। ये नाइट्रोजन स्थिरीकरण और फॉस्फोरस घुलनशीलता में सहायक होते हैं। जैवउर्वरकों का उपयोग रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता को कम करता है और मृदा की जैविक सक्रियता को बढ़ाता है।

मृदा उत्पादकता में पोषक तत्वों से लाभ-पोषक तत्वों का संतुलित और उचित प्रबंधन मृदा की उर्वरता तथा फसल उत्पादन क्षमता को उल्लेखनीय रूप से बढ़ाता है। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटैशियम जैसे प्रमुख पोषक तत्व पौधों की वृद्धि, जड़ विकास, प्रकाश संश्लेषण और अनाज भराव में सहायक होते हैं, जिससे उपज अधिक और गुणवत्तापूर्ण प्राप्त होती है। द्वितीयक पोषक तत्व जैसे कैल्शियम, मैग्नीशियम और सल्फर कोशिका संरचना, क्लोरोफिल निर्माण तथा प्रोटीन संश्लेषण में योगदान करते हैं, जिससे पौधों की शारीरिक क्रियाएँ सुचारु रहती हैं। सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपस्थिति पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है और परागण व बीज निर्माण को सुनिश्चित करती है। संतुलित पोषण न केवल तत्काल उपज में वृद्धि करता है, बल्कि मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों को भी सुधारता है, जिससे दीर्घकालिक उर्वरता बनी रहती है। इसके अतिरिक्त, समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन से पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखते हुए किसानों को आर्थिक लाभ प्राप्त होता है, क्योंकि उच्च उपज और बेहतर गुणवत्ता से उनकी आय में वृद्धि होती है। इस प्रकार, पोषक तत्वों का उचित और संतुलित प्रयोग मृदा उत्पादकता, पर्यावरणीय स्थिरता और कृषि अर्थव्यवस्था तीनों के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन -समेकित पोषक तत्व प्रबंधन का उद्देश्य विभिन्न स्रोतों से पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग करना है। इसमें रासायनिक उर्वरक, जैविक खाद और जैवउर्वरकों का संयोजन किया जाता है। दूहरूसे मृदा की दीर्घकालिक उर्वरता बनी रहती है और फसल उत्पादन स्थिर रहता है। यह सतत कृषि के लिए अत्यंत आवश्यक है।

मृदा स्वास्थ्य और पोषक तत्व चक्र-मृदा स्वास्थ्य पोषक तत्व चक्र पर निर्भर करता है। कार्बन, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस चक्र मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं। सूक्ष्मजीव इन चक्रों को सक्रिय रखते हैं और मृदा की उत्पादकता को बनाए रखते हैं। पोषक तत्व चक्र का संतुलन बिगड़ने पर मृदा की उर्वरता घट जाती है।

पोषक तत्व उपयोग दक्षता-पोषक तत्व उपयोग दक्षता का अर्थ है कि पौधे उपलब्ध पोषक तत्वों का कितनी दक्षता से उपयोग कर रहे हैं। उच्च NUE से कम उर्वरक उपयोग में भी अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। NUE सुधारने के लिए संतुलित उर्वरक प्रयोग, समय पर पोषण और उन्नत किस्मों का चयन आवश्यक है।

आर्थिक दृष्टिकोण-पोषक तत्व प्रबंधन का सीधा प्रभाव किसानों की आय पर पड़ता है। संतुलित पोषण से उत्पादन बढ़ता है और लागतलाभ अनुपात सुधरता है। अत्यधिक उर्वरक प्रयोग से लागत बढ़ जाती है और लाभ घट जाता है। इसलिए आर्थिक दृष्टि से भी पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग आवश्यक है।

भविष्य की चुनौतियाँ और समाधान-जलवायु परिवर्तन, भूमि क्षरण और जल संकट जैसी चुनौतियाँ मृदा उत्पादकता को प्रभावित कर रही हैं। इनसे निपटने के लिए सतत पोषक तत्व प्रबंधन आवश्यक है। जैविक खादों का उपयोग, फसल चक्र और संरक्षण कृषि जैसी तकनीकें भविष्य की चुनौतियों का समाधान प्रदान कर सकती हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

प्रमुख फसलों में समन्वित खरपतवार प्रबंधन

(Integrated Weed Management in Major Crops)

शिवानंद प्रजापति, सुनीत कुमार
रंजीत कुमार यादव एमएससी छात्र, सस्य विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संकाय प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जु भैया) विश्वविद्यालय प्रयागराज (उ.प्र.)

डॉ. ललित कुमार सनोदिया सहायक प्रोफेसर, सस्य विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संकाय प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जु भैया) विश्वविद्यालय प्रयागराज (उ.प्र.)

सारांश (Abstract): खरपतवार फसल उत्पादन की प्रमुख जैविक बाधाओं में से एक हैं। ये फसल के साथ जल, पोषक तत्व, प्रकाश, स्थान और अन्य संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं तथा उपज और उपज की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकते हैं। समन्वित खरपतवार प्रबंधन (Integrated Weed Management—IWM) एक ऐसी वैज्ञानिक एवं दीर्घकालीन रणनीति है जिसमें निवारक, सांस्कृतिक, यांत्रिक/भौतिक, जैविक और रासायनिक विधियों का उचित संयोजन किया जाता है। इसका उद्देश्य किसी एक विधि पर निर्भरता के बजाय खरपतवार आबादी को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखना, फसल की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ाना तथा पर्यावरणीय और आर्थिक जोखिमों को कम करना है। FAO के अनुसार IWM में विभिन्न पूरक खरपतवार नियंत्रण उपायों का संयोजन किया जाता है और निर्णय खरपतवार की प्रकृति, घनत्व, लागत तथा पर्यावरणीय प्रभाव को ध्यान में रखकर किए जाने चाहिए।

भारत में धान, गेहूँ, मक्का, सोयाबीन और कपास जैसी प्रमुख फसलों में खरपतवार प्रबंधन की आवश्यकता फसल प्रणाली, जल प्रबंधन, जुताई, बुवाई पद्धति और खरपतवार समुदाय के अनुसार बदलती है। विशेष रूप से प्रत्यक्ष बीजित धान में खरपतवार प्रबंधन एक महत्वपूर्ण चुनौती है, जबकि गेहूँ में Phalaris minor जैसे खरपतवार के विरुद्ध शाकनाशी प्रतिरोध IWM की आवश्यकता को बढ़ाता है। ICAR के हालिया साहित्य में प्रमुख फसलों के खरपतवारों और शाकनाशी-प्रतिरोध को महत्वपूर्ण उभरती चुनौतियों के रूप में रेखांकित किया गया है।

मुख्य शब्द (Keywords):- समन्वित खरपतवार प्रबंधन, खरपतवार, सांस्कृतिक नियंत्रण, यांत्रिक नियंत्रण, जैविक नियंत्रण, शाकनाशी, शाकनाशी प्रतिरोध, फसल चक्र, सतत कृषि

1. परिचय (Introduction): खरपतवार वे अवांछित पौधे हैं जो कृषि भूमि में फसल के साथ उगते हैं और उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करके फसल की वृद्धि को प्रभावित करते हैं। खरपतवार जल, पोषक तत्व, प्रकाश और स्थान के लिए फसल से प्रतिस्पर्धा करते हैं। कुछ खरपतवार कीट एवं रोगजनकों के वैकल्पिक पोषक भी हो सकते हैं। इसलिए प्रभावी खरपतवार प्रबंधन उच्च एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के लिए आवश्यक है। पारंपरिक रूप से खरपतवार नियंत्रण के लिए हाथ से निराई या शाकनाशी पर अधिक निर्भरता रही है। लगातार एक ही नियंत्रण विधि या समान क्रिया-विधि वाले शाकनाशी का उपयोग खरपतवार समुदाय में बदलाव और शाकनाशी प्रतिरोध के चयन को बढ़ा सकता है। FAO के अनुसार फसल चक्र, आवरण फसल, मल्च, उचित बीजशैया, यांत्रिक निराई और आवश्यकता के अनुसार शाकनाशी सहित कई उपायों को मिलाकर दीर्घकालीन प्रबंधन अधिक टिकाऊ बनाया जा सकता है। IWM का मूल सिद्धांत यह है कि खरपतवार को केवल नष्ट करने के बजाय उसकी आबादी, बीज बैंक, जीवन चक्र और फसल-खरपतवार प्रतिस्पर्धा को समझकर उचित समय पर उपयुक्त उपायों का संयोजन किया जाए।

समन्वित खरपतवार प्रबंधन के उद्देश्य * खरपतवारों के प्रवेश, प्रसार और बीज उत्पादन को रोकना। * खरपतवार आबादी को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखना। * फसल की प्रारंभिक प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ाना * एक ही शाकनाशी या नियंत्रण विधि पर निर्भरता कम करना। * शाकनाशी प्रतिरोध के विकास को धीमा करना। * उत्पादन लागत, श्रम आवश्यकता और पर्यावरणीय जोखिम को कम करना। * मृदा, जल और जैव विविधता का संरक्षण करते हुए टिकाऊ उत्पादन प्राप्त करना।

3. IWM के प्रमुख सिद्धांत: * खरपतवार की सही पहचान एवं खेत में नियमित निगरानी। * खरपतवार के जीवन चक्र और बीज बैंक की जानकारी। * फसल की खरपतवार-मुक्त अवधि/महत्वपूर्ण प्रतिस्पर्धा अवधि को ध्यान में रखना। * फसल चक्र एवं विविध फसल प्रणालियों द्वारा खरपतवार जीवन चक्र में व्यवधान। * स्वस्थ एवं तेजी से बढ़ने वाली फसल के लिए उचित पौध संख्या, दूरी और पोषण प्रबंधन। * यांत्रिक, सांस्कृतिक और रासायनिक उपायों का आवश्यकता के अनुसार संयोजन। * शाकनाशी की क्रिया-विधियों का विविधीकरण तथा लेबल-अनुशंसाओं के अनुसार उपयोग। * प्रत्येक मौसम के बाद खरपतवार नियंत्रण, लागत और फसल उपज का मूल्यांकन।

IWM की प्रमुख विधियां

निवारक विधियां: निवारक विधियों का उद्देश्य खरपतवारों को खेत में प्रवेश करने या एक खेत से दूसरे खेत में फैलने से रोकना है। प्रमाणित एवं खरपतवार-मुक्त बीज का प्रयोग, कृषि यंत्रों की सफाई, खेत की मेड़ों और सिंचाई नालियों की सफाई तथा अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद का उपयोग महत्वपूर्ण उपाय हैं। FAO खेतों, मशीनों और पशुओं के माध्यम से खरपतवार प्रसार को रोकने पर विशेष जोर देता है।

सांस्कृतिक विधियां: इनमें फसल चक्र, समय पर बुवाई, उचित पौध जनसंख्या, संकरी कतारें, प्रतिस्पर्धी किस्में, संतुलित पोषण, उचित सिंचाई, मल्च तथा आवरण फसल शामिल हैं। फसल चक्र विशेष रूप से उपयोगी है क्योंकि अलग-अलग फसलों के साथ अलग जुताई, बुवाई और कटाई समय अपनाने से एक ही प्रकार के खरपतवार के लगातार चयन को कम किया जा सकता है।

यांत्रिक एवं भौतिक विधियां: हाथ से निराई, खुरपी, कोनो-वीडर, व्हील-हो, इंटरकल्टीवेटर तथा अन्य यंत्रों से खरपतवार निकालना यांत्रिक नियंत्रण के प्रमुख साधन हैं। स्टेल सीडबेड में बुवाई से पहले खरपतवारों को उगाकर उन्हें नष्ट किया जाता है। मल्च खरपतवार अंकुरण और प्रकाश उपलब्धता को प्रभावित करके दबाव कम कर सकता है।

जैविक विधियां: जैविक नियंत्रण में खरपतवारों के प्राकृतिक शत्रुओं जैसे विशिष्ट कीट या रोगजनक सूक्ष्मजीवों का उपयोग किया जाता है। यह विधि विशेष रूप से विशिष्ट या समस्याग्रस्त खरपतवारों के दीर्घकालीन दमन में उपयोगी हो सकती है, लेकिन इसके लिए लक्ष्य खरपतवार और जैव-नियंत्रक के बीच उच्च विशिष्टता तथा स्थानीय परिस्थितियों का परीक्षण आवश्यक है।

रासायनिक विधियां: रासायनिक नियंत्रण में चयनात्मक या गैर-चयनात्मक शाकनाशियों का उपयोग किया जाता है। शाकनाशी का चयन फसल, खरपतवार प्रजाति, खरपतवार की अवस्था, मृदा और मौसम के आधार पर किया जाना चाहिए। शाकनाशी को अनुशंसित मात्रा, सही समय और सही विधि से प्रयोग करना आवश्यक है। गलत समय पर प्रयोग करने से प्रभाव घट सकता है और लागत बढ़ सकती है।

शाकनाशी प्रतिरोध एवं IWM: शाकनाशी प्रतिरोध तब विकसित हो सकता है जब किसी शाकनाशी या समान क्रिया-विधि के शाकनाशियों का बार-बार उपयोग संवेदनशील खरपतवारों को हटाता है और कम संवेदनशील/प्रतिरोधी पौधों को चयन लाभ देता है। इसलिए प्रतिरोध प्रबंधन में फसल चक्र, यांत्रिक एवं सांस्कृतिक नियंत्रण, सही समय पर नियंत्रण और प्रभावी क्रिया-विधियों का विविधीकरण महत्वपूर्ण है। FAO भी प्रतिरोधी खरपतवार आबादी के प्रबंधन के लिए निगरानी तथा विभिन्न नियंत्रण उपायों के समुचित संयोजन की आवश्यकता बताता है।

IWM के लाभ- * खरपतवार नियंत्रण की विश्वसनीयता बढ़ती है। * एकल नियंत्रण विधि पर निर्भरता कम होती है। * शाकनाशी प्रतिरोध के विकास का जोखिम घटाने में सहायता मिलती है। * उचित परिस्थितियों में शाकनाशी उपयोग और उससे जुड़े जोखिम कम किए जा सकते हैं। * फसल की उपज और गुणवत्ता की रक्षा होती है। * फसल प्रणाली की दीर्घकालीन स्थिरता और संसाधन उपयोग दक्षता में सुधार हो सकता है।

प्रमुख चुनौतियां * खरपतवारों की बदलती संरचना और नए खरपतवारों का प्रसार। * शाकनाशी प्रतिरोध। * समय पर श्रम की उपलब्धता और बढ़ती श्रम लागत। * किसानों में खरपतवार की सही पहचान और शाकनाशी उपयोग संबंधी जानकारी की कमी। * मौसम एवं जलवायु में परिवर्तन से खरपतवार अंकुरण और प्रतिस्पर्धा में बदलाव। * विभिन्न फसल प्रणालियों में एक ही IWM पैकेज का समान रूप से प्रभावी न होना।

भविष्य की संभावनाएं: भविष्य में IWM को सटीक कृषि (precision agriculture), रिमोट सेंसिंग, ड्रोन/इमेजिंग, AI आधारित खरपतवार पहचान, रोबोटिक निराई और साइट-विशिष्ट शाकनाशी प्रयोग जैसी तकनीकों के साथ जोड़ा जा सकता है। द्वितीय के कृषि शिक्षा एवं पाठ्यक्रम दस्तावेजों में precision weed management, robotic weed control, herbicide resistance management तथा विभिन्न फसलों में weed management को उभरते विषयों के रूप में शामिल किया गया है। इसके साथ ही स्थानीय खरपतवार समुदाय, किसान की आर्थिक स्थिति और उपलब्ध संसाधनों के अनुसार सरल, कम लागत वाली तकनीकों का विकास और किसान प्रशिक्षण आवश्यक रहेगा।

निष्कर्ष: समन्वित खरपतवार प्रबंधन आधुनिक एवं टिकाऊ फसल उत्पादन का महत्वपूर्ण घटक है। केवल हाथ से निराई या केवल शाकनाशी पर निर्भर रहने के बजाय निवारक, सांस्कृतिक, यांत्रिक, जैविक और रासायनिक विधियों का वैज्ञानिक संयोजन अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रदान करता है। प्रमुख फसलों में द्वितीय की सफलता के लिए खरपतवार की सही पहचान, समय पर निगरानी, फसल चक्र, स्वस्थ एवं प्रतिस्पर्धी फसल, उचित यांत्रिक नियंत्रण और आवश्यकता आधारित शाकनाशी उपयोग को एकीकृत करना चाहिए। विशेष रूप से शाकनाशी प्रतिरोध की बढ़ती समस्या के संदर्भ में विविध नियंत्रण विधियों का उपयोग दीर्घकालीन खरपतवार प्रबंधन के लिए आवश्यक है। इस प्रकार IWM उत्पादकता, लाभप्रदता और पर्यावरणीय स्थिरता के बीच संतुलन स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

धनिया की वैज्ञानिक खेती की विधि

श्वेता वर्मा शोध छात्रा, (सब्जी विज्ञान विभाग) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

आयुष वर्मा एम.एससी. (फल विज्ञान विभाग) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

आस्तिक झा सह प्राध्यापक, (सब्जी विज्ञान विभाग) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

परिचय: धनिया भारत की एक महत्वपूर्ण मसाला फसल है। इसका उपयोग हरे पत्तों (धनिया पत्ती) तथा सूखे बीज दोनों रूपों में किया जाता है। भोजन को स्वादिष्ट बनाने के साथ-साथ यह औषधीय गुणों से भी भरपूर होता है। भारत में धनिया की खेती मुख्यतः उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात और आंध्र प्रदेश में की जाती है। यदि वैज्ञानिक विधियों को अपनाकर खेती की जाए तो धनिया का उत्पादन और किसानों की आय दोनों में वृद्धि हो सकती है।

धनिया की खेती के लिए उपयुक्त जलवायु और भूमि

धनिया एक ऐसी फसल है जो ठंडे और शुष्क मौसम में अच्छी तरह बढ़ती है। यह फसल उन क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है जहाँ तापमान बहुत अधिक न हो और वर्षा का वितरण संतुलित हो। यदि सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो धनिया की खेती लगभग सभी प्रकार की मिट्टियों में की जा सकती है, लेकिन दोमट मिट्टी इसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त मानी जाती है।



खेत की तैयारी

धनिया की अच्छी पैदावार के लिए खेत की अच्छी तरह से तैयारी करना आवश्यक होता है। सबसे पहले मिट्टी पलटने वाले हल से एक गहरी जुताई करनी चाहिए। इसके बाद देसी हल या हैरो से एक-दो बार जुताई करके मिट्टी को भुरभुरी बना लेना चाहिए। अंत में पाटा चलाकर खेत को समतल कर देना चाहिए ताकि मिट्टी में नमी बनी रहे और बीज का अंकुरण अच्छी तरह हो सके।

धनिया की उन्नत किस्में

धनिया की अधिक उत्पादन देने वाली कई उन्नत किस्में उपलब्ध हैं, जैसे- आर.सी.आर. 446, आर.सी.आर. 480, आर.सी.आर. 684, अजमेर धनिया-1, अजमेर धनिया-2, आर.के.डी-18, गुजरात धनिया-1, गुजरात धनिया-2, Co-1 और Co-2 आदि। इन किस्मों का चयन करके किसान बेहतर उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

खाद और उर्वरक प्रबंधन

धनिया की अच्छी फसल के लिए खेत में 15-20 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की सड़ी हुई खाद मिलानी चाहिए। इसके



अलावा असिंचित फसल के लिए बुवाई से पहले लगभग 20 किलोग्राम नाइट्रोजन और 30 किलोग्राम फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। सिंचित फसल में 60 किलोग्राम नाइट्रोजन और 30 किलोग्राम फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर देना लाभकारी रहता है। इसमें नाइट्रोजन की एक-तिहाई मात्रा और फॉस्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई से पहले देनी चाहिए। शेष नाइट्रोजन को दो भागों में बाँटकर लगभग 30 दिन और 75 दिन बाद देना चाहिए। इसके साथ ही जस्ता, लोहा, मैंगनीज और तांबा जैसे सूक्ष्म तत्वों का प्रयोग करने से भी फसल को लाभ मिलता है।

बीज की मात्रा और बीजोपचार

बीज का आकार और खेती की स्थिति के अनुसार बीज की मात्रा तय की जाती है। असिंचित क्षेत्रों में लगभग 15-20 किलोग्राम बीज प्रति हे. पर्याप्त होता है, जबकि सिंचित खेती के लिए 10-12 किलोग्राम बीज प्रति हे. पर्याप्त माना जाता है। बुवाई से पहले बीज को दो भागों में विभाजित करके बोना चाहिए। साथ ही बीज को बैविस्टीन 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज या अन्य उपयुक्त फफूंदनाशक दवा (लगभग 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) से उपचारित करके बोने से रोगों से बचाव होता है।

बुवाई का तरीका और समय

धनिया की बुवाई सामान्यतः पंक्ति विधि या छिटकाव विधि से की जाती है। खेत में सभी कृषि कार्य ठीक से करने के लिए पंक्तियों के बीच लगभग 30 सेमी की दूरी रखना उचित माना जाता है। धनिया की बुवाई का उपयुक्त समय लगभग 15 अक्टूबर से 15 नवंबर तक होता है। यदि बुवाई जल्दी कर दी जाए तो पौधों की बढ़वार अच्छी होती है, लेकिन अधिक तापमान होने पर बीज का अंकुरण कम हो सकता है। दूसरी ओर, यदि बुवाई देर से की जाए तो फसल पर चेपा कीट तथा विभिन्न रोगों का प्रकोप बढ़ने की संभावना रहती है।

सिंचाई

सिंचित क्षेत्रों में धनिया की फसल को उसकी किस्म, मिट्टी की जल धारण क्षमता और मौसम की स्थिति के अनुसार अंकुरण के बाद लगभग 4 से 6 बार सिंचाई की आवश्यकता होती है।

* पहली सिंचाई बुवाई के 30-35 दिन बाद करनी चाहिए।
* दूसरी सिंचाई 50-60 दिन बाद।
* तीसरी सिंचाई 70-80 दिन बाद।
* चौथी सिंचाई 90-100 दिन बाद।
* पाँचवीं सिंचाई 105-115 दिन बाद।
* छठी सिंचाई 115-125 दिन बाद की जाती है।

असिंचित क्षेत्रों में धनिया की खेती अधिकतर वर्षा पर निर्भर रहती है।

निराई-गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण

असिंचित फसल में बुवाई के लगभग 30 दिन बाद एक बार निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। वहीं सिंचित फसल में 30 दिन और 60 दिन बाद दो बार निराई-गुड़ाई करना उचित होता है।धनिया के पौधे धीरे-धीरे बढ़ते हैं जबकि खरपतवार तेजी से फैलते हैं। इसलिए समय पर खरपतवारों को हटाना बहुत जरूरी है, ताकि फसल को पर्याप्त पोषण और जगह मिल सके।

प्रमुख बीमारियाँ और उनका प्रबंधन

1.छाछिया (पाउडरी मिल्ड्यू)

इस रोग की शुरुआत में पौधों की पत्तियों और टहनियों पर सफेद पाउडर जैसा पदार्थ दिखाई देने लगता है। यदि रोग अधिक बढ़ जाता है तो पूरा पौधा चूर्ण जैसा दिखाई देता है और फूलक्रम सूख जाता है। इसके कारण बीज सही ढंग से नहीं बनते या बहुत छोटे और कम मात्रा में बनते हैं, जिससे बीजों की गुणवत्ता भी घट जाती है।

नियंत्रण

इस रोग को नियंत्रित करने के लिए खेत को साफ रखना चाहिए। साथ ही गंधक चूर्ण 20-25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव किया जा सकता है। इसके अलावा केराथेन ई.सी. 0.1% या हेक्साकोनाजोल 5% एस.सी. (1 मिली/लीटर पानी) का घोल बनाकर छिड़काव करना भी लाभकारी होता है। आवश्यकता होने पर इस छिड़काव को दोहराया जा सकता है।

2.तना पिटिका रोग (स्टेम गॉल)

इस रोग में पौधों की पत्तियों, डंठल और तनों पर अलग-अलग आकार की गांठें या फफोले बन जाते हैं। जब यह रोग फूलों पर हमला करता है तो बीजों का आकार बदल जाता है और वे खराब हो जाते हैं। नमी अधिक होने पर इस रोग का प्रकोप और ज्यादा बढ़ जाता है।

नियंत्रण

इस रोग से बचाव के लिए खेत को साफ-सुथरा रखना चाहिए। बुवाई से पहले बीजों को बाविस्टीन 2 ग्राम या कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। यदि खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखाई दें तो कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर 10-15 दिन बाद पुनः छिड़काव किया जा सकता है, लेकिन फूल आने के समय इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

छोटा टिक, बड़ा खतरा: जानिए एनाप्लाज़्मा प्लेटिस से अपने पालतू कुत्ते की कैसे करें सुरक्षा

डॉ. रजत कुमार पशु परजीवी विज्ञान विभाग कॉलेज ऑफ वेटरिनरी एंड एनिमल साइंसेज, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

कहीं आपके प्यारे साथी पर भी तो नहीं मंडरा रहा है यह अदृश्य खतरा?

घर का सबसे वफादार सदस्य कौन है? अधिकांश लोग बिना सोचे कहेंगे–हमारा पालतू कुत्ता। वह न केवल घर की सुरक्षा करता है, बल्कि परिवार का अभिन्न सदस्य भी बन जाता है। लेकिन क्या आपने कभी सोचा है कि उसके शरीर पर चिपका हुआ एक छोटा-सा टिक (किलनी) उसके लिए जानलेवा बीमारी का कारण बन सकता है? ऐसी ही एक उभरती हुई बीमारी है एनाप्लाज़्मा प्लेटिस (Anaplasma platys) संक्रमण। यह बीमारी इतनी चालाक है कि कई बार कुत्ता बिल्कुल स्वस्थ दिखाई देता है, जबकि उसके शरीर के भीतर यह जीवाणु धीरे-धीरे रक्त की प्लेटलेट्स (रक्त के थक्के बनाने वाली कोशिकाएँ) को नष्ट कर रहा होता है। इसलिए इसे "साइलेंट टिक-बोर्न डिजीज" भी कहा जाता है।

क्या है एनाप्लाज़्मा प्लेटिस?-एनाप्लाज़्मा प्लेटिस एक सूक्ष्म जीवाणु है जो कुत्ते के रक्त में मौजूद प्लेटलेट्स के भीतर रहकर बढ़ता है। प्लेटलेट्स शरीर में रक्तस्राव रोकने का कार्य करती हैं। जब यह जीवाणु प्लेटलेट्स को संक्रमित करता है, तो उनकी संख्या कम होने लगती है। परिणामस्वरूप कुत्ते में नाक से खून आना, शरीर पर लाल धब्बे, कमजोरी और अत्यधिक रक्तस्राव जैसी समस्याएँ दिखाई दे सकती हैं। सबसे चिंता की बात यह है कि बीमारी के शुरुआती चरण में अधिकांश कुत्तों में कोई स्पष्ट लक्षण दिखाई ही नहीं देते।

बीमारी फैलती कैसे है?- इस बीमारी का मुख्य वाहक ब्राउन डॉग टिक (Rhipicephalus sanguineus) है। जब यह टिक किसी संक्रमित कुत्ते का रक्त चूसता है, तो जीवाणु उसके शरीर में पहुँच जाता है। बाद में वही टिक किसी स्वस्थ कुत्ते को काटता है और संक्रमण फैला देता है। भारत जैसे गर्म और आर्द्र जलवायु वाले देश में टिक पूरे वर्ष सक्रिय रह सकते हैं। विशेष रूप से बरसात और उसके बाद का मौसम इनके तेजी से बढ़ने के लिए सबसे अनुकूल होता है।

ब्राउन डॉग टिक (Rhipicephalus sanguineus), जो एनाप्लाज़्मा प्लेटिस संक्रमण का प्रमुख वाहक है।

किन कुत्तों को अधिक खतरा है?

यदि आपका कुत्ता— * पार्क, खेत या घास वाले क्षेत्रों में घूमता है, * नियमित रूप से टिक-रोधी दवा नहीं लेता, * घर या केनेल में साफ-सफाई का अभाव है, * आवारा कुत्तों के सम्पर्क में आता है, तो उसमें संक्रमण का खतरा अधिक होता है। याद रखें, सिर्फ एक संक्रमित टिक का काटना भी बीमारी फैलाने के लिए पर्याप्त है।

एनाप्लाज़्मा प्लेटिस द्वारा प्लेटलेट्स का संक्रमण तथा ब्राउन डॉग टिक (Rhipicephalus sanguineus) का जीवन चक्र।

इन लक्षणों को बिल्कुल न करें नजरअंदाज

बीमारी के लक्षण धीरे-धीरे दिखाई देते हैं। यदि आपके कुत्ते में निम्न में से कोई भी संकेत दिखाई दे तो तुरंत पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें– * लगातार बुखार * सुस्ती और कमजोरी * भोजन में रुचि कम होना * वजन घटना * मसूड़ों का पीला पड़ना * नाक या मसूड़ों से खून आना * त्वचा पर छोटे-छोटे लाल धब्बे * शरीर पर बिना कारण नीले निशान * अत्यधिक थकान। समय रहते इलाज न मिलने पर स्थिति गंभीर हो सकती है।

बीमारी की पहचान कैसे होती है? आजकल पशु चिकित्सालयों में इस बीमारी की पहचान आधुनिक तकनीकों से आसानी से की जा सकती है।

रक्त स्मीयर (Blood Smear): रक्त की स्लाइड बनाकर माइक्रोस्कोप से जीवाणु की पहचान की जाती है।

पीसीआर (PCR) परीक्षण: यह सबसे आधुनिक और सटीक जांच है, जिससे बीमारी का पता शुरुआती अवस्था में भी लगाया जा सकता है।

रक्त परीक्षण: इसमें प्लेटलेट्स की संख्या कम तथा हल्का एनीमिया पाया जा सकता है।

क्या इसका इलाज संभव है?

हाँ, बिल्कुल। यदि समय पर बीमारी की पहचान हो जाए तो डॉक्सीसाइक्लिन (Doxycycline) जैसी एंटीबायोटिक दवाओं से अधिकांश कुत्ते पूरी तरह स्वस्थ हो जाते हैं। गंभीर मामलों में प्लेटलेट्स की नियमित निगरानी, तरल चिकित्सा (Fluid Therapy) तथा अन्य सहायक उपचार भी दिए जाते हैं।

बचाव ही सबसे बड़ा इलाज है-इस बीमारी से बचना बहुत आसान है, यदि कुछ छोटी-छोटी सावधानियाँ अपनाई जाएँ।

* नियमित रूप से टिक-रोधी दवा या स्पॉट-ऑन उपचार कराएँ। * रोज़ाना कुत्ते के कान, गर्दन, पंजों के बीच और पूँछ के पास टिक की जाँच करें। * केनेल और बिस्तर की नियमित सफाई रखें। * घास और झाड़ियों की समय-समय पर कटाई कराएँ। * प्रत्येक 6-12 महीने में पशु चिकित्सक से स्वास्थ्य परीक्षण अवश्य कराएँ।

नियमित टिक नियंत्रण, समय पर उपचार तथा पशु चिकित्सकीय परामर्श से एनाप्लाज़्मा प्लेटिस संक्रमण को प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है।

क्या यह बीमारी इंसानों में भी हो सकती है? अब तक ऐसा कोई ठोस प्रमाण नहीं मिला है कि एनाप्लाज़्मा प्लेटिस सामान्य रूप से मनुष्यों में बीमारी उत्पन्न करता है। फिर भी टिक कई अन्य गंभीर रोगों के वाहक होते हैं। इसलिए अपने पालतू पशु को टिक-मुक्त रखना पूरे परिवार की सुरक्षा के लिए भी आवश्यक है।

भारत में बढ़ता खतरा-देश के कई राज्यों–जैसे उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल–में कुत्तों में टिक जनित रोगों के मामले तेजी से सामने आ रहे हैं। आधुनिक पीसीआर जांच से यह स्पष्ट हुआ है कि एनाप्लाज़्मा प्लेटिस संक्रमण पहले की तुलना में अधिक पाया जा रहा है। इसलिए पशुपालकों और पालतू पशु मालिकों में जागरूकता बढ़ाना समय की आवश्यकता है।

क्या आप जानते हैं? * एक मादा ब्राउन डॉग टिक 2,000 से 4,000 तक अंडे दे सकती है। * टिक घर के फर्श की दरारों, केनेल और दीवारों में कई महीनों तक जीवित रह सकते हैं। * कई संक्रमित कुत्ते बिल्कुल स्वस्थ दिखाई देते हैं, फिर भी वे संक्रमण से ग्रसित हो सकते हैं। * टिक से बचाव पर होने वाला खर्च, बीमारी के इलाज की तुलना में बहुत कम होता है।

निष्कर्ष-आपका पालतू कुत्ता केवल जानवर नहीं, बल्कि परिवार का एक सदस्य है। उसकी नियमित देखभाल, साफ-सफाई और टिक नियंत्रण आपकी जिम्मेदारी है। एनाप्लाज़्मा प्लेटिस जैसी बीमारी समय पर पहचान और उपचार से पूरी तरह नियंत्रित की जा सकती है। इसलिए यदि आपके कुत्ते में कमजोरी, बुखार, या टिक दिखाई दें, तो लापरवाही न करें और तुरंत पशु चिकित्सक से सलाह लें।

याद रखें—"टिक से बचाव ही स्वस्थ और खुशहाल पालतू जीवन की सबसे मजबूत ढाल है।"

लेखक का संदेश-*"एक छोटी-सी टिक आपके पालतू के लिए बड़ा खतरा बन सकती है। कुछ मिनट की नियमित जाँच और समय पर उपचार आपके वफादार साथी को गंभीर बीमारी से बचा सकते हैं। आइए, हम सब मिलकर अपने पालतू कुत्तों को टिक-मुक्त और स्वस्थ रखने का संकल्प लें।"* **- डॉ. रजत कुमार**

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

मिर्च में एन्थ्रेक्नोज रोग की पहचान एवं प्रभावी प्रबंधन

आर्यन सिंह एवं निकिता सिंह बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बांदा (उ.प्र.)

परिचय-मिर्च (Capsicum annuum L.) भारत की प्रमुख सब्जी एवं मसाला फसलों में से एक है। इसका उपयोग हरी तथा सूखी मिर्च के रूप में भोजन, मसाले, अचार, सॉस तथा विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पादों में किया जाता है। देश के विभिन्न भागों में इसकी खेती बड़े पैमाने पर की जाती है तथा किसानों की आय में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। मिर्च की फसल को अनेक कीट एवं रोग प्रभावित करते हैं। इनमें एन्थ्रेक्नोज रोग, जिसे सामान्यतः फल सड़न रोग के नाम से भी जाना जाता है, एक महत्वपूर्ण रोग है। यह रोग विशेष रूप से मिर्च के फलों को प्रभावित करता है और गंभीर संक्रमण की स्थिति में उत्पादन तथा फल की गुणवत्ता में उल्लेखनीय कमी हो सकती है। रोग के कारण खेत में तथा कटाई के बाद भी फलों को नुकसान होता है। मिर्च में एन्थ्रेक्नोज रोग मुख्यतः कोलेटोट्राइकम वंश के कवकों के कारण होता है। विभिन्न क्षेत्रों में कोलेटोट्राइकम कैप्सिसी, कोलेटोट्राइकम ग्लोयोस्पोरियोइडीस तथा कोलेटोट्राइकम एक्यूटेटम से संबंधित प्रजातियों को इस रोग के लिए उत्तरदायी पाया गया है। आधुनिक आणविक एवं आनुवंशिक अध्ययनों द्वारा इस रोग को उत्पन्न करने वाले कवकों की विभिन्न प्रजातियों की पहचान, वर्गीकरण तथा उनकी रोग उत्पन्न करने की क्षमता को अधिक स्पष्ट रूप से समझने में सहायता मिली है।

1. एन्थ्रेक्नोज या फल सड़न

लक्षण- रोग के प्रारंभिक लक्षण सामान्यतः मिर्च के फलों पर छोटे, हल्के भूरे या धंसे हुए धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। धीरे-धीरे ये धब्बे आकार में बढ़ते हैं और भूरे से गहरे भूरे या काले रंग के हो जाते हैं। रोगग्रस्त भाग धीरे-धीरे नरम होकर सड़ने लगता है। संक्रमित फलों पर गोलाकार या अनियमित आकार के धंसे हुए घाव दिखाई दे सकते हैं। अनुकूल वातावरण में इन घावों के ऊपर कवक की फलन संरचनाएं विकसित होती हैं, जिनमें बीजाणु बनते हैं। कई बार घावों पर बीजाणुधानी संरचनाएं संकेंद्रित वलयों के रूप में दिखाई देती हैं। रोग की उग्र अवस्था में फल का बड़ा भाग सड़ जाता है। कुछ संक्रमित फल सिकुड़कर सूख जाते हैं और पौधे पर ही ममी जैसे दिखाई दे सकते हैं। ऐसे फल बाजार में बिक्री के योग्य नहीं रहते। पत्तियों एवं तनों पर भी छोटे भूरे-काले धब्बे विकसित हो सकते हैं। गंभीर संक्रमण की स्थिति में शाखाओं के प्रभावित भाग सूखने लगते हैं और इसे डाइ-बैक के रूप में देखा जा सकता है।

रोगजनक- मिर्च में एन्थ्रेक्नोज रोग मुख्यतः कोलेटोट्राइकम प्रजातियों द्वारा उत्पन्न होता है। पुराने साहित्य में कोलेटोट्राइकम कैप्सिसी को मिर्च एन्थ्रेक्नोज का प्रमुख रोगजनक माना गया है। विभिन्न क्षेत्रों में कोलेटोट्राइकम की अन्य प्रजातियां भी रोग से संबंधित पाई गई हैं।

रोगचक्र एवं अनुकूल वातावरण- रोगजनक संक्रमित बीज, रोगग्रस्त फल तथा संक्रमित पौध-अवशेषों में जीवित रह सकता है। रोगग्रस्त पौधों से निकलने वाले बीजाणु वर्षा की बूंदों, सिंचाई के पानी तथा अन्य माध्यमों से स्वस्थ पौधों तक पहुंच सकते हैं।

गर्म एवं आर्द्र मौसम रोग के विकास के लिए अनुकूल होता है। लगातार वर्षा, अधिक सापेक्ष आर्द्रता तथा पत्तियों एवं फलों की सतह पर लंबे समय तक नमी रहने से रोग का संक्रमण एवं प्रसार बढ़ सकता है। खेत में घनी फसल एवं खराब वायु संचार भी रोग के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करते हैं।

प्रबंधन- मिर्च एन्थ्रेक्नोज के प्रभावी नियंत्रण के लिए केवल एक विधि पर निर्भर रहने के बजाय एकीकृत रोग प्रबंधन अपनाना चाहिए।

1. **स्वस्थ बीज का प्रयोग**- रोगमुक्त एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें। बीज के लिए केवल स्वस्थ एवं रोगमुक्त पौधों से प्राप्त फलों का चयन करें। संक्रमित फलों से बीज नहीं लेना चाहिए।

2. **बीज उपचार**-बुवाई से पहले बीज का उपयुक्त जैव-एजेंट अथवा अनुशंसित फफूंदनाशी से उपचार करने से बीजजनित संक्रमण के जोखिम को कम करने में सहायता मिलती है। उपचार के लिए स्थानीय कृषि विश्वविद्यालय/कृषि विभाग द्वारा वर्तमान में अनुशंसित उत्पाद एवं मात्रा का ही प्रयोग करें।

3. **रोगग्रस्त फलों को हटाना**-खेत में दिखाई देने वाले रोगग्रस्त फलों को नियमित रूप से तोड़कर खेत से बाहर निकालकर नष्ट कर देना चाहिए। संक्रमित पौध-अवशेषों को खेत में नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि वे अगले संक्रमण के लिए स्रोत बन सकते हैं।

4. **उचित सिंचाई एवं जल निकास**-खेत में पानी का जमाव नहीं होने देना चाहिए। अनावश्यक रूप से पत्तियों एवं फलों को लंबे समय तक गीला रखने वाली सिंचाई पद्धति से बचना चाहिए। खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था होनी चाहिए।

5. **फसल चक्र**- एक ही खेत में लगातार मिर्च या अन्य संबंधित मेजबान फसलों की खेती करने से रोगजनक के लिए अनुकूल परिस्थितियां बनी रह सकती हैं। इसलिए गैर-मेजबान फसलों के साथ उचित फसल चक्र अपनाना चाहिए।

6. **उचित पौध दूरी**- अत्यधिक घनी फसल में नमी अधिक समय तक बनी रहती है। इसलिए अनुशंसित पौध दूरी रखने से वायु का उचित संचार होता है और रोग के विकास के लिए अनुकूल सूक्ष्म वातावरण को कम किया जा सकता है।

7. **जैविक नियंत्रण**-ट्राइकोडर्मा प्रजातियों, स्यूडोमोनास प्रजातियों तथा बैसिलस प्रजातियों जैसे लाभकारी सूक्ष्मजीवों का प्रयोग एन्थ्रेक्नोज के जैविक प्रबंधन में उपयोगी हो सकता है। ये रोगजनक के विकास को प्रतिस्पर्धा, प्रतिरोधी पदार्थों के उत्पादन तथा पौधे की प्रतिरक्षा को सक्रिय करने जैसे विभिन्न माध्यमों से प्रभावित कर सकते हैं।

8. **वनस्पति आधारित प्रबंधन**- नीम, लहसुन, तुलसी आदि पौधों से प्राप्त अर्क एवं तेलों में कोलेटोट्राइकम के विरुद्ध फफूंदरोधी क्षमता की रिपोर्ट की गई है। इनका उपयोग वैज्ञानिक रूप से अनुशंसित सांद्रता एवं विधि के अनुसार किया जाना चाहिए।

9. **रासायनिक प्रबंधन**- रोग की आर्थिक महत्व की स्थिति में अनुशंसित फफूंदनाशकों का प्रयोग किया जा सकता है। विभिन्न अध्ययनों में कार्बेन्डाजिम, मैनकोजेब, प्रोपिकोनाजोल, डाइफेनोकोनाजोल तथा एजोक्सीस्ट्रोबिन जैसे सक्रिय घटकों वाले फफूंदनाशकों की प्रभावशीलता का परीक्षण किया गया है। फफूंदनाशकों का प्रयोग करते समय एक ही रासायनिक समूह का बार-बार प्रयोग नहीं करना चाहिए। विभिन्न FRAC समूहों के अनुमोदित फफूंदनाशकों का उचित रोटेशन प्रतिरोध विकास के जोखिम को कम करने में सहायता कर सकता है। हमेशा वर्तमान फसल एवं क्षेत्र के लिए पंजीकृत उत्पाद की लेबल अनुशंसा का पालन करें।



12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

लाइम बीन : एक महत्वपूर्ण दलहनी सब्जी की उत्पादन तकनीक एवं पोषणीय महत्व

आकाश कुमार (शोध छात्र)
शशि शेखर मिश्रा (शोध छात्र)
आशीष कुमार सिंह (सहायक प्राध्यापक)
सब्ज़ी विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

सारांश: लाइम बीन (फेजियोलस ल्यूनेटस), जिसे सामान्यतः लाइमा बीन या बटर बीन के नाम से जाना जाता है, फैबेसी कुल की एक महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। यह फसल खाद्य, पोषण एवं कृषि की दृष्टि से उपयोगी होने के बावजूद अनेक क्षेत्रों में अपेक्षाकृत कम उपयोग की जाती है। इसके कोमल फल, हरे बीज तथा परिपक्व सूखे बीज भोजन के रूप में उपयोग किए जाते हैं। लाइम बीन के बीज उच्च गुणवत्ता वाले पादप-आधारित प्रोटीन, आहार रेशा, कार्बोहाइड्रेट तथा विभिन्न खनिज तत्वों के स्रोत हैं। FAO के खाद्य-संरचना संबंधी आंकड़ों के अनुसार सूखे लाइम बीन बीजों में लगभग 21.6% प्रोटीन तथा 17.9% आहार रेशा पाया गया है। इनमें कैल्शियम, आयरन, जिंक तथा फोलेट भी उपस्थित होते हैं। इसके अतिरिक्त यह फसल जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के माध्यम से मृदा उर्वरता सुधार में योगदान दे सकती है। आधुनिक शोध में लाइम बीन के आटे तथा प्रोटीन-सांद्रण को खाद्य प्रसंस्करण में उपयोगी पाया गया है। अतः लाइम बीन को पोषण सुरक्षा, फसल विविधीकरण, टिकाऊ कृषि तथा मूल्य संवर्धन की दृष्टि से एक संभावनाशील फसल के रूप में विकसित किया जा सकता है।

भूमिका: वर्तमान समय में कृषि का उद्देश्य केवल अधिक उत्पादन प्राप्त करना नहीं, बल्कि पौष्टिक, सुरक्षित एवं टिकाऊ खाद्य उत्पादन सुनिश्चित करना भी है। इस संदर्भ में कम प्रचलित एवं अल्प उपयोगित सब्जी फसलों का विशेष महत्व बढ़ रहा है। लाइम बीन ऐसी ही एक दलहनी फसल है, जो खाद्य एवं पोषणीय दोनों दृष्टियों से उपउक्त हैं। लाइम बीन उष्ण एवं उपोष्ण क्षेत्रों में पाई जाती है तथा इसके झाड़ीदार और लता प्रकार दोनों मिलते हैं। इसके कोमल फलियों, हरे बीज तथा परिपक्व बीजों का उपयोग विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों में किया जाता है। कुछ क्षेत्रों में इसकी कोमल पत्तियों, फलियों एवं अंकुरों का भी उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है।

जलवायु एवं मृदा: लाइमा बीन को शुष्क एवं ठंडी जलवायु की आवश्यकता होती है तथा यह 15-20°C तापमान पर अच्छी वृद्धि करती है। जब तापमान 26°C से अधिक हो जाता है, तो परागण एवं निषेचन की प्रक्रिया प्रभावित होती है, जिसके परिणाम स्वरूप फलियों का निर्माण काफी कम हो जाता है। मैदानी क्षेत्रों में इसकी खेती शीतकालीन सब्जी के रूप में की जा सकती है, जबकि पहाड़ी क्षेत्रों में इसे वसंत एवं वर्षा ऋतु में उगाया जाता है। यह फसल पाले को सहन नहीं कर पाती। लाइमा बीन की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है, जिनमें बलुई दोमट से लेकर भारी चिकनी मृदा तक शामिल हैं। हालांकि, मृदा का जल-निकास अच्छा होना चाहिए तथा मृदा का pH 6.0-6.5 के बीच उपयुक्त माना जाता है।

प्रमुख किस्में

स्वर्ण पोषण- बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा झारखंड के लिए उपयुक्त बताया गया है। इसकी पहली हरी फली लगभग 90-100 दिन में आती है और औसत उपज 14.49 टन/हे. है।

एकेएलबी-2- लाइमा बीन की एक शीघ्र पकने वाली, कोमल एवं एकवर्षीय किस्म है। इसकी फलियां लगभग 7-8 सेमी लंबी होती हैं। यह किस्म विशेष रूप से उत्तर प्रदेश तथा महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र की कृषि-जलवायु परिस्थितियों के लिए विकसित एवं अनुशंसित की गई है।

केकेएल-1 एक पोल-टाइप (लता वाली) लाइमा/बटर बीन किस्म है, जिसकी पौधों की ऊँचाई लगभग 2.42 मीटर होती है। इसमें फलियाँ गुच्छों में लगती हैं। इसके बीज बड़े, गोलाकार एवं सफेद रंग के होते हैं। इसकी औसत पकी फलियों की उपज लगभग 3.47 टन/हेक्टेयर दर्ज की गई है।

भूमि की तैयारी, बीज दर एवं बुवाई: खेत की तैयारी का उद्देश्य अच्छी भुरभुरी मिट्टी एवं पर्याप्त जल निकास वाली स्थिति तैयार करना होना चाहिए। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा बाद 2-3 जुताइयाँ देशी हल या कल्टीवेटर से की जानी चाहिए। खेत को समतल करने के बाद अच्छी तरह सड़ी हुई जैविक खाद का प्रयोग किया जाना चाहिए। बुवाई के लिए स्वस्थ, परिपक्व एवं रोगमुक्त बीज का चयन आवश्यक है। छोटे बीज वाली लाइमा बीन की किस्मों के लिए 20-35 किग्रा बीज/हेक्टेयर तथा बड़े बीज वाली किस्मों के लिए 45-50 किग्रा बीज/हेक्टेयर पर्याप्त होता है। लता वाली एवं अर्ध-लता वाली किस्मों में 60×40 सेमी की दूरी पर तथा झाड़ीदार किस्मों में 35 म 25 सेमी की दूरी पर बुवाई करना उपयुक्त होता है।

पोषक तत्व प्रबंधन: दलहनी फसल होने के कारण लाइम बीन वायुमंडलीय नाइट्रोजन के जैविक स्थिरीकरण में सक्षम है। यह विशेषता फसल को पोषण प्रदान करने के साथ-साथ मृदा उर्वरता सुधार में भी योगदान दे सकती है। यदि नाइट्रोजन की अधिक मात्रा का प्रयोग करने से पौधों में अत्यधिक पत्तियों एवं शाकीय भाग की वृद्धि हो सकती है तथा फलियों का निर्माण देर से होता है। इसलिए नाइट्रोजन का संतुलित उपयोग करना आवश्यक है। अंतिम खेत तैयारी के समय लगभग 25 टन/हेक्टेयर अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद मिट्टी में मिला देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त 40 किग्रा नाइट्रोजन, 50 किग्रा फॉस्फोरस तथा 50 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की मात्रा आधारभूत उर्वरक के रूप में प्रयोग की जाती है।

सिंचाई एवं जल प्रबंधन: लाइम बीन में समान एवं पर्याप्त नमी बनाए रखना आवश्यक है, विशेषकर अंकुरण, पुष्पन तथा फली विकास की अवस्थाओं में। लाइमा बीन की फसल में 8-10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। सिंचाई की आवृत्ति मृदा के प्रकार, मौसम तथा फसल की अवस्था के अनुसार समायोजित की जा सकती है। ड्रिप सिंचाई का प्रयोग जल उपयोग दक्षता बढ़ाने तथा जड़ों के आसपास नियंत्रित नमी बनाए रखने में उपयोगी हो सकता है। जलभराव से बचने हेतु खेत में उचित जल निकास व्यवस्था आवश्यक है।

खरपतवार, कीट एवं रोग प्रबंधन: फसल की प्रारंभिक वृद्धि अवस्था में खरपतवार पौधों के साथ जल, पोषक तत्व एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। इसलिए प्रारंभिक अवस्था में निराई-गुड़ाई, हाथ से खरपतवार नियंत्रण तथा आवश्यकतानुसार मल्चिंग उपयोगी उपाय हैं। लाइम बीन में विभिन्न कीट एवं रोग उत्पादन को प्रभावित कर सकते हैं। एफिड, थ्रिप्स, सफेद मक्खी, बीटल तथा फली को नुकसान पहुँचाने वाले कीट प्रमुख समस्या बन सकते हैं। रोगों में पत्ती धब्बा, रस्ट, पाउडरी मिल्ड्यू तथा जड़ संबंधी रोगों की संभावना रहती है। समेकित कीट प्रबंधन के अंतर्गत स्वस्थ बीज, खेत की स्वच्छता, उचित फसल चक्र, जैविक नियंत्रण तथा आवश्यकता के अनुसार अनुमोदित कीटनाशकों/फफूंदनाशकों का विवेकपूर्ण प्रयोग किया जाना चाहिए।

अंत:सांस्कृतिक क्रियाएं: लाइमा बीन की फसल में निरंतर हल्की एवं उथली निराई-गुड़ाई करना आवश्यक है, जिससे खरपतवारों पर नियंत्रण बना रहे और फसल की वृद्धि अच्छी हो। गहरी गुड़ाई से बचना चाहिए, क्योंकि इससे पौधों की जड़ प्रणाली को क्षति पहुँचने से फसल में नुकसान होता है। सामान्यतः 3-4 अंत:सांस्कृतिक क्रियाएँ खरपतवारों को नियंत्रित करने तथा मिट्टी की ऊपरी सतह पर मल्च जैसी परत बनाए रखने के लिए पर्याप्त होती हैं, जिससे मृदा से नमी का ह्रास कम होता है। पौधों को मिट्टी चढ़ाकर सहारा देना चाहिए। इससे पौधों को मजबूती मिलती है तथा सिंचाई एवं जल प्रबंधन में भी सुविधा होती है। बेहतर पौध वृद्धि एवं फलियों के अच्छे फलन के लिए पोल-टाइप लाइमा बीन की लताओं को पतली बाँस की खपच्चियों/डंडियों पर चढ़ाकर प्रशिक्षित करना चाहिए।

कटाई एवं उपरांत प्रबंधन: लाइमा बीन की कोमल फलियाँ 85-90 दिनों में पहली तुड़ाई के लिए तैयार हो जाती हैं। पूर्ण विकसित फलियों की कटाई उस अवस्था में की जाती है जब उनका हरा रंग पीले रंग में बदलने लगता है। इस अवस्था में फलियों से ताजे एवं कोमल बीज प्राप्त किए जा सकते हैं। पूर्णतः परिपक्व एवं सूखे बीजों का उपयोग भी सब्जी के रूप में किया जा सकता है। उपयुक्त कृषि प्रबंधन के अंतर्गत प्रति हेक्टेयर लगभग 5-10 टन ताजी हरी लाइमा बीन फलियों तथा लगभग 5.4-10 टन/हे. ताजी हरी गिरी की उपज प्राप्त की जा सकती है। तोड़ाई के बाद फलियों की सफाई, ग्रेडिंग एवं उचित पैकिंग की जाती है। कोमल फलियों को कम तापमान पर शीघ्र विपणन अथवा शीत भंडारण के माध्यम से गुणवत्ता बनाए रखने का प्रयास किया जा सकता है। ताजी फलियों के अतिरिक्त परिपक्व बीजों को सुखाकर लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

प्रोटीन: लाइम बीन के बीजों में प्रोटीन की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। उपलब्ध पोषण संरचना के अनुसार 100 ग्राम खाद्य भाग में लगभग 21.46 g प्रोटीन पाया जाता है। यह मात्रा लाइम बीन को पादप-आधारित प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण स्रोत बनाती है। इसके बीजों का उपयोग मानव आहार में सब्जी तथा सूखे बीज के रूप में किया जाता है, जिससे दैनिक आहार में प्रोटीन की पूर्ति में योगदान मिल सकता है।

आहार रेशा एवं खनिज तत्व: आहार रेशा लाइम बीन का एक महत्वपूर्ण पोषण घटक है। FAO के आंकड़ों के अनुसार सूखे बीजों में लगभग 17.9 g/100 g आहारीय रेशा पाया जाता है। यह इसे उच्च-रेशायुक्त खाद्य पदार्थों की श्रेणी में महत्वपूर्ण बनाता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

घटती कृषि भूमि एवं बढ़ती जनसंख्या : भविष्य की खाद्य चुनौती

मयंक कुमार शोध छात्र, चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

कपिल कुमार शोध छात्र, सस्य विज्ञान विभाग, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी (उ.प्र.)

डॉ. अनिल कुमार सिंह सह-प्राध्यापक, मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग

चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

प्रस्तावना

कृषि मानव सभ्यता की आधारशिला है तथा खाद्य सुरक्षा, ग्रामीण अर्थव्यवस्था और सामाजिक विकास का प्रमुख साधन है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कृषि का महत्व और भी अधिक है, जहाँ बड़ी आबादी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, औद्योगीकरण और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण कृषि भूमि पर दबाव लगातार बढ़ रहा है। एक ओर खाद्यान्न, फल, सब्जियों एवं अन्य कृषि उत्पादों की मांग में वृद्धि हो रही है, वहीं दूसरी ओर उपजाऊ कृषि भूमि का क्षेत्रफल सीमित होता जा रहा है। यह स्थिति भविष्य में खाद्य सुरक्षा, किसानों की आजीविका तथा पर्यावरणीय संतुलन के लिए गंभीर चुनौती बन सकती है।

भारत में कृषि भूमि का संरक्षण केवल उत्पादन बढ़ाने का विषय नहीं है, बल्कि यह देश की खाद्य आत्मनिर्भरता, ग्रामीण विकास और सतत भविष्य से भी जुड़ा हुआ है। इसलिए घटती कृषि भूमि एवं बढ़ती जनसंख्या की समस्या को वैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से समझना आवश्यक है।

कृषि भूमि में कमी के प्रमुख कारण

भारत में कृषि भूमि पर बढ़ते दबाव का प्रमुख कारण तेजी से बढ़ता शहरीकरण एवं औद्योगीकरण है। आवासीय कॉलोनियों, सड़कों, औद्योगिक क्षेत्रों, व्यावसायिक भवनों और अन्य आधारभूत संरचनाओं के विस्तार के लिए उपजाऊ कृषि भूमि का उपयोग किया जा रहा है। विशेष रूप से शहरों के आसपास स्थित उपजाऊ क्षेत्रों में कृषि भूमि का गैर-कृषि उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। इससे कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल कम होने के साथ-साथ ग्रामीण कृषि व्यवस्था भी प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त भूमि क्षरण, मृदा अपरदन, जलभराव, लवणता एवं क्षारीयता जैसी समस्याएँ भी कृषि भूमि की उत्पादकता को प्रभावित करती हैं। लगातार एक ही फसल प्रणाली अपनाने, असंतुलित उर्वरक प्रयोग, अत्यधिक सिंचाई तथा मृदा जैविक कार्बन में कमी के कारण भूमि की गुणवत्ता धीरे-धीरे घट सकती है। ऐसी परिस्थितियों में भूमि कृषि उपयोग में बनी रहने के बावजूद उसकी वास्तविक उत्पादन क्षमता कम हो जाती है।

जलवायु परिवर्तन भी इस समस्या को और गंभीर बना रहा है। अनियमित मानसून, सूखा, अत्यधिक वर्षा और



तापमान में वृद्धि के कारण मिट्टी की नमी, फसल वृद्धि तथा कृषि उत्पादन प्रभावित होते हैं। इस प्रकार कृषि भूमि की समस्या केवल क्षेत्रफल में कमी तक सीमित नहीं है, बल्कि भूमि की गुणवत्ता एवं उत्पादकता में गिरावट भी इसका महत्वपूर्ण हिस्सा है।

बढ़ती जनसंख्या और खाद्य सुरक्षा की चुनौती

जनसंख्या वृद्धि के साथ खाद्यान्न, दलहन, तिलहन, दूध, फल एवं सब्जियों की मांग में निरंतर वृद्धि हो रही है। वर्ष 2047 तक विकसित भारत के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक होगा। हालिया अनुमानों में दालों, फलों, खाद्य तेल और दूध जैसे उत्पादों की भविष्य की मांग एवं आपूर्ति के बीच संभावित अंतर को भी चिंता का विषय बताया गया है। बढ़ती खाद्य मांग को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादन में वृद्धि आवश्यक है, लेकिन सीमित भूमि, जल संसाधनों की कमी और मृदा स्वास्थ्य में गिरावट के कारण उत्पादन बढ़ाना आसान नहीं है। यदि कृषि भूमि का क्षेत्रफल घटता है और प्रति इकाई क्षेत्र उत्पादकता में पर्याप्त वृद्धि नहीं होती, तो खाद्य उपलब्धता पर दबाव बढ़ सकता है। इसका प्रभाव केवल खाद्यान्न उत्पादन तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि खाद्य पदार्थों की कीमतों, किसानों की आय, ग्रामीण रोजगार और पोषण स्तर पर भी पड़ेगा। विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए यह चुनौती अधिक गंभीर हो सकती है, क्योंकि उनके पास भूमि एवं संसाधनों की उपलब्धता सीमित होती है।

कृषि भूमि संरक्षण एवं उत्पादन वृद्धि के वैज्ञानिक उपाय

भविष्य की खाद्य चुनौती का समाधान केवल कृषि भूमि का विस्तार करना नहीं है, बल्कि उपलब्ध भूमि का वैज्ञानिक एवं टिकाऊ उपयोग सुनिश्चित करना है। इसके लिए निम्नलिखित उपाय महत्वपूर्ण हैं।

1. **मृदा स्वास्थ्य का संरक्षण:** मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणवत्ता बनाए रखना आवश्यक है। मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित उर्वरक प्रयोग, जैविक खाद, हरी खाद एवं फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन अपनाया जाना चाहिए। इससे मृदा जैविक कार्बन, पोषक तत्व उपलब्धता और भूमि की उत्पादक क्षमता में सुधार किया जा सकता है।

2. **समेकित पोषक तत्व प्रबंधन (INM):** रासायनिक उर्वरकों, जैविक खादों एवं जैव उर्वरकों का संतुलित उपयोग कृषि उत्पादन को टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इससे पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता बढ़ाने तथा मृदा की दीर्घकालिक उर्वरता बनाए रखने में सहायता मिल सकती है।

3. **फसल विविधीकरण एवं फसल चक्र:** लगातार एक ही फसल उगाने के स्थान पर दलहन, तिलहन, अनाज एवं अन्य उपयुक्त फसलों को फसल चक्र में शामिल करना चाहिए। इससे मृदा पोषक तत्वों का संतुलन बनाए रखने, कीट एवं रोगों के दबाव को कम करने तथा कृषि प्रणाली की स्थिरता बढ़ाने में सहायता मिलती है।

4. **जल एवं भूमि संरक्षण:** वर्षा जल संचयन, सूक्ष्म सिंचाई, समोच्च खेती, मल्चिंग और मृदा अपरदन नियंत्रण जैसे उपायों को अपनाना आवश्यक है। विशेष रूप से जल की कमी वाले क्षेत्रों में ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई से जल उपयोग दक्षता बढ़ाई जा सकती है।

5. **आधुनिक कृषि तकनीकों का उपयोग:** सटीक कृषि (Precision Agriculture), कृषि यंत्रीकरण, उन्नत बीज, डिजिटल कृषि एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित तकनीकों का उपयोग सीमित भूमि पर उत्पादन बढ़ाने में सहायक हो सकता है। हालांकि, इन तकनीकों को स्थानीय परिस्थितियों और किसानों की आर्थिक क्षमता के अनुरूप अपनाना आवश्यक है।

6. **कृषि भूमि का उचित नियोजन:** उपजाऊ कृषि भूमि को अनियोजित शहरीकरण एवं औद्योगिक विस्तार से बचाने के लिए प्रभावी भूमि उपयोग नियोजन आवश्यक है। कृषि भूमि के संरक्षण को विकास योजनाओं में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

निष्कर्ष

घटती कृषि भूमि एवं बढ़ती जनसंख्या भविष्य की खाद्य सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती है। इस समस्या का समाधान केवल अधिक उत्पादन प्राप्त करने तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि कृषि भूमि की गुणवत्ता, मृदा स्वास्थ्य, जल संसाधनों और पर्यावरणीय संतुलन का संरक्षण भी आवश्यक है। टिकाऊ कृषि पद्धतियों, समेकित पोषक तत्व प्रबंधन, फसल विविधीकरण, जल संरक्षण तथा आधुनिक तकनीकों के उचित उपयोग से सीमित भूमि पर अधिक एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान परिस्थितियों में कृषि भूमि का संरक्षण और मृदा स्वास्थ्य का सुधार खाद्य सुरक्षा की आधारशिला है। यदि आज भूमि संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाए, तो भविष्य की पीढ़ियों के लिए पर्याप्त खाद्य उत्पादन एवं सुरक्षित पर्यावरण सुनिश्चित किया जा सकता है। अतः कृषि भूमि को केवल उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि एक मूल्यवान प्राकृतिक संसाधन मानकर उसका संरक्षण करना समय की आवश्यकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

हरित क्रांति से आगे: भारत की कृषि-खाद्य प्रणाली में परिवर्तन की नई गतिशीलताओं को समझना

आशीष रजक सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. ललित कुमार सनोदिया
डॉ. रवि प्रकाश गुप्ता, डॉ. अवनीश कुमार यादव
डॉ. अखिलेश कुमार सिंह
सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय,प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

1. प्रस्तावना (Introduction)

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ कृषि न केवल आजीविका का प्रमुख साधन है, बल्कि देश की अर्थव्यवस्था और खाद्य सुरक्षा का भी महत्वपूर्ण आधार है। वर्ष 1960 के दशक में शुरू हुई हरित क्रांति ने भारतीय कृषि में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। इसके माध्यम से उच्च उपज देने वाली किस्मों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, सिंचाई सुविधाओं तथा आधुनिक कृषि तकनीकों को बढ़ावा मिला। परिणामस्वरूप गेहूँ और चावल के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई और भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता की दिशा में आगे बढ़ा।



हालाँकि, हरित क्रांति के लाभों के साथ-साथ कुछ चुनौतियाँ भी सामने आईं। इनमें मिट्टी की उर्वरता में कमी, भूजल स्तर में गिरावट, रासायनिक उर्वरकों पर बढ़ती निर्भरता, जैव विविधता का ह्रास तथा पर्यावरण प्रदूषण प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त, हरित क्रांति का लाभ सभी क्षेत्रों और किसानों को समान रूप से प्राप्त नहीं हुआ। वर्तमान समय में भारतीय कृषि एक नए परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। अब कृषि का उद्देश्य केवल खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाना नहीं, बल्कि किसानों की आय में वृद्धि, पोषण सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण और टिकाऊ कृषि विकास सुनिश्चित करना भी है। इसी संदर्भ में कृषि-खाद्य प्रणाली की अवधारणा महत्वपूर्ण हो गई है।

2. हरित क्रांति का ऐतिहासिक विकास

हरित क्रांति के विकास में निम्नलिखित कारकों का योगदान रहा

1.उच्च उपज देने वाली किस्मों के बीजों का उपयोग।
2.रासायनिक उर्वरकों का बढ़ता प्रयोग।
3.सिंचाई सुविधाओं का विस्तार।
4.कीटनाशकों एवं खरपतवारनाशकों का उपयोग।
5.ट्रैक्टर, थ्रेशर एवं अन्य कृषि मशीनों का उपयोग।
6.कृषि अनुसंधान एवं विस्तार सेवाओं का विकास।
7.न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) और सरकारी खरीद व्यवस्था का विस्तार।

3. कृषि मशीनीकरण (Farm Mechanization)

आधुनिक कृषि में ट्रैक्टर, सीड ड्रिल, थ्रेशर, रीपर और कंबाइन हार्वेस्टर जैसी मशीनों का उपयोग बढ़ा है। इससे समय और श्रम की बचत होती है तथा कृषि कार्यों की दक्षता बढ़ती है।



4. डिजिटल कृषि (Digital Agriculture):

मोबाइल, इंटरनेट, ड्रोन, GPS और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी तकनीकों का उपयोग कृषि में बढ़ रहा है। इनकी सहायता से किसान मौसम, बाजार मूल्य और फसल प्रबंधन की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

5. टिकाऊ कृषि विकास एवं आधुनिक तकनीक की भूमिका (Sustainable Agriculture and Role of Modern Technology)- टिकाऊ कृषि का अर्थ ऐसी कृषि प्रणाली से है, जिसमें वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखा जाए।

इसके लिए निम्नलिखित उपाय महत्वपूर्ण हैं

1. एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM): इसमें रासायनिक उर्वरकों, जैविक खादों और जैव उर्वरकों का संतुलित उपयोग किया जाता है। इससे फसलों को आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं और मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में सहायता मिलती है।

2. एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM): इसमें जैविक, यांत्रिक, सांस्कृतिक और आवश्यकता के अनुसार रासायनिक विधियों का समन्वित उपयोग करके कीटों का नियंत्रण किया जाता है।

3. जल प्रबंधन- ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकलर सिंचाई और वर्षा जल संचयन जैसी तकनीकों से पानी का कुशल उपयोग किया जा सकता है।

4. संरक्षण कृषि- न्यूनतम जुताई, फसल अवशेषों का संरक्षण और फसल विविधीकरण संरक्षण कृषि के प्रमुख सिद्धांत हैं। इससे मृदा संरक्षण में सहायता मिलती है।

किसान उत्पादक संगठन - किसानों का सामूहिक संगठन होता है, जिसके माध्यम से किसान बीज, उर्वरक और अन्य कृषि आदानों की खरीद तथा अपने उत्पादों के विपणन में सामूहिक रूप से भाग ले सकते हैं। इससे छोटे और सीमांत किसानों की बाजार तक पहुँच बेहतर बनाने में सहायता मिलती है।

6. आधुनिक तकनीक- ड्रोन, रिमोट सेंसिंग, GPS और कृत्रिम बुद्धिमत्ता की सहायता से फसल की निगरानी, रोगों की पहचान और कृषि आदानों का उचित प्रबंधन किया जा सकता है।

7. किसानों की आय एवं खाद्य सुरक्षा में कृषि-खाद्य प्रणाली की भूमिका-किसानों की आय में वृद्धि भारतीय कृषि विकास का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इसके लिए केवल फसल उत्पादन बढ़ाना पर्याप्त नहीं है, बल्कि कृषि उत्पादों का उचित मूल्य, बेहतर बाजार व्यवस्था और मूल्य संवर्धन भी आवश्यक है। किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए फसल विविधीकरण, पशुपालन, डेयरी व्यवसाय, खाद्य प्रसंस्करण, कृषि आधारित उद्योग और किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) को बढ़ावा देना चाहिए। इसके साथ ही कृषि-खाद्य प्रणाली का उद्देश्य सभी लोगों को पर्याप्त, सुरक्षित और पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराना है। दलहन, तिलहन, मोटे अनाज, फल और सब्जियों का उत्पादन बढ़ाने से संतुलित पोषण को बढ़ावा मिल सकता है।

8. भविष्य की संभावनाएँ (Future Prospects)

भारत की कृषि-खाद्य प्रणाली का भविष्य वैज्ञानिक अनुसंधान, आधुनिक तकनीक और टिकाऊ कृषि पद्धतियों पर निर्भर करेगा।

भविष्य में निम्नलिखित क्षेत्रों में विकास की व्यापक संभावनाएँ हैं- 1.जलवायु अनुकूल फसल किस्मों का विकास। 2.जैविक एवं प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहन। 3.डिजिटल एवं स्मार्ट कृषि का विस्तार।4.खाद्य प्रसंस्करण और कृषि आधारित उद्योगों का विकास। 5.किसानों को डिजिटल बाजारों से जोड़ना। 6.जल एवं मृदा संसाधनों का संरक्षण। 7.कृषि अनुसंधान और कृषि शिक्षा को मजबूत बनाना।

सरकार, कृषि वैज्ञानिकों, कृषि विश्वविद्यालयों और किसानों के संयुक्त प्रयासों से भारतीय कृषि को अधिक उत्पादक, लाभकारी और पर्यावरण अनुकूल बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष

हरित क्रांति भारतीय कृषि के इतिहास में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। इसने खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि करके भारत को खाद्य आत्मनिर्भरता की दिशा में आगे बढ़ाया। लेकिन वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र की आवश्यकताएँ पहले की तुलना में अधिक व्यापक हो गई हैं। अब केवल खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाना पर्याप्त नहीं है, बल्कि किसानों की आय में वृद्धि, पोषण सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा करना भी आवश्यक है।

हरित क्रांति के बाद भारतीय कृषि में तकनीकी विकास, फसल विविधीकरण, जैविक खेती, डिजिटल कृषि, खाद्य प्रसंस्करण और कृषि विपणन जैसे नए आयाम विकसित हुए हैं। इन परिवर्तनों ने कृषि-खाद्य प्रणाली को अधिक व्यापक और बहुआयामी बना दिया है। भारत को भविष्य में ऐसी कृषि-खाद्य प्रणाली विकसित करने की आवश्यकता है, जो उत्पादकता के साथ-साथ लाभप्रदता, समानता और पर्यावरणीय स्थिरता को भी सुनिश्चित करे। इसके लिए सरकार, कृषि वैज्ञानिकों, कृषि विश्वविद्यालयों, किसानों, कृषि उद्यमियों और निजी क्षेत्र के बीच सहयोग आवश्यक है। अतः कहा जा सकता है कि हरित क्रांति से आगे बढ़कर टिकाऊ, समावेशी, तकनीक आधारित और पोषण केंद्रित कृषि-खाद्य प्रणाली का विकास ही भारतीय कृषि के भविष्य की प्रमुख आवश्यकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

रोजेला (Hibiscus sabdariffa L.) का मूल्य संवर्धन एवं बेहतर बाजार अवसरों के लिए प्रसंस्करण

हिमांशु प्रजापति (एमएससी छात्र), सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय
डॉ. ललित कुमार सनोदिया सहायक प्रोफ़ेसर, कृषि विज्ञान संकाय प्रो.राजेंद्र सिंह (रज्जु भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश: रोजेला (Hibiscus sabdariffa L.), जिसे भारत में मेस्टा भी कहा जाता है, एक बहुउपयोगी फसल है। इसके लाल, मांसल बाह्यदलपुंज (कैलिक्स) से शरबत, सिरप, जैम, जेली, अचार तथा हर्बल पेय तैयार किए जा सकते हैं। ताजे कैलिक्स की सीमित भंडारण अवधि के कारण सुखाने, उचित पैकेजिंग और प्रसंस्करण का विशेष महत्त्व है। मूल्य संवर्धन के माध्यम से किसानों को कच्चे उत्पाद के अतिरिक्त प्रसंस्कृत उत्पाद बेचने के अवसर मिल सकते हैं। इसके लिए स्वच्छ प्रसंस्करण, उत्पाद की गुणवत्ता, उपभोक्ता पसंद और बाजार की माँग पर ध्यान देना आवश्यक है।

मुख्य शब्द: रोजेला, मूल्य संवर्धन, खाद्य प्रसंस्करण, कैलिक्स, शरबत, जैम, विपणन।

प्रस्तावना- भारत में किसानों की आय बढ़ाने के लिए केवल कृषि उत्पादन बढ़ाना ही पर्याप्त नहीं है; उत्पाद की गुणवत्ता, प्रसंस्करण और विपणन भी महत्त्वपूर्ण हैं। रोजेला की विशेषता यह है कि इसके कैलिक्स का उपयोग विभिन्न खाद्य उत्पादों में किया जा सकता है। इसके लाल रंग में एंथोसायनिन जैसे प्राकृतिक वर्णक योगदान देते हैं, जबकि इसमें कार्बनिक अम्ल और अन्य जैव सक्रिय यौगिक भी पाए जाते हैं। रोजेला के कैलिक्स को स्थानीय स्तर पर संसाधित करके छोटे उद्यम, महिला स्वयं सहायता समूह और किसान उत्पादक संगठन अतिरिक्त व्यावसायिक अवसर विकसित कर सकते हैं।

रोजेला के प्रमुख मूल्य संवर्धित उत्पाद

शरबत एवं सिरप- रोजेला के कैलिक्स से तैयार अर्क का उपयोग शरबत और सिरप बनाने में किया जा सकता है। इन उत्पादों में लाल रंग, खट्टा-मीठा स्वाद तथा आकर्षक प्रस्तुति महत्त्वपूर्ण होती है। व्यावसायिक उत्पादन के दौरान अर्क की गुणवत्ता, अम्लता, मिठास, स्वच्छता और सुरक्षित भंडारण पर ध्यान देना चाहिए।

जैम एवं जेली- कैलिक्स के अर्क से जैम और जेली जैसे उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं। इनके निर्माण में फल या कैलिक्स के अर्क, चीनी, अम्लता तथा जेल बनाने वाले पदार्थों का उचित संतुलन आवश्यक है। उत्पाद की बनावट, रंग और स्वाद को बनाए रखने के लिए मानकीकृत प्रसंस्करण विधि अपनानी चाहिए।

सूखे कैलिक्स एवं हर्बल पेय- रोजेला के कैलिक्स को नियंत्रित परिस्थितियों में सुखाकर लंबे समय तक भंडारित किया जा सकता है। सूखे कैलिक्स का उपयोग हर्बल पेय, चाय तथा अन्य खाद्य उत्पादों में किया जाता है। सुखाने की विधि का चयन उपलब्ध संसाधनों, लागत और अंतिम उत्पाद की गुणवत्ता के आधार पर करना चाहिए।

रोजेला पाउडर- सूखे कैलिक्स को उपयुक्त उपकरणों से



पीसकर पाउडर तैयार किया जा सकता है। इसका उपयोग पेय मिश्रण, खाद्य उत्पादों और अन्य प्रसंस्कृत सामग्रियों में किया जा सकता है। पाउडर को नमी से बचाने तथा उसकी गुणवत्ता बनाए रखने के लिए नमीरोधी पैकेजिंग आवश्यक है।

अचार एवं अन्य खाद्य उत्पाद-रोजेला के कैलिक्स से अचार, सॉस तथा कुछ पारंपरिक खाद्य उत्पाद भी तैयार किए जा सकते हैं। ऐसे उत्पादों में स्वाद के साथ-साथ सुरक्षित संरक्षण, अम्लता, स्वच्छता और उपयुक्त पैकेजिंग सुनिश्चित करना आवश्यक है।

प्रसंस्करण की प्रमुख अवस्थाएं- रोजेला के मूल्य संवर्धन के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जा सकती है- कटाई • छँटाई • स्वच्छता • प्रसंस्करण • गुणवत्ता जाँच • पैकेजिंग • भंडारण • विपणन

कटाई एवं छँटाई- उचित अवस्था में विकसित, स्वस्थ और साफ कैलिक्स की कटाई करनी चाहिए। रोगग्रस्त, क्षतिग्रस्त या दूषित भागों को अलग कर देना चाहिए। कच्चे माल की गुणवत्ता अंतिम उत्पाद की गुणवत्ता को प्रभावित करती है।

सफाई एवं प्रसंस्करण- कैलिक्स को स्वच्छ पेयजल से साफ करके निर्धारित उत्पाद के अनुसार प्रसंस्करण करना चाहिए। खाद्य प्रसंस्करण के दौरान साफ उपकरण, स्वच्छ कार्यस्थल और प्रशिक्षित श्रमिकों का उपयोग करना चाहिए।

सुखाना एवं संरक्षण- सुखाना रोजेला के कैलिक्स के संरक्षण की एक महत्त्वपूर्ण तकनीक है। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार, सुखाने की विभिन्न विधियाँ कैलिक्स के रंग, नमी, सुगंध तथा जैव सक्रिय यौगिकों को अलग-अलग प्रकार से प्रभावित कर सकती हैं। इसलिए केवल धूप में सुखाने पर निर्भर रहने के बजाय स्वच्छ एवं नियंत्रित सुखाने की व्यवस्था को प्राथमिकता देना उचित है।

पैकेजिंग एवं भंडारण- सूखे कैलिक्स और पाउडर को नमीरोधी, खाद्य-ग्रेड पैकेजिंग में रखना चाहिए। शरबत और सिरप जैसे तरल उत्पादों के लिए उपयुक्त, साफ और सुरक्षित पैकेजिंग आवश्यक है। भंडारण अवधि उत्पाद की संरचना, प्रसंस्करण, पैकेजिंग और गुणवत्ता परीक्षण के आधार पर निर्धारित करनी चाहिए।

मूल्य संवर्धन से बाजार के अवसर- रोजेला के प्रसंस्कृत उत्पादों के लिए स्थानीय खुदरा बाजार, खाद्य प्रसंस्करण इकाइयाँ, पेय पदार्थ निर्माता, ऑनलाइन बिक्री मंच तथा संस्थागत खरीदार संभावित विपणन माध्यम हो सकते हैं। हालांकि, बाजार की वास्तविक माँग और उत्पाद की लाभप्रदता क्षेत्र, गुणवत्ता, लागत और बिक्री मूल्य के अनुसार बदलती

ग्रामीण उद्यमिता में रोजेला की भूमिका- रोजेला का प्रसंस्करण ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे खाद्य उद्यम विकसित करने का अवसर प्रदान कर सकता है। महिला स्वयं सहायता समूह, किसान उत्पादक संगठन और ग्रामीण युवा स्थानीय स्तर पर कैलिक्स की छँटाई, सुखाने, पैकेजिंग तथा उत्पाद विकास जैसी गतिविधियों से जुड़ सकते हैं। सामूहिक रूप से कच्चे माल की खरीद, प्रसंस्करण उपकरणों का उपयोग, गुणवत्ता परीक्षण और विपणन करने से संचालन को अधिक व्यवस्थित बनाया जा सकता है। कृषि विज्ञान केंद्रों, कृषि विश्वविद्यालयों तथा खाद्य प्रसंस्करण विशेषज्ञों से तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त करना भी उपयोगी होगा।

किसानों एवं उद्यमियों के लिए व्यावहारिक सुझाव

1.स्थानीय परिस्थितियों और बाजार की माँग के अनुसार रोजेला की उपयुक्त किस्म चुनें। 2.स्वस्थ एवं परिपक्व कैलिक्स की समय पर कटाई करें। 3.प्रसंस्करण से पहले कच्चे माल की छँटाई और सफाई सुनिश्चित करें। 4.कैलिक्स को स्वच्छ, नियंत्रित परिस्थितियों में सुखाएँ और नमी से बचाकर रखें। 5.उत्पाद के अनुसार मानकीकृत प्रसंस्करण विधि और खाद्य-ग्रेड पैकेजिंग अपनाएँ। 6.उत्पादन लागत, श्रम, ऊर्जा, पैकेजिंग, परिवहन और संभावित खराबे का पूरा हिसाब रखें। 7.स्थानीय खरीदारों, किसान उत्पादक संगठनों और खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों से संपर्क स्थापित करें। 8.व्यावसायिक बिक्री से पहले लागू स्वास्थ्य पंजीकरण या लाइसेंस तथा लेबलिंग संबंधी आवश्यकताओं की जाँच करें। 9.उत्पाद की शेल्फ लाइफ और गुणवत्ता के बारे में दावा करने से पहले उपयुक्त परीक्षण कराएँ।

निष्कर्ष

रोजेला का मूल्य संवर्धन किसानों की आय के विविध स्रोत विकसित करने और ग्रामीण उद्यमिता को प्रोत्साहित करने का एक उपयोगी अवसर हो सकता है। शरबत, सिरप, जैम, जेली, सूखे कैलिक्स और पाउडर जैसे उत्पादों के माध्यम से इस फसल की उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है। इसके लिए वैज्ञानिक प्रसंस्करण, सुरक्षित भंडारण, गुणवत्तापूर्ण पैकेजिंग और बाजार की वास्तविक माँग का आकलन आवश्यक है। कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केंद्रों, किसान उत्पादक संगठनों और खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों के सहयोग से रोजेला के व्यावसायिक विकास को आगे बढ़ाया जा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

कृषि में परिपत्र अर्थव्यवस्था: जैव अपशिष्ट से संसाधन निर्माण की संभावनाएं

शैफाली तंवर विद्यावाचस्पति शोधकर्ता
उद्यान विज्ञान विभाग
दीपेंद्र सिंह सारंगदेवोत विद्यावाचस्पति शोधकर्ता, सस्य विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सारांश-कृषि मानव सभ्यता की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा का आधार है, लेकिन कृषि उत्पादन, कटाई, प्रसंस्करण एवं विपणन के विभिन्न चरणों में बड़ी मात्रा में जैव अपशिष्ट उत्पन्न होता है। फसल अवशेष, फल एवं सब्जियों के अवशेष, पशु अपशिष्ट तथा कृषि-प्रसंस्करण उद्योगों के उप-उत्पाद यदि उचित रूप से प्रबंधित न किए जाएँ, तो वायु, जल एवं मृदा प्रदूषण तथा ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन की समस्या को बढ़ा सकते हैं। इसके विपरीत, इन्हीं जैव अपशिष्टों को संसाधन के रूप में उपयोग करके कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, बायोगैस, जैव-उर्वरक, बायोचार, जैव ईंधन तथा अन्य मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं। यही कृषि में परिपत्र अर्थव्यवस्था (Circular Economy) की मूल अवधारणा है, जिसमें संसाधनों के पुनः उपयोग, पुनर्चक्रण एवं पुनर्प्राप्ति द्वारा अपशिष्ट को न्यूनतम करने तथा पोषक तत्वों और ऊर्जा को कृषि प्रणाली में पुनः प्रवाहित करने पर बल दिया जाता है। यह दृष्टिकोण मृदा स्वास्थ्य, संसाधन उपयोग दक्षता, किसान आय, ग्रामीण रोजगार एवं ऊर्जा सुरक्षा को बढ़ावा देने के साथ टिकाऊ और जलवायु-स्मार्ट कृषि व्यवस्था की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

मुख्य शब्द: परिपत्र अर्थव्यवस्था, कृषि अपशिष्ट, जैव अपशिष्ट, संसाधन पुनर्चक्रण, कम्पोस्ट, बायोचार, बायोगैस, सतत कृषि

1. प्रस्तावना: कृषि खाद्य, पोषण, रोजगार एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है। बढ़ती जनसंख्या, प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव, जलवायु परिवर्तन तथा कृषि आदानों की बढ़ती लागत के कारण कृषि को अधिक टिकाऊ एवं संसाधन-कुशल बनाना आवश्यक हो गया है। पारंपरिक रैखिक अर्थव्यवस्था (Linear Economy) में संसाधनों का उपयोग कर उत्पाद तैयार किए जाते हैं और उपयोग के बाद अवशेषों को अपशिष्ट के रूप में छोड़ दिया जाता है। इसके विपरीत, परिपत्र अर्थव्यवस्था का उद्देश्य संसाधनों को अधिक समय तक उत्पादन प्रणाली में बनाए रखना तथा अपशिष्ट को पुनः उपयोगी संसाधन में परिवर्तित करना है। कृषि में यह अवधारणा विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि खेतों में बचने वाले तने, पत्तियाँ, भूसा, फल-सब्जियों के छिलके, प्रसंस्करण अवशेष तथा पशु अपशिष्ट पोषक तत्वों एवं जैविक पदार्थों के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। उचित तकनीक से इनका प्रसंस्करण कर खाद, ऊर्जा तथा अन्य मूल्यवर्धित उत्पाद प्राप्त किए जा सकते हैं। भारत में प्रतिवर्ष लगभग 350 मिलियन टन कृषि अपशिष्ट उत्पन्न होने का अनुमान है तथा कृषि अवशेषों से 18,000 MW से अधिक विद्युत उत्पादन की संभाव्यता बताई गई है। फसल अवशेष प्रबंधन के अंतर्गत अवशेषों को खेत में मिलाने, मल्चिंग, कम्पोस्टिंग, बायोगैस तथा ऊर्जा उत्पादन जैसे विकल्पों को बढ़ावा दिया जा रहा है। इस प्रकार कृषि अपशिष्ट को समस्या के बजाय संसाधन के रूप में देखना परिपत्र कृषि व्यवस्था की दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन है।

2. कृषि में परिपत्र अर्थव्यवस्था की अवधारणा-परिपत्र अर्थव्यवस्था ऐसी उत्पादन एवं उपभोग प्रणाली है जिसमें संसाधनों की बर्बादी को कम करके उनका पुनः उपयोग, पुनर्चक्रण और पुनर्प्राप्ति सुनिश्चित की जाती है। कृषि के संदर्भ में इसका उद्देश्य पोषक तत्वों, जैविक पदार्थों, जल एवं ऊर्जा के चक्रीय प्रवाह को बढ़ावा देना है।

कृषि उत्पादन ⇢ जैव अपशिष्ट ⇢ प्रसंस्करण ⇢ मूल्यवर्धित उत्पाद ⇢ पुनः कृषि में उपयोग ⇢ बेहतर मृदा एवं उत्पादन ⇢ पुनः जैविक अवशेष। उदाहरण हेतु, फसल अवशेषों से कम्पोस्ट तैयार कर उसे खेत में वापस डालने से पोषक तत्वों एवं जैविक पदार्थों का पुनर्चक्रण होता है। इसी प्रकार पशु अपशिष्ट से बायोगैस प्राप्त करने के बाद बचा डाइजेस्टेट जैविक खाद के रूप में उपयोग किया जा सकता है। FAO के अनुसार, जैव-अर्थव्यवस्था आधारित नवाचार जैविक अपशिष्ट को कम करने, संसाधनों के अधिक कुशल उपयोग तथा नई आजीविका के अवसरों के निर्माण में योगदान कर सकते हैं।



3. कृषि जैव अपशिष्ट के प्रमुख स्रोत: कृषि में जैव अपशिष्ट मुख्यतः निम्न स्रोतों से प्राप्त होता है–

फसल अवशेष: धान का पुआल, गेहूँ का भूसा, मक्का एवं बाजरा के डंठल, गन्ने की खोई, कपास के अवशेष तथा अन्य तने एवं पत्तियाँ प्रमुख कृषि अवशेष हैं। इनके खुले में जलाने से वायु प्रदूषण तथा ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन बढ़ सकता है। अतः इनका इन-सीटू एवं एक्स-सीटू प्रबंधन आवश्यक है।

फल एवं सब्जी अपशिष्ट: कटाई, ग्रेडिंग, पैकिंग, प्रसंस्करण एवं विपणन के दौरान छिलके, बीज, गूदा, पत्तियाँ एवं खराब उत्पाद निकलते हैं। इनका उपयोग कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, पशु आहार, जैव सक्रिय पदार्थ तथा अन्य मूल्यवर्धित उत्पादों में किया जा सकता है।

पशु अपशिष्ट: गोबर, मूत्र एवं पशुशाला के जैविक अवशेष बायोगैस तथा जैविक खाद के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। वैज्ञानिक प्रबंधन से इनसे ऊर्जा एवं पोषक तत्व दोनों प्राप्त किए जा सकते हैं।

कृषि-प्रसंस्करण उप-उत्पाद: चावल की भूसी, गन्ने की खोई, फल प्रसंस्करण अवशेष तथा तेल निष्कर्षण के अवशेषों का उपयोग जैव ऊर्जा, कम्पोस्ट, बायोचार एवं अन्य मूल्यवर्धित उत्पादों के लिए किया जा सकता है।

4. जैव अपशिष्ट से संसाधन निर्माण की प्रमुख तकनीकें

कम्पोस्टिंग एवं वर्मी कम्पोस्टिंग: कम्पोस्टिंग में जैविक अपशिष्ट को नियंत्रित परिस्थितियों में सूक्ष्मजीवों की सहायता से स्थिर एवं पोषक तत्वों से युक्त जैविक खाद में बदला जाता है। फसल अवशेष, पत्तियाँ, फल-सब्जी अपशिष्ट एवं पशु अपशिष्ट से गुणवत्तापूर्ण कम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है। कम्पोस्ट के उपयोग से मृदा में जैविक पदार्थ, जल धारण क्षमता, मृदा संरचना तथा सूक्ष्मजीवी गतिविधि में सुधार हो सकता है। वर्मी कम्पोस्टिंग में केंचुओं एवं सूक्ष्मजीवों की सहायता से जैविक अपशिष्ट का विघटन किया जाता है। इससे प्राप्त वर्मी कम्पोस्ट पोषक तत्वों एवं जैविक पदार्थों से समृद्ध होता है तथा कृषि एवं बागवानी फसलों के लिए उपयोगी जैविक आदान है।

बायोगैस एवं जैव-सीएनजी-पशु गोबर, खाद्य अपशिष्ट तथा उपयुक्त कृषि अवशेषों को अवायवीय पाचन (Anaerobic Digestion) द्वारा बायोगैस में बदला जा सकता है। इसका उपयोग खाना पकाने, ताप एवं विद्युत उत्पादन के लिए किया जाता है तथा शोधन के बाद जैव-सीएनजी/Compressed Biogas प्राप्त किया जा सकता है। बायोगैस उत्पादन के बाद प्राप्त डाइजेस्टेट को पोषक तत्वों के स्रोत के रूप में खेत में उपयोग करने से ऊर्जा और पोषक तत्व दोनों का पुनर्चक्रण संभव होता है।

बायोचार- बायोचार जैविक पदार्थों को सीमित ऑक्सीजन की उपस्थिति में तापीय अपघटन द्वारा प्राप्त कार्बन-समृद्ध पदार्थ है। फसल अवशेष, लकड़ी एवं कृषि-प्रसंस्करण अवशेष इसके प्रमुख स्रोत हैं। बायोचार मृदा में जल धारण क्षमता, पोषक तत्व प्रतिधारण एवं मृदा जैविक गतिविधि में सुधार करने में सहायक हो सकता है। साथ ही यह कार्बन को अपेक्षाकृत स्थिर रूप में मृदा में रखने की क्षमता रखता है।

अन्य मूल्यवर्धित उत्पाद एवं मशरूम उत्पादन-कृषि एवं खाद्य अपशिष्ट से जैव-उर्वरक, सूक्ष्मजीवी उत्पाद, जैव सक्रिय पदार्थ तथा अन्य मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं। इसी प्रकार धान एवं गेहूँ के भूसे जैसे अवशेषों का उपयोग मशरूम उत्पादन के सब्सट्रेट के रूप में किया जा सकता है। मशरूम उत्पादन के बाद प्राप्त spent mushroom substrate को कम्पोस्ट या मृदा संशोधक के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इससे एक ही जैव पदार्थ का बहु-चरणीय उपयोग संभव होता है।

5. मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संरक्षण में योगदान- परिपत्र अर्थव्यवस्था का प्रमुख लाभ पोषक तत्वों एवं जैविक पदार्थों का पुनर्चक्रण है। कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, डाइजेस्टेट एवं बायोचार जैसे उत्पाद मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ाने में सहायता कर सकते हैं। इनके उपयोग से मृदा संरचना, जल धारण क्षमता, वायु संचार, सूक्ष्मजीवी गतिविधि तथा पोषक तत्व उपलब्धता में सुधार की संभावना रहती है और रासायनिक उर्वरकों पर पूर्ण निर्भरता को कम करने में सहायता मिल सकती है। कृषि अपशिष्ट का खुले में जलाना वायु प्रदूषण का महत्वपूर्ण स्रोत बन सकता है। इसके स्थान पर अवशेषों का कम्पोस्टिंग, बायोगैस, बायोचार अथवा अन्य उपयोगों में परिवर्तन करने से जलाने की आवश्यकता कम की जा सकती है। बायोचार कार्बन भंडारण की दृष्टि से उपयोगी है, जबकि जैव ऊर्जा जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता कम करने की संभावना प्रदान करती है। इस प्रकार कृषि अपशिष्ट प्रबंधन पर्यावरण संरक्षण, संसाधन संरक्षण तथा जलवायु परिवर्तन शमन में योगदान कर सकता है।

6. बागवानी में परिपत्र अर्थव्यवस्था की संभावनाएं- बागवानी क्षेत्र में परिपत्र अर्थव्यवस्था के व्यापक अवसर उपलब्ध हैं। फल एवं सब्जियों की खेती तथा प्रसंस्करण से प्राप्त अवशेषों का उपयोग कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, मल्च, जैव-उर्वरक एवं अन्य उत्पादों में किया जा सकता है। फल प्रसंस्करण इकाइयों से निकलने वाले छिलके एवं बीजों में उपस्थित जैव सक्रिय यौगिकों का मूल्यवर्धित उत्पादों के निर्माण में उपयोग किया जा सकता है। छंटाई एवं कटाई से प्राप्त शाखाओं तथा पत्तियों को कम्पोस्ट या बायोचार निर्माण में प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार खेत पर उपलब्ध जैविक अवशेषों का पुनर्चक्रण बाहरी जैविक आदानों की आवश्यकता, उत्पादन लागत तथा अपशिष्ट निपटान की समस्या को कम करने में सहायक हो सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

वृक्षायुर्वेद : वृक्षों को दीर्घायुष्य एवं स्वास्थ्य प्रदान करने वाला शास्त्र

श्री खेता राम सहायक आचार्य (वृक्षायुर्वेद), वृक्षायुर्वेद विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान—मानद विश्वविद्यालय (NIA-DU), जयपुर, राजस्थान

भारतीय ज्ञान परंपरा में चौंसठ कलाओं के अन्तर्गत वृक्षायुर्वेद का वर्णन प्राप्त होता है। वृक्षायुर्वेद एक प्राचीन भारतीय ग्रंथ है जो विशेष रूप से वृक्षों, पौधों और उनकी देखभाल से संबंधित है। यह ग्रंथ कृषि और वनस्पति विज्ञान पर आधारित है और इसमें वृक्षों की देखभाल, रोपण, संरक्षण, और उपचार के विभिन्न पहलुओं का उल्लेख मिलता है। वृक्षायुर्वेद का प्रमुख उद्देश्य वृक्षों की आयुवृद्धि और स्वास्थ्य को बनाए रखना है।

परिचय: ज्योतिष शास्त्र एवं आयुर्वेद एक दूसरे के पूरक शास्त्र हैं। ज्योतिष शास्त्र में वृक्षायुर्वेद का विवेचन बहुत ही विस्तार पूर्वक किया गया है। बृहत्संहिता में वृक्षायुर्वेद अध्याय में वृक्षों के रोपण हेतु अच्छी भूमि तथा कौन से वृक्ष को कहाँ और कब लगाना चाहिए और वृक्षों के आन्तरिक एवं बाह्य रोगों के पहचान और निदान का वर्णन मिलता है। बृहत्संहिता में कहा गया है कि -प्रान्तच्छायाविनिर्मुक्ता न मनोज्ञा जलाशयाः। यस्मादतो जलप्रान्तेष्वारामान् विनिवेशयेत॥ (बृहत्संहिता)। यदि वापी, कूप, तालाब आदि जलाशयों के प्रान्त वृक्षों के छाया से रहित हो तो सुन्दर नहीं लगते हैं अर्थात जलाशयों के किनारों पर बहुत सारे वृक्ष लगाने चाहिए। वेदों में वृक्ष-वनस्पतियों की उपयोगिता के विषय में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। वृक्ष मानवमात्र को प्राणवायु देते हैं एवं मनुष्य प्राणवायु के बिना जीवित नहीं रह सकता है, अतः वृक्ष, वनस्पतियों और औषधियों को रक्षक बताया गया है। वृक्ष-वनस्पति मात्र प्राणवायु के साधन नहीं हैं, अपितु उनके समस्त अंग उपयोगी हैं। ये पाँच अंग हैं - मूल, स्कन्ध, पत्र, पुष्प और फल। काष्ठ की प्राप्ति का एक मात्र साधन वृक्ष हैं। यह वृक्षों के रोपण, पोषण, चिकित्सा एवं दोहद आदि के द्वारा मनचाहे फल, फूलों की समृद्धि को प्राप्त करने की कला है। इस कला का उद्देश्य है-मनोरम उद्यान या उपवन की रचना। प्राचीन भारत में उद्यान, नगरनिवेश एवं भवन-वास्तु के अनिवार्य अंग माने गये थे। वराहमिहिर जी के अनुसार उद्यानों से युक्त नगरों में देवता सर्वदा निवास करते हैं -

रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च॥ (बृहत्संहिता)

इस कला के अन्तर्गत निम्न विषयों का निरूपण हुआ है -

* **उपवनयोग्य भूमि का चयन-** Selection of suitable land for cultivation

* **वृक्षरोपण के लिये भूमि तैयार करना-**Preparing land for tree planting

* **मांगलिक वृक्षों का प्रथम रोपण-**First planting of auspicious trees

* पादप-संरोपण॥ Planting, * पादप-सिंचन॥ plant irrigation * वृक्ष-चिकित्सा॥ Tree therapy, * बीजोपचार॥ Seed Treatment, * वृक्षदोहद॥ Tree cutting. कतिपय अलौकिक प्रयोग आदि। वस्तुतः वृक्षायुर्वेदयोग विज्ञान और कला, प्रयोग और चमत्कार का रोचक समन्वय है। श्री वराहमिहिर जी ने बृहत्संहिता में 55वें अध्याय के रूप में वृक्षायुर्वेद का वर्णन किया है , जिसमें वर्णनीय विषय इस प्रकार हैं।

परिभाषा

आयुर्वेद का अर्थ है- आयु को देने वाला वेद या शास्त्र। वृक्षायुर्वेद वृक्षों को दीर्घायुष्य एवं स्वास्थ्य प्रदान करने वाला शास्त्र है -

वृक्षस्य आयुर्वेदः-वृक्षायुर्वेदः, अर्थात् तरुचिकित्सादिशास्त्रम्। (शब्दकल्पद्रुम)। वृक्षायुर्वेद का सामान्य अर्थ उस विद्या से है जो वृक्षों और पौधों की सम्यक वृद्धि तथा पर्यावरण की सुरक्षा से सम्बन्धित चिन्तन है। वृक्षायुर्वेद यह ग्रन्थ के रूप में सुरपाल की रचना एवं वराहमिहिर द्वारा रचित बृहत्संहिता में वृक्षायुर्वेद पर भी एक अध्याय और पण्डित चक्रपाणि मिश्र द्वारा रचित विश्ववल्लभ वृक्षायुर्वेद प्राप्त होता है।

पेड़-पौधों में भेद-प्रकृति से उत्पन्न सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। जिस अवस्था में निर्मित होते हैं उस अवस्था के अग्रिम चरणों से गुजरते हुए ये अन्तिम अवस्था के पडाव को पार करते हैं। वृक्ष की यात्रा भी प्रथम बीज से



आरंभ होकर तना, टहनियाँ एवं पौधे की अन्तिम वृक्ष की अवस्था तक चलती है। इन सभी अवस्था में परिणत होते हुए वह अपनी उत्पत्ति यात्रा को समाप्त करता है तथा पुनः बीज के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

भारतीय वाग्मय में ऋषि-मुनियों ने पौधों को कुछ वर्गों में विभाजित किया है -

वृक्ष एवं उनके प्रकार

पौधों के नाम	पादप
वनस्पति	पुष्प के अभाव में फल (ये पुष्पं विना फलन्ति)
औषधि	फल पकाने पर विनाश (फलपाकान्त)
लता	वल्ली - आरोहणापेक्षा
त्वकसार	वेणु, बांस और बरु
द्रुम	पुष्प - ये पुष्पै फलन्ति

चक्रपाणि मिश्र जी ने अपने ग्रंथ विश्ववल्लभ वृक्षायुर्वेद में पांच प्रकारों का उल्लेख किया है :

बीजोद्भवा: काण्डभवाश्च चान्ये कंदोद्भवागुल्म लता दुरुमाद्याः। उक्तास्तथान्येह्यपि च बीजकाण्डभवाविभेदं कथयामि तेषाम् ॥ (विश्ववल्लभ वृक्षायुर्वेद 3/13)

1. **बीजोद्भव** -जो वृक्ष या वनस्पति मात्र बीज से उत्पन्न होते हैं।

2. **काण्डभव** - शाखा अर्थात डाली से जो उत्पन्न होते हैं वे वृक्ष या वनस्पति काण्डभव के अंतर्गत आते हैं।

3. **कंदोद्भव:** जो वृक्ष मात्र कंद अर्थात अपने मूल से उत्पन्न होते हैं उन्हें कंदोद्भव वनस्पति कहा जाता है। जैसे : अदरक, शूरण, हल्दी, आलू आदि।

4. **बीज काण्ड भव :** जो वनस्पति बीज से भी उत्पन्न होते हैं और काण्ड अर्थात डाली से भी उत्पन्न हो जाते हैं उन्हें बीजकाण्ड भव वनस्पति कहा जाता है : पीपल, बरगद , अनार , बांस आदि।

5. **बीजकंद भव :** जो वनस्पति बीज और कंद दोनों से उत्पन्न होते हैं वह इस श्रेणी में आते हैं : इलायची, कमल प्याज आदि

वृक्ष रोग-ज्योतिषशास्त्र एवं भारतीय कृषि शास्त्र में वृक्षों में लगने वाले रोगों तथा उन रोगों से निदान पाने का वर्णन बहुत ही सरल तरीके से किया गया है। बृहत संहिता में वृक्षों में लगने वाले रोगों के ज्ञान के बारे में वर्णन मिलता है कि -

शीतावातातपै रोगो जायते पाण्डुपत्रता। अवृद्धिश्च प्रवालानां शाखाशोषो रसस्रुतिः॥ (बृहत्संहिता)

वृक्षों में अधिक शीत, वायु और धूप लगने से रोगों की उत्पत्ति होती है। रोगी वृक्षों के पत्ते पीले पड जाते हैं अर्तात सूखने लगते हैं। उनके अंकुर नहीं बढते हैं डालियाँ सूख जाती हैं और उनसे रस टपकने लगता है। सभी वृक्षों में दो प्रकार के व्याधियाँ (रोग) पाए जाते हैं -

1.आन्तरिक रोग - वृक्षों की रचना के आधार पर वात, पित्त एवं कफ जन्य व्याधियाँ मुख्य हैं।

2.बाह्य रोग - कीट, पतंगों के साथ ही शीत, ग्रीष्म एवं वर्षा आदि ऋतु के प्रभाव से वृक्षों में बाह्य व्याधियां होती हैं।

वृक्षों को विभिन्न रोगों से बचाने के लिए उचित उपचार और पौधों की सुरक्षा का प्रावधान किया गया है -

पल्लवप्रसवोत्साहानां व्याधीनामाश्रमस्य च। रक्षार्थं सिद्धिकामानां प्रतिषेधो विधीयते॥ (वृक्षायुर्वेद)

इन श्लोकों में वृक्षों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए पर्यावरणीय और जैविक उपायों पर जोर दिया गया है। श्रीफलं वातलं वातात् शीतलं च बृहस्पतेः। चन्दनं च जलं चैव ह्लादयेदभिषेचने॥ (वृक्षायुर्वेद)

वृक्षों की सिंचाई के समय ठंडे जल, चन्दन, और औषधियों के उपयोग से उन्हें शीतलता और जीवन मिलता है। मिट्टी हटाकर नई मिट्टी भर दें और वृक्ष को दूध मिश्रित जल से सिञ्चित करें इससे वह वृक्ष पुनः हरा-भरा हो जाएगा।

लक्षण एवं उपचार-यह चिकित्सा विज्ञान परम उपयोगी यशवर्द्धक, आयुरक्षक तथा पौष्टिक है। चिकित्साशास्त्र का प्रमुख लक्ष्य है रोग निवारण। प्राचीन काल में रोग निवारण से अधिक ध्यान रोग न हो इस पर था। प्राचीन वैदिक संहिता में मानव जीवन के दीर्घायु के लिए लता-वन-वनस्पति-वृक्षादि का महत्व प्रतिपादित है।

वृक्षायुर्वेद की उपयोगिता-पर्यावरण की सुरक्षा हेतु वृक्ष सम्पत्ति की अनिवार्यता बहुत आवश्यक है। वैदिक ऋषियों ने भूमि में सन्तुलन स्थापित करने के लिये वृक्षारोपण करने पर जोर दिया है। वृक्षों में भी कुछ देव वृक्ष, कुछ याज्ञिक, औषधीय आदि वृक्षों का वर्गीकरण देखा गया है। शुक्रनीति में चौंसठ कलाओं के अंतर्गत वृक्षायुर्वेद हेतु वृक्षादिप्रसवारोपपालनादिकृतिः शब्द के द्वारा पेड़-पौधों की देखभाल, रोपाई, सिंचाई का ज्ञान आदि के रूप में व्यवहार किया गया है।

पर्यावरण का संकट और वृक्षायुर्वेद- पर्यावरणीय संकट वर्तमान समय में वैश्विक स्तर पर एक गंभीर समस्या बन चुका है। वनस्पति और वृक्षों की घटती संख्या ने पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव डाला है, जिससे जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। वृक्षायुर्वेद पर्यावर्णीय संकट के लिए अनेक प्रकार से लाभप्रद है - * भूमि और जलवायु के अनुसार वृक्षों का चयन * बीज चयन और समय * प्राकृतिक उपचार विधियाँ * वनों का संरक्षण एवं पुनर्वनीकरण * वृक्षों के लिए जल प्रबंधन एवं जल संचयन

वर्तमान समय में पर्यावरणीय संकट का समाधान अत्यंत महत्वपूर्ण है, और इसके लिए प्राचीन भारतीय ज्ञान, विशेषकर वृक्षायुर्वेद, अत्यधिक उपयोगी साबित हो सकता है। वृक्षों की घटती संख्या ने जलवायु परिवर्तन, जैवविविधता की हानि और पारिस्थितिकी तंत्र के असंतुलन जैसी समस्याएँ उत्पन्न की हैं। वृक्षायुर्वेद के अनुसार वृक्षारोपण, वनों की रक्षा, और प्राकृतिक उपचार के तरीकों का पालन करके इन समस्याओं का समाधान संभव है। आधुनिक तकनीकों के साथ वृक्षायुर्वेद के सिद्धांतों का मेल करके हम पर्यावरण की सुरक्षा और पुनर्स्थापना के लिए एक स्थायी और प्रभावी समाधान पा सकते हैं।

निष्कर्ष-ज्योतिषशास्त्र में वृक्षों के रोपण, उन वृक्षों के रोग एवं निदान, वृक्षों को किस क्रम से लगाना चाहिए तथा वृक्षों को गृह के कौन-कौन से भाग (दिशा) में लगाना शुभ एवं अशुभ होता है। इस विषय पर अर्थात वृक्षायुर्वेद पर समस्त संहिता आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में बहुत ही सुन्दर रूप में प्रतिपादित किया है। वृक्ष इस संसार को नाना प्रकार के कष्टों, आपदाओं से बचाते हैं इसीलिए इन्हें इस संसार का मूलरक्षक भी कहा जाता है। यदि वृक्षों की उचित रूप से देखभाल की जाए तो वे अपनी छाया, पुष्प और फलों के माध्यम से हमारे लिए धर्म, अर्थ और मोक्ष की साधना में अत्यन्त सहायक होते हैं।

* वृक्षों पर तिल की खली और विडंग का आलेपन करना चाहिए ये उन वृक्षों को कीट से सुरक्षित रखते हैं। * वृक्षों के लिए दूध, पानी और कुणप जल आदि का प्रयोग करते रहना चाहिए। * वृक्षों को आवश्यकता अनुसार घृत कि धूप देकर उपचारित करना

इस उपायों से वृक्ष हमेशा रोग मुक्त एवं सुन्दर, स्वादिष्ट फूल और फलों से युक्त रहते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

कृषि श्रम कानून: कृषि श्रमिकों के लिए कानूनी सुरक्षा, मजदूरी कानून और खेती के क्षेत्र में काम करने की स्थितियां

आशीष कुमार (सहायक प्रोफ़ेसर) APEX विधि विभाग, जयपुर, APEX UNIVERSITY, (जयपुर राजस्थान)

प्रस्तावना: कृषि क्षेत्र भारत की अर्थव्यवस्था का आधार है। यह क्षेत्र न केवल देश की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करता है, बल्कि लाखों लोगों को रोजगार भी प्रदान करता है। हालांकि, इस क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों की स्थिति अक्सर उपेक्षित रहती है। उन्हें उचित कानूनी सुरक्षा, बेहतर मजदूरी और सुरक्षित कार्यस्थल की आवश्यकता है। इसलिए, कृषि श्रम कानून का निर्माण और कार्यान्वयन अत्यंत आवश्यक हो जाता है। यह कानून न केवल श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करता है, बल्कि उन्हें सम्मानजनक जीवन जीने का अवसर भी प्रदान करता है। इस लेख में हम विस्तार से चर्चा करेंगे कि कैसे ये कानून कृषि श्रमिकों के हित में हैं, उनके अधिकारों की रक्षा करते हैं, और खेती के क्षेत्र में काम करने की परिस्थितियों को बेहतर बनाते हैं।

कृषि श्रमिकों की वर्तमान स्थिति: सबसे पहले, हमें यह समझना चाहिए कि भारत में कृषि श्रमिकों की संख्या कितनी है। आंकड़ों के अनुसार, देश में लगभग 50 मिलियन से अधिक लोग कृषि श्रमिक के रूप में कार्यरत हैं। इनमें से अधिकांश लोग असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं, जहां उन्हें उचित मजदूरी, सामाजिक सुरक्षा और कार्यस्थल सुरक्षा जैसी सुविधाएं नहीं मिल पाती हैं। इन श्रमिकों का जीवन बहुत ही कठिन होता है। उन्हें अक्सर न्यूनतम मजदूरी से भी कम मजदूरी मिलती है। इसके अलावा, उन्हें समय पर वेतन नहीं मिलता, और उनके पास स्वास्थ्य एवं शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाओं का अभाव रहता है। इन सब कारणों से, कृषि श्रमिकों का जीवन संघर्षपूर्ण बन जाता है। इसलिए, सरकार ने इनकी सुरक्षा हेतु विभिन्न कानून बनाए हैं, जिनमें से प्रमुख हैं कृषि श्रम कानून। इन कानूनों का उद्देश्य है कि श्रमिकों को उनके अधिकारों का संरक्षण मिले, उन्हें सम्मानजनक जीवन जीने का अवसर मिले, और खेती के क्षेत्र में काम करने की स्थितियां सुधरें।

कृषि श्रम कानून का महत्व: कृषि श्रम कानून का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि यह श्रमिकों को कानूनी सुरक्षा प्रदान करता है। यह कानून सुनिश्चित करता है कि श्रमिकों को उचित मजदूरी मिले, कार्यस्थल सुरक्षित हो, और उन्हें सामाजिक सुरक्षा का लाभ मिले। इसके अलावा, यह कानून श्रमिकों के शोषण को रोकने में भी मदद करता है। यदि कोई नियोक्ता श्रमिकों का शोषण करता है, तो कानून के तहत उसके खिलाफ कार्रवाई की जा सकती है। इससे न केवल श्रमिकों का जीवन बेहतर होता है, बल्कि खेती के क्षेत्र में स्थिरता और उत्पादकता भी बढ़ती है। इसके साथ ही, यह कानून श्रमिकों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक बनाता है। उन्हें पता चलता है कि उनके पास कौन-कौन से अधिकार हैं, और वे किस तरह से अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं। इस प्रकार, कृषि श्रम कानून का प्रभाव न केवल श्रमिकों के जीवन में सुधार लाता है, बल्कि पूरे कृषि क्षेत्र की समृद्धि में भी सहायक होता है।

कानूनी सुरक्षा: श्रमिकों का अधिकार-कृषि श्रमिकों को कानूनी सुरक्षा प्रदान करना अत्यंत आवश्यक है। यह सुरक्षा उन्हें शोषण से बचाती है और उनके जीवन को बेहतर बनाती है। सबसे पहले, मजदूरी कानून के तहत, श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी का अधिकार प्राप्त है। सरकार ने यह सुनिश्चित किया है कि हर श्रमिक को उसकी मेहनत का उचित मूल्य मिले। इसके अलावा, कार्यस्थल पर सुरक्षा नियम भी लागू होते हैं। इन नियमों का पालन न करने वाले नियोक्ताओं के खिलाफ कड़ी कार्रवाई की जाती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई खेत मजदूर असुरक्षित वातावरण में काम करता है, तो उसके खिलाफ कानूनी कार्रवाई की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का लाभ भी मिलता है। इनमें पेंशन, स्वास्थ्य बीमा, और दुर्घटना बीमा शामिल हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य है कि श्रमिकों को जीवन के हर चरण में सुरक्षा मिले। इन कानूनों का पालन सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने निरीक्षण तंत्र भी मजबूत किया है। यदि कोई उल्लंघन करता है, तो उसके खिलाफ सख्त कार्रवाई की जाती है। इस तरह, कानूनी सुरक्षा श्रमिकों को उनके अधिकारों का संरक्षण प्रदान करती है और उन्हें शोषण से बचाती है।

मजदूरी कानून और उसकी भूमिका: मजदूरी कानून कृषि श्रमिकों के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह कानून सुनिश्चित करता है कि श्रमिकों को उनकी मेहनत का उचित मूल्य मिले। भारत में, न्यूनतम मजदूरी कानून लागू है, जो हर राज्य में अलग-अलग हो सकता है। यह कानून यह भी सुनिश्चित करता है कि मजदूरी समय पर दी जाए। यदि कोई नियोक्ता मजदूरी का भुगतान नहीं करता है, तो श्रमिक कानूनी कार्रवाई कर सकते हैं। इसके अलावा, मजदूरी में किसी भी तरह की कटौती या धोखाधड़ी पर रोक लगाई गई है। मजदूरी कानून का उल्लंघन करने वाले नियोक्ताओं के खिलाफ सख्त कार्रवाई की जाती है। इसके साथ ही, सरकार ने मजदूरी की गणना के लिए मानक तय किए हैं, ताकि मजदूरों को उनके काम का उचित मूल्य मिले। इन नियमों का पालन सुनिश्चित करने के लिए निरीक्षण और जांच का तंत्र भी मजबूत किया गया है। यदि कोई शिकायत दर्ज कराई जाती है, तो तुरंत कार्रवाई की जाती है। इस तरह, मजदूरी कानून न केवल श्रमिकों के जीवन को बेहतर बनाता है, बल्कि उन्हें आर्थिक सुरक्षा भी प्रदान करता है। यह कानून खेती के क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों के जीवन स्तर को सुधारने में मदद करता है।

खेती के क्षेत्र में काम करने की स्थितियां: खेती के क्षेत्र में काम करने की स्थितियां अक्सर बहुत ही कठिन होती हैं। श्रमिकों को अक्सर असुरक्षित कार्यस्थल, खराब स्वास्थ्य सुविधाएं, और अनियमित कार्य घंटे का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा, उन्हें गर्मी, बरसात, और अन्य प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। इन परिस्थितियों में काम करना न केवल शारीरिक रूप से कठिन होता है, बल्कि मानसिक रूप से भी तनावपूर्ण होता है। फिर भी, सरकार ने इन स्थितियों को सुधारने के लिए कई कदम उठाए हैं। उदाहरण के लिए, कार्यस्थल पर सुरक्षा नियम लागू किए गए हैं, ताकि श्रमिक सुरक्षित रह सकें। इसके अलावा, स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रावधान भी किया गया है। श्रमिकों को समय-समय पर स्वास्थ्य जांच और उपचार की सुविधा मिलती है। साथ ही, उन्हें उचित आराम और विश्राम का भी अधिकार है। इसके अतिरिक्त, सरकार ने खेती के क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम भी शुरू किए हैं, ताकि वे नई तकनीकों और बेहतर कार्यशैली को अपना सकें। इन प्रयासों का उद्देश्य है कि खेती के क्षेत्र में काम करने की स्थितियों को बेहतर बनाया जाए और श्रमिकों का जीवन स्तर सुधरे। इन सुधारों से न केवल श्रमिकों का जीवन आसान होता है, बल्कि कृषि क्षेत्र की उत्पादकता भी बढ़ती है।

सामाजिक सुरक्षा और सहायता योजनाएं: कृषि श्रमिकों के जीवन में सामाजिक सुरक्षा अत्यंत आवश्यक है। उन्हें बीमारियों, दुर्घटनाओं, और वृद्धावस्था के समय सहायता मिलनी चाहिए। इस उद्देश्य से, सरकार ने कई योजनाएं शुरू की हैं। इनमें से प्रमुख हैं, स्वास्थ्य बीमा योजना, पेंशन योजना, और दुर्घटना बीमा। इन योजनाओं का लाभ लेने के लिए श्रमिकों को पंजीकरण कराना होता है। इसके बाद, उन्हें समय-समय पर वित्तीय सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई श्रमिक बीमार पड़ता है, तो उसे मुफ्त या सस्ती चिकित्सा सुविधा मिलती है। यदि कोई दुर्घटना होती है, तो उसे मुआवजा दिया जाता है। वृद्धावस्था में, पेंशन योजना से उसकी आर्थिक स्थिति मजबूत होती है। इसके अलावा, सरकार ने सामाजिक सुरक्षा के तहत शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रम भी शुरू किए हैं।



शीतला कृषि सेवा केन्द्र
बंटी सिंह गुर्जर (बामौर वाले)
99267-31867, 83055-69923
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता


हमारे यहां धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयां उचित मूल्य पर मिलती है।
पता: पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा ग्वालियर (म.प्र.)
01/205-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

आधुनिक कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं सटीक कृषि की भूमिका: सतत फसल उत्पादन की दिशा में एक नवीन दृष्टिकोण

डॉ. संगीता चौधरी, डॉ. अनिल जाखड़
विद्या वाचस्पति शस्य विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (राजस्थान)- 303329

सारांश-वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों की कमी, उत्पादन लागत में वृद्धि, मृदा स्वास्थ्य में गिरावट तथा खाद्य सुरक्षा जैसी अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। इन चुनौतियों के समाधान के लिए कृषि उत्पादन प्रणाली में आधुनिक तकनीकों का समावेश आवश्यक हो गया है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं सटीक कृषि ऐसी उभरती हुई तकनीकें हैं, जो फसल उत्पादन को अधिक कुशल, लाभकारी एवं पर्यावरण-अनुकूल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के अंतर्गत मशीन लर्निंग, डीप लर्निंग, कंप्यूटर विजन तथा डेटा विश्लेषण जैसी तकनीकों का उपयोग करके फसलों की वृद्धि, मृदा की स्थिति, जल की आवश्यकता, खरपतवार, कीट एवं रोगों की पहचान और उपज का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। दूसरी ओर, सटीक कृषि के माध्यम से खेत में स्थान-विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार जल, उर्वरक एवं अन्य कृषि निवेशों का प्रबंधन किया जाता है। उपग्रह चित्रों, ड्रोन, सेंसर, भौगोलिक सूचना प्रणाली तथा इंटरनेट ऑफ थिंग्स के एकीकरण से कृषि प्रबंधन संबंधी निर्णय अधिक सटीक बनाए जा सकते हैं। भारत में छोटे एवं सीमांत किसानों, सीमित तकनीकी संसाधनों और डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण इन तकनीकों को अपनाने में कुछ बाधाएँ भी हैं। प्रस्तुत लेख में आधुनिक कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं सटीक कृषि की प्रमुख उपयोगिताओं, संभावनाओं, चुनौतियों तथा सतत कृषि विकास में उनकी भूमिका की समीक्षा की गई है।

प्रमुख शब्द- कृत्रिम बुद्धिमत्ता, सटीक कृषि, मशीन लर्निंग, स्मार्ट कृषि, डिजिटल कृषि, संसाधन उपयोग दक्षता, सतत फसल उत्पादन।

1. **प्रस्तावना**-कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था तथा ग्रामीण आजीविका का एक महत्वपूर्ण आधार है। बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना वर्तमान कृषि की प्रमुख आवश्यकता है। पारंपरिक कृषि पद्धतियों में कई बार पूरे खेत में समान मात्रा में उर्वरक, सिंचाई जल एवं अन्य कृषि निवेशों का उपयोग किया जाता है, जबकि एक ही खेत में मृदा उर्वरता, नमी, पोषक तत्वों की उपलब्धता और फसल वृद्धि में पर्याप्त भिन्नता हो सकती है। इस असमानता के कारण कृषि निवेशों का अनुकूल उपयोग नहीं हो पाता और उत्पादन लागत बढ़ सकती है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के विकास ने कृषि प्रबंधन को अधिक वैज्ञानिक एवं डेटा-आधारित बनाने के नए अवसर प्रदान किए हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता ऐसी तकनीक है, जिसके माध्यम से कंप्यूटर प्रणालियाँ उपलब्ध आँकड़ों से पैटर्न सीखकर वर्गीकरण, पूर्वानुमान और निर्णय लेने में सहायता कर सकती हैं। सटीक कृषि इन तकनीकों तथा अन्य डिजिटल साधनों का उपयोग करके खेत की वास्तविक आवश्यकता के अनुसार प्रबंधन संबंधी निर्णय लेने पर केंद्रित है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, सेंसर, रिमोट सेंसिंग, ड्रोन और स्वचालित उपकरणों का संयुक्त उपयोग फसल उत्पादन की निगरानी, कृषि निवेशों के अनुकूल उपयोग तथा जोखिम प्रबंधन में सहायक हो सकता है। इसलिए इन तकनीकों को कृषि विज्ञान के सिद्धांतों के साथ एकीकृत करना भविष्य की टिकाऊ कृषि के लिए महत्वपूर्ण है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता- कृत्रिम बुद्धिमत्ता कंप्यूटर विज्ञान की एक शाखा है, जिसके अंतर्गत ऐसी प्रणालियाँ विकसित की जाती हैं जो डेटा का विश्लेषण करके समस्याओं को पहचानने, संभावित परिणामों का अनुमान लगाने तथा निर्णय लेने में सहायता करती हैं। कृषि में इसका उपयोग फसल की स्थिति का आकलन करने, रोगों की पहचान, उपज का पूर्वानुमान, सिंचाई प्रबंधन और कृषि संसाधनों के कुशल उपयोग में किया जा सकता है। मशीन लर्निंग कृत्रिम बुद्धिमत्ता की एक प्रमुख तकनीक है, जिसमें कंप्यूटर उपलब्ध आँकड़ों से संबंधों एवं पैटर्न को सीखता है। डीप लर्निंग बड़े और जटिल डेटा, विशेषकर चित्रों, के विश्लेषण में उपयोगी है। कंप्यूटर विजन के माध्यम से पत्तियों, पौधों और खेतों के चित्रों का विश्लेषण करके रोग, खरपतवार या अन्य असामान्य स्थितियों की पहचान की जा सकती है।

सटीक कृषि-सटीक कृषि एक ऐसी वैज्ञानिक कृषि प्रबंधन प्रणाली है, जिसमें खेत के विभिन्न भागों की आवश्यकताओं, स्थानिक भिन्नताओं तथा समय के अनुसार कृषि क्रियाओं का निर्धारण किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य सही कृषि निवेश को सही स्थान, सही समय और उपयुक्त मात्रा में उपलब्ध कराना है। सटीक कृषि में ग्लोबल नेविगेशन सैटेलाइट सिस्टम (GNSS), भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS), रिमोट सेंसिंग, मृदा एवं नमी सेंसर, ड्रोन तथा परिवर्तनशील दर तकनीक (Variable Rate Technology—VRT) का उपयोग किया जा सकता है। इन तकनीकों की सहायता से खेत की स्थिति का आकलन कर सिंचाई, उर्वरक प्रयोग और फसल सुरक्षा के निर्णय अधिक आवश्यकतानुसार लिए जा सकते हैं।

आधुनिक कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं सटीक कृषि के प्रमुख अनुप्रयोग

मृदा स्वास्थ्य एवं पोषक तत्व प्रबंधन-मृदा की उर्वरता फसल उत्पादन का प्रमुख निर्धारक है। मृदा परीक्षण, सेंसर से प्राप्त आँकड़ों, उपग्रह चित्रों तथा पूर्ववर्ती फसल अभिलेखों का संयुक्त विश्लेषण करके खेत में पोषक तत्वों की उपलब्धता और संभावित कमी का आकलन किया जा सकता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित मॉडल इन आँकड़ों के आधार पर पोषक तत्व प्रबंधन संबंधी निर्णय लेने में सहायता कर सकते हैं। सटीक कृषि के अंतर्गत खेत के अलग-अलग भागों में उर्वरकों की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तनशील दर से उनका प्रयोग किया जा सकता है। इससे पोषक तत्वों के असंतुलित उपयोग और अनावश्यक निवेश को कम करने की संभावना रहती है। हालांकि, AI मॉडल की भविष्यवाणियों को स्थानीय मृदा परीक्षण, फसल की वास्तविक आवश्यकता तथा कृषि विशेषज्ञों की सलाह से सत्यापित करना आवश्यक है।

सटीक सिंचाई एवं जल प्रबंधन-जल की उपलब्धता कृषि उत्पादन को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। अत्यधिक सिंचाई से जल की बर्बादी, पोषक तत्वों का नीचे की ओर रिसाव तथा कुछ परिस्थितियों में मृदा लवणता जैसी समस्याएँ बढ़ सकती हैं। इसके विपरीत, अपर्याप्त सिंचाई से पौधों की वृद्धि और उपज प्रभावित हो सकती है। मृदा नमी सेंसर, मौसम पूर्वानुमान, वाष्पोत्सर्जन संबंधी आँकड़ों और फसल की अवस्था का विश्लेषण करके सिंचाई की आवश्यकता का अनुमान लगाया जा सकता है। ढ आधारित निर्णय सहायता प्रणालियाँ सिंचाई के उचित समय और संभावित मात्रा के निर्धारण में सहायक हो सकती हैं। ड्रिप सिंचाई एवं स्वचालित सिंचाई प्रणालियों के साथ इनका एकीकरण जल उपयोग दक्षता बढ़ाने में उपयोगी हो सकता है। विशेष रूप से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में, जहाँ सिंचाई जल सीमित है, सटीक जल प्रबंधन कृषि की स्थिरता में योगदान दे सकता है। फिर भी, इसकी प्रभावशीलता सेंसर की गुणवत्ता, मौसम संबंधी आँकड़ों की विश्वसनीयता और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप मॉडल के विकास पर निर्भर करती है।

कीट एवं रोगों की शीघ्र पहचान-कीट एवं रोग फसल उत्पादन में होने वाली हानि के प्रमुख कारणों में शामिल हैं। पारंपरिक निरीक्षण में रोगों की पहचान कई बार तब होती है, जब उनके लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं। इसके विपरीत, कंप्यूटर विजन और डीप लर्निंग आधारित प्रणालियाँ पत्तियों एवं पौधों के चित्रों का विश्लेषण करके संभावित रोगों या कीटों से प्रभावित पौधों की पहचान में सहायता कर सकती हैं। ड्रोन तथा उपग्रह चित्रों से प्राप्त जानकारी के माध्यम से खेत में प्रभावित क्षेत्रों की निगरानी की जा सकती है। इससे समय पर निरीक्षण और आवश्यकतानुसार प्रबंधन संबंधी कार्रवाई संभव हो सकती है। हालांकि, चित्र-आधारित पहचान प्रकाश, कैमरे की गुणवत्ता, फसल की अवस्था और समान लक्षण उत्पन्न करने वाले अन्य कारणों से प्रभावित हो सकती है। इसलिए संदिग्ध रोग की पुष्टि विशेषज्ञ निरीक्षण या आवश्यक परीक्षणों से की जानी चाहिए।



12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

रेबीज़: एक घातक लेकिन रोकथाम योग्य जूनोटिक रोग

डॉ. अमित कुमार सहायक प्राध्यापक, पशु चिकित्सा शरीर क्रिया विज्ञान एवं जैव रसायन विभाग, महाला पशु चिकित्सा महाविद्यालय, रींगस, सीकर, (राजस्थान)

डॉ. सुधांशु कुमार सहायक प्राध्यापक, पशु चिकित्सा औषधि विभाग, महाला पशु चिकित्सा महाविद्यालय, रींगस, सीकर, राजस्थान

डॉ. जिग्नेश एच. वनसोला सहायक प्राध्यापक, पशु पोषण विभाग, महाला पशु चिकित्सा महाविद्यालय, रींगस, सीकर, राजस्थान

डॉ. संजू मंडल सहायक प्राध्यापक, पशु चिकित्सा शरीर क्रिया विज्ञान एवं जैव रसायन विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर, -482001

डॉ. अनिल गट्टानी प्राध्यापक, पशु चिकित्सा शरीर क्रिया विज्ञान एवं जैव रसायन विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर, -482001

डॉ. एक्तियार हुसैन अहमद एम.वी.एससी., पशु शल्य चिकित्सा एवं विकिरण विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

डॉ. संकल्प साहू पीएच.डी. स्कॉलर, पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय, खानापारा, असम -781022

परिचय: रेबीज़ मानव जाति को ज्ञात सबसे पुराने और सबसे भयावह जूनोटिक रोगों में से एक है। यह एक विषाणुजनित रोग है, जो केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करता है और नैदानिक रोग विकसित होने के बाद गंभीर, क्रमशः बढ़ने वाली तथा अंततः घातक एन्सेफेलोमायलाइटिस का कारण बनता है। यह रोग लाइसा वायरस वंश के विषाणुओं के कारण होता है।

यद्यपि नैदानिक रेबीज़ विकसित होने के बाद यह रोग लगभग हमेशा घातक होता है, लेकिन इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उचित एवं सही समय पर किए गए उपायों से रेबीज़ से होने वाली मृत्यु को काफी हद तक रोका जा सकता है। रेबीज़ आज भी एक महत्वपूर्ण जनस्वास्थ्य समस्या है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ कुत्तों के माध्यम से इसका संक्रमण लगातार होता रहता है। रेबीज़ केवल मनुष्यों को प्रभावित करने वाला रोग नहीं है। अनेक स्तनधारी प्रजातियाँ इस संक्रमण के प्रति संवेदनशील होती हैं। इसलिए यह पशु चिकित्सकों, पशु मालिकों, वन्यजीव विशेषज्ञों, पशुपालकों और आम जनता के लिए महत्वपूर्ण चिंता का विषय है। रेबीज़ की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि इतनी गंभीर और घातक बीमारी को अक्सर अपेक्षाकृत सरल उपायों से रोका जा सकता है–जैसे कुत्तों का नियमित टीकाकरण, जोखिमपूर्ण पशु-संपर्क से बचना, संभावित संपर्क के तुरंत बाद घाव को धोना और समय पर पोस्ट-एक्सपोज़र प्रोफाइलेक्सिस प्राप्त करना।

रेबीज़ को समझना: रेबीज़ लाइसा वायरस वंश के विषाणुओं के कारण होने वाला रोग है। यह मुख्य रूप से तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करता है। संक्रमित पशु के काटने के बाद विषाणु घाव के माध्यम से शरीर में प्रवेश कर सकता है और तंत्रिकाओं के साथ आगे बढ़ते हुए मस्तिष्क तक पहुँच सकता है। यदि समय रहते प्रभावी रोकथाम नहीं की जाती है, तो यह घातक एन्सेफेलोमायलाइटिस उत्पन्न कर सकता है।इस कारण रेबीज़ कई सामान्य संक्रामक रोगों से अलग है। एक बार नैदानिक तंत्रिका संबंधी रोग विकसित हो जाने के बाद उपचार के विकल्प अत्यंत सीमित हो जाते हैं और कोई भी विशिष्ट एंटीवायरल उपचार प्रभावी रूप से सिद्ध नहीं हुआ है। इसलिए किसी व्यक्ति के जीवन को बचाने का सबसे महत्वपूर्ण अवसर नैदानिक रोग विकसित होने से पहले होता है। इसी कारण जागरूकता अत्यंत महत्वपूर्ण है। किसी व्यक्ति को किसी पशु द्वारा काटे जाने के बाद शुरुआत में वह पूरी तरह सामान्य महसूस कर सकता है और घाव भी छोटा दिखाई दे सकता है।

संक्रमण के स्रोत के रूप में पशु: रेबीज़ कई स्तनधारी पशुओं द्वारा फैल सकता है। हालांकि, मानव रेबीज़ मृत्यु का प्रमुख स्रोत कुत्ते हैं। विश्व स्तर पर मानव रेबीज़ से होने वाली लगभग 99% मौतों के लिए कैनाइन रेबीज़ वायरस जिम्मेदार माना जाता है। इसके अलावा विभिन्न घरेलू और जंगली स्तनधारी भी संक्रमण के संभावित स्रोत हो सकते हैं। संक्रमण का सामान्य मार्ग संक्रमित पशु की लार है। काटना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि संक्रमित लार सीधे क्षतिग्रस्त ऊतक में पहुँच सकती है। खरोंच या संक्रमित लार का श्लेष्म झिल्ली (mucous membrane) के संपर्क में आना भी ऐसा संभावित एक्सपोज़र हो सकता है जिसके लिए चिकित्सकीय मूल्यांकन आवश्यक हो। इसलिए रेबीज़ की रोकथाम में कुत्तों की महत्वपूर्ण भूमिका है। कुत्तों का टीकाकरण केवल पशु स्वास्थ्य से संबंधित उपाय नहीं है, बल्कि यह एक महत्वपूर्ण जनस्वास्थ्य उपाय भी है।

रेबीज़ इतना खतरनाक क्यों है?: रेबीज़ की गंभीरता मुख्य रूप से इसके तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव के कारण होती है। एक बार संक्रमण नैदानिक एन्सेफेलोमायलाइटिस की अवस्था में पहुँच जाने के बाद गंभीर तंत्रिका संबंधी लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। रोग के प्रारंभिक लक्षणों को पहचानना कठिन हो सकता है क्योंकि शुरुआत में लक्षण सामान्य और अस्पष्ट हो सकते हैं। इसलिए किसी संभावित संक्रमित स्तनधारी के काटने या असामान्य संपर्क का इतिहास चिकित्सकीय संदेह उत्पन्न करने में अत्यंत महत्वपूर्ण हो सकता है। नैदानिक रेबीज़ विभिन्न रूपों में दिखाई दे सकता है। उत्तेजित (फ्यूरियस) रेबीज़ में गंभीर उत्तेजना और तंत्रिका संबंधी लक्षण दिखाई दे सकते हैं।

संभावित रेबीज़ संपर्क को पहचानना: लोग अक्सर रेबीज़ के जोखिम को केवल गंभीर कुत्ते के काटने से जोड़ते हैं। यह धारणा खतरनाक हो सकती है, क्योंकि संभावित जोखिम खरोंच या संक्रमित लार के श्लेष्म झिल्ली के संपर्क में आने से भी उत्पन्न हो सकता है।इसलिए किसी व्यक्ति को किसी संभावित संक्रमित स्तनधारी द्वारा काटे जाने या अन्य प्रकार के संभावित संपर्क की स्थिति में तुरंत चिकित्सकीय सलाह लेनी चाहिए।

जोखिम का आकलन करते समय निम्नलिखित कारकों पर विचार किया जा सकता है- * संपर्क में आए पशु की प्रजाति * पशु के संक्रमित होने की संभावित संभावना * संपर्क का प्रकार और स्थान * संक्रमित लार के क्षतिग्रस्त ऊतक या श्लेष्म झिल्ली में पहुँचने की संभावना * व्यक्ति का पूर्व रेबीज़ टीकाकरण इतिहास

काटने के बाद पहला कदम: संभावित रेबीज़ संपर्क के बाद सबसे सरल और महत्वपूर्ण उपायों में से एक है घाव की तत्काल और अच्छी तरह सफाई करना। प्रभावित स्थान को साबुन या डिटर्जेंट तथा पर्याप्त मात्रा में पानी से अच्छी तरह धोना चाहिए। इसके बाद उपयुक्त एंटीसेप्टिक का प्रयोग किया जा सकता है। यह प्रक्रिया यथाशीघ्र की जानी चाहिए और इसके लिए अस्पताल पहुँचने तक इंतजार नहीं करना चाहिए। हालांकि, केवल घाव को धोना पर्याप्त नहीं है।

संपर्क के बाद बचाव/रोकथाम उपचार: जीवन बचाने का अवसर: संक्रमण के प्रकार और व्यक्ति के पूर्व टीकाकरण इतिहास के आधार पर रेबीज़ वैक्सीन तथा आवश्यकता होने पर रेबीज़ इम्यूनोग्लोबुलिन (RIG) शामिल हो सकते हैं।रेबीज़ वैक्सीन व्यक्ति की प्रतिरक्षा प्रणाली को वायरस के विरुद्ध सुरक्षा विकसित करने के लिए प्रेरित करती है। दूसरी ओर, आवश्यकता होने पर RIG उस समय तक संक्रमण स्थल पर निष्क्रिय प्रतिरक्षा प्रदान करता है, जब तक कि वैक्सीन से पर्याप्त प्रतिरक्षा विकसित नहीं हो जाती। जिन व्यक्तियों को पहले से रेबीज़ का पूर्ण या उपयुक्त टीकाकरण प्राप्त हो चुका है, उनके लिए संक्रमण के बाद प्रबंधन अलग हो सकता है। पूर्व टीकाकरण प्राप्त व्यक्तियों में सामान्यतः रेबीज़ इम्यूनोग्लोबुलिन की आवश्यकता नहीं होती, लेकिन संक्रमण के बाद आवश्यक बूस्टर वैक्सीन महत्वपूर्ण होती है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए संपर्क के बाद उपचार की उचित प्रक्रिया का निर्धारण किसी योग्य स्वास्थ्यकर्मी द्वारा संपर्क की श्रेणी, पूर्व टीकाकरण की जानकारी तथा लागू राष्ट्रीय दिशानिर्देशों के आधार पर किया जाना चाहिए।



ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
राजस्थान

पंचगव्य : जैविक खेती का अमृत और टिकाऊ कृषि की नई राह

अनिल जाखड़, संगीता चौधरी
विद्यावाचस्पति, सस्य विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर (राजस्थान)

प्रियंका चौधरी विद्यावाचस्पति, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

राहुल जाखड़ विद्यावाचस्पति, सस्य विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

लक्ष्मी नारायण निठारवाल स्नातकोत्तर, सस्य विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर (राजस्थान)

प्रस्तावना: भारत की कृषि परंपरा में प्रकृति, पशुधन और मिट्टी का संबंध सदैव महत्वपूर्ण रहा है। भारतीय किसान प्राचीन काल से ही गोबर, गोमूत्र, पत्तियों, फसल अवशेषों तथा अन्य स्थानीय संसाधनों का उपयोग खेतों की उर्वरता बनाए रखने के लिए करते आए हैं। वर्तमान समय में बढ़ती कृषि लागत, मृदा स्वास्थ्य में गिरावट, रासायनिक आदानों पर निर्भरता और पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता ने जैविक एवं प्राकृतिक खेती के महत्व को फिर से बढ़ाया है। ऐसे में पंचगव्य एक पारंपरिक जैविक मिश्रण के रूप में किसानों के बीच विशेष पहचान रखता है। पंचगव्य शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है. 'पंच' अर्थात पाँच और 'गव्य' अर्थात गाय से प्राप्त पदार्थ। पारंपरिक रूप से इसे गाय के गोबर, गोमूत्र, दूध, दही और घी के मिश्रण से तैयार किया जाता है। उचित परिस्थितियों में तैयार होने पर यह मिश्रण पोषक तत्वों, सूक्ष्मजीवों और किण्वन से उत्पन्न विभिन्न जैविक यौगिकों का स्रोत बन सकता है।

पंचगव्य का कृषि में महत्व: पंचगव्य की लोकप्रियता का प्रमुख कारण इसकी स्थानीय स्तर पर तैयारी की संभावना और पारंपरिक कृषि ज्ञान से जुड़ाव है। जिन किसानों के पास गोवंश उपलब्ध है, वे उचित स्वच्छता और सावधानी के साथ इसे खेत पर तैयार कर सकते हैं। इससे स्थानीय संसाधनों का उपयोग बढ़ाने और कुछ बाहरी कृषि आदानों पर निर्भरता कम करने की संभावना बनती है।

पंचगव्य का महत्व मुख्य रूप से निम्नलिखित पहलुओं से जुड़ा है- * पौधों की वृद्धि में सहायक भूमिकारू इसमें उपस्थित पोषक तत्व और जैविक यौगिक पौधों की वृद्धि को प्रभावित कर सकते हैं। *

सूक्ष्मजीवी विविधता-किण्वित मिश्रण में विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीव पाए जाते हैं, हालांकि उनकी संख्या और उपयोगिता तैयारी की परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

मृदा स्वास्थ्य के प्रबंधन में योगदान- जैविक खेती में पंचगव्य का उपयोग गोबर की खाद, कम्पोस्ट और अन्य जैविक आदानों के साथ किया जा सकता है।

* **स्थानीय संसाधनों का उपयोग:** गोवंश आधारित पदार्थों और उपलब्ध कृषि संसाधनों के उपयोग को प्रोत्साहन मिलता है।

टिकाऊ कृषि की दिशा में पहल- संतुलित पोषण प्रबंधन और अन्य कृषि पद्धतियों के साथ इसका समन्वित उपयोग टिकाऊ खेती के प्रयासों का हिस्सा बन सकता है।

पंचगव्य बनाने की विधि: पंचगव्य तैयार करने के लिए स्वच्छ सामग्री, पर्याप्त वायु-संचार वाला पात्र और नियमित देखभाल आवश्यक है।

आवश्यक सामग्री

1. मुख्य पाँच सामग्री

क्र. सं.	सामग्री	मात्रा
1.	गाय का ताजा गोबर	5 किलोग्राम
2.	गाय का गोमूत्र	3 लीटर
3.	गाय का दूध	2 लीटर
4.	गाय का दही	2 लीटर
5.	गाय का घी	1 लीटर

2. अतिरिक्त सामग्री

क्र. सं.	सामग्री	मात्रा
1.	गुड़	500 ग्राम
2.	नारियल पानी	3 लीटर
3.	पके केले	12 नग

निर्माण की प्रक्रिया

पात्र का चयन: साफ, चौड़े मुंह वाला प्लास्टिक या उपयुक्त गैर-प्रतिक्रियाशील पात्र चुनें। पात्र को सीधे धूप और दूषित जल से बचाएँ।

प्रारंभिक मिश्रण: गोबर और अन्य मूल घटकों को प्रकाशित विधि के अनुपात में अच्छी तरह मिलाएँ।

सहायक सामग्री मिलाना: चुनी गई विधि के अनुसार दूध, दही, गोमूत्र, घी तथा अन्य सामग्री मिलाएँ।

नियमित मिश्रण: मिश्रण को स्वच्छ डंडे से नियमित रूप से हिलाएँ, ताकि सामग्री समान रूप से मिश्रित रहे।

किण्वन: पात्र को छायादार, सुरक्षित और हवादार स्थान पर रखें। पात्र को मक्खियों और बाहरी गंदगी से बचाएँ, लेकिन उसे इस तरह बंद न करें कि किण्वन से उत्पन्न गैस का दबाव जमा हो जाए।

तैयारी की जाँच: सामग्री, तापमान और निर्माण विधि के अनुसार किण्वन में लगने वाला समय अलग हो सकता है।

फसलों में पंचगव्य का उपयोग: पंचगव्य का प्रयोग बीजोपचार, पौधशाला, पत्तियों पर छिड़काव अथवा कुछ प्रणालियों में मिट्टी और सिंचाई के माध्यम से किया जाता है। प्रत्येक प्रयोग के लिए उपयुक्त सांद्रता और समय का निर्धारण फसल तथा उपलब्ध वैज्ञानिक सिफारिशों के आधार पर करना चाहिए।

बीज एवं पौध उपचार: कुछ अध्ययनों में पंचगव्य के पतले घोल से बीजों अथवा पौधों के उपचार की संभावना का मूल्यांकन किया गया है। इस प्रकार का प्रयोग करते समय अंकुरण क्षमता, बीज की गुणवत्ता और फसल-विशिष्ट अनुशंसाओं को ध्यान में रखना चाहिए। अधिक सांद्रता का घोल अंकुरण या कोमल पौधों को नुकसान पहुँचा सकता है।

पत्तियों पर छिड़काव: पंचगव्य के घोल का पर्णीय छिड़काव कुछ फसलों में पौध वृद्धि, पत्तियों के विकास और उपज संबंधी लक्षणों पर प्रभाव के लिए अध्ययन किया गया है।

छिड़काव से पहले सावधानियां * पहले थोड़े पौधों पर परीक्षण करें। * केवल फसल हेतु उपयुक्त और विश्वसनीय स्रोत से अनुशंसित सांद्रता का उपयोग करें। * तेज धूप, तेज हवा और अत्यधिक गर्मी में छिड़काव से बचें। * घोल में ठोस कण हों तो उपयुक्त छनन करें, जिससे नोजल बंद होने की समस्या कम हो।

मृदा एवं पोषण प्रबंधन: पंचगव्य का उपयोग कम्पोस्ट, अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद, हरी खाद और अन्य उपयुक्त जैविक आदानों के साथ किया जा सकता है। लेकिन इसकी पोषक तत्वों की मात्रा निश्चित नहीं होती। इसलिए इसे फसल की संपूर्ण नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता पूरी करने वाला एकमात्र स्रोत मानना उचित नहीं है।

पंचगव्य और मृदा स्वास्थ्य का संबंध: मिट्टी केवल पौधों को सहारा देने वाला माध्यम नहीं है, बल्कि यह असंख्य सूक्ष्मजीवों, जैविक पदार्थों, खनिजों, जल और वायु से मिलकर बना एक जीवंत तंत्र है। स्वस्थ मिट्टी में पोषक तत्वों का चक्रण, जैविक पदार्थों का अपघटन और पौधों की जड़ों का विकास बेहतर ढंग से हो सकता है। पंचगव्य में उपस्थित सूक्ष्मजीवों और किण्वन से बने यौगिकों के कारण इसका मृदा जैविक गतिविधियों से संबंध हो सकता है। हालांकि, वास्तविक लाभ मिट्टी के प्रकार, उसमें पहले से मौजूद जैविक कार्बन, नमी, तापमान तथा अन्य प्रबंधन विधियों पर निर्भर करते हैं।

मृदा स्वास्थ्य सुधारने के लिए पंचगव्य के साथ निम्न उपाय अपनाना अधिक प्रभावी रणनीति हो सकती है। * फसल अवशेषों को जलाने के बजाय उचित तरीके से कम्पोस्ट बनाना। * गोबर की अच्छी तरह सड़ी खाद और हरी खाद का प्रयोग करना। * फसल चक्र तथा दलहनी फसलों को शामिल करना। * मिट्टी की जाँच के आधार पर पोषक तत्वों का प्रबंधन करना। * नमी संरक्षण के लिए मल्चिंग और उपयुक्त सिंचाई विधियाँ अपनाना।

राजस्थान के किसानों के लिए पंचगव्य की उपयोगिता: राजस्थान में कम वर्षा, अनियमित मानसून, उच्च तापमान और अनेक क्षेत्रों में कम जैविक कार्बन वाली मिट्टी खेती की प्रमुख चुनौतियाँ हैं। ऐसी परिस्थितियों में स्थानीय संसाधनों पर आधारित कृषि पद्धतियों का महत्व बढ़ जाता है। पंचगव्य जैसे जैविक मिश्रणों को बाजरा, मूंग, मोठ, ग्वार, सरसों तथा सब्जियों की खेती में वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर अपनाने की संभावनाएँ हैं। हालांकि, शुष्क क्षेत्रों में इसके उपयोग को सफल बनाने के लिए कुछ बातों का ध्यान रखना जरूरी है। पंचगव्य पौधों को पानी की कमी से बचाने का विकल्प नहीं है। सूखे की स्थिति में नमी संरक्षण, समय पर बुवाई और उपयुक्त किस्मों का चयन अधिक महत्वपूर्ण है। इसे अकेले फसल की सभी पोषण आवश्यकताओं को पूरा करने वाला साधन नहीं मानना चाहिए। मिट्टी की जाँच के आधार पर पोषण प्रबंधन करना आवश्यक है। किसानों को पहले छोटे क्षेत्र में इसका प्रयोग करके परिणामों का मूल्यांकन करना चाहिए। एक ही खेत में उपचारित और अनुपचारित हिस्सों की तुलना करने से स्थानीय परिस्थितियों में इसकी उपयोगिता समझने में मदद मिल सकती है। इस तरह राजस्थान के किसान पंचगव्य को अन्य उपयुक्त जैविक आदानों के साथ जोड़कर कम लागत वाली तथा संसाधन-कुशल खेती की दिशा में प्रयास कर सकते हैं।

पंचगव्य के उपयोग में सावधानियां 1. साफ पात्र और स्वच्छ पानी का उपयोग करें। 2.पशु-आधारित कच्ची सामग्री को खुले वातावरण में दूषित होने से बचाएँ। 3. मिश्रण तैयार करते समय दस्ताने पहनें और हाथों की सफाई रखें। 4. दुर्गंध, असामान्य रंग या दूषण के संकेतों वाले मिश्रण का उपयोग न करें। केवल गंध से सुरक्षा निर्धारित नहीं की जा सकती।5. सब्जियों और अन्य खाने योग्य भागों पर छिड़काव करते समय खाद्य सुरक्षा तथा कटाई-पूर्व अंतराल संबंधी लागू निर्देशों का पालन करें। 6. पंचगव्य को प्रमाणित जैव उर्वरक या रोगनाशक का स्वतः विकल्प न मानें। रोग नियंत्रण के लिए इसकी प्रभावशीलता का पर्याप्त प्रमाण और उपयुक्त अनुशंसा आवश्यक है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
नई दिल्ली

औषधीय और पोषक गुणों से भरपूर विभिन्न बहुमूल्य मशरूम

डॉ. आदित्य, डॉ. जतिंद्र के. साहू
ग्रामीण विकास और प्रौद्योगिकी केंद्र, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली (आई.आई.टी दिल्ली)

डॉ. जे.एन. भाटिया कृषि विभाग, श्री गुरु ग्रंथ साहिब विश्वविद्यालय, फतेहगढ़ साहिब, पंजाब।

मशरूम को खुम्ब, खुम्बी या कुकुरमुत्ता भी कहा जाता है। यह सामान्यतः बरसात के मौसम में गले-सड़े कार्बनिक पदार्थों पर प्राकृतिक रूप से उगता हुआ दिखाई देता है। मशरूम में क्लोरोफिल नहीं होता, इसलिए यह अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकता और भोजन के लिए मृत एवं सड़े-गले कार्बनिक पदार्थों पर निर्भर रहता है। इसी कारण इसे मृतोपजीवी जीव कहा जाता है। मशरूम की बनावट पौधों की तरह जड़, तना और पत्ती में विभाजित नहीं होती। इसकी मुख्य संरचना पतले धागे जैसे तंतुओं से बनी होती है, जिन्हें कवकतंतु या हाइफा कहा जाता है। इन तंतुओं का जाल कवकजाल या माइसीलियम कहलाता है। अनुकूल परिस्थितियों में यही कवकजाल विकसित होकर मशरूम का फलन शरीर बनाता है और बीजाणुओं का निर्माण करता है। भारत में मशरूम की जैव विविधता बहुत समृद्ध है। देश के अलग-अलग जलवायु और भौगोलिक क्षेत्रों में अनेक प्रकार के खाद्य, औषधीय और जंगली मशरूम पाए जाते हैं। कवक विज्ञान के अनुसार, भारत में मशरूम की कई प्रजातियाँ पोषण, औषधीय उपयोग और कृषि-आधारित उद्यमों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पोषण की दृष्टि से मशरूम उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, आहार फाइबर, विटामिन और खनिजों के अच्छे स्रोत हैं। इनमें वसा और कैलोरी सामान्यतः कम होती है, जबकि पोटैशियम, फॉस्फोरस, आयरन तथा बी-विटामिन जैसे पोषक तत्व पाए जाते हैं। कुछ मशरूमों में विटामिन डी, बीटा-ग्लूकेन और अन्य जैव सक्रिय यौगिक अधिक मात्रा भी पाए जाते हैं। इसलिए मशरूम संतुलित आहार का हिस्सा बन सकते हैं और बढ़ती पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने में उपयोगी हो सकते हैं।

मशरूम एक पौष्टिक, स्वादिष्ट, स्वास्थ्यवर्धक एवं औषधीय गुणों से भरपूर रोगरोधक सुपाच्य खाद्य पदार्थ है। इसमें प्रोटीन, खनिज-लवण, विटामिन जैसे पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में होने के साथ-साथ लाभकारी रेशे भी खूब मात्रा में विद्यमान होते हैं। चीन के लोग इसे महा-औषधी एवं रसायन सदृश्य मानते हैं जो जीवन में अदभुत शक्ति का संचार करने में सक्षम है। इसके विविध गुणों के कारण रोम निवासी मशरूम को ईश्वर का आहार मानते हैं। इसमें विशेष प्रकार की आकर्षक खुशबू होने के कारण लोगों द्वारा आहार के रूप में ज्यादा पसन्द किया जाता है। शुरूआती दौर में मशरूम को केवल इनकी स्वादिष्टता के कारण ही सेवन किया जाता था लेकिन औषधीय गुणों के कारण अब यह गुणकारी आहार के रूप में स्थापित हो चुकी है। दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में इस्तेमाल होने वाली पारंपरिक दवाइयों में इसे एक प्रशंसनीय स्थान भी मिला है।

आजकल परम्परागत कृषि में सब्जियों को उगाने से लेकर आकर्षक रंग-रूप तक देने में रासायनिक खाद, कीटनाशक, फफूँदनाशक या कृषि उत्पाद को जल्दी बढ़ाने वाले हार्मोन इत्यादि का प्रयोग किया जाता है जोकि मानव स्वास्थ्य के लिये हानिकारक सिद्ध होता जा रहा है। इन कृषि उत्पादों के साथ रासायनिक तत्व हमारी आहार-श्रृंखला में प्रवेश कर शरीर में पहुँचकर धीरे-धीरे रोगरोधी तन्त्र को कमजोर बनाते हैं। मशरूम उत्पादन में किसी भी प्रकार के घातक रासायनों का उपयोग नहीं किया जाता है वरन् मशरूम-आधारित आहार अन्य प्रकार की सब्जियों के अधिक गुणकारी होने के साथ-साथ यह मानवीय शरीर में बीमारियों के प्रति रोगप्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है। अतः इस सन्दर्भ में मशरूम की उपयोगिता लगातार बढ़ती जा रही है। यह पोषक गुणों से भरपूर शाकाहारी जनसंख्या के लिये महत्वपूर्ण विकल्प है। मशरूम में प्रचूर मात्रा में प्रोटीन, विटामिन, खनिज-लवण व अन्य पदार्थ अधिकांश पदार्थ सब्जियों की तुलना में अधिक पाये जाते हैं जो कि मानव जाति के लिए पौष्टिक, स्वादिष्ट व स्वास्थ्यवर्धक पाए गए हैं। इसीलिए, खाद्य एवं कृषि संगठन ने भी मशरूम को सम्पूर्ण आहार का दर्जा दिया हुआ है।

भारत में प्रमुख रूप से छह प्रकार के मशरूम की खेती की जाती है-1. सफेद बटन मशरूम 2. ऑयस्टर/ढिंगरी मशरूम 3. दूधिया मशरूम 4. पैडी स्ट्रॉ मशरूम 5. शिटाके मशरूम 6. ऋषि मशरूम

1.सफेद बटन मशरूम के औषधीय और पोषक गुण-यह विश्व में सर्वाधिक उगाया जाने वाला खाध मशरूम है लेकिन औषधीय गुणों की उपलब्धता के कारण इसका औषधीय महत्व भी है । यह उन लोगों के लिए कुछ स्वास्थ्य लाभ भी है जिन्हें मधुमेह और उत्सर्जन प्रणाली की बीमारियाँ हैं। इसमें हृदय सम्बन्धी रोगों के निदान हेतु रक्त के जमाव को रोकने के लिये लैक्टिन, कैंसर रोधी भरेटिन तथा जीवाणु रोधी हिर्सटिक अम्ल, फिनोलिक व क्यूनाँन पाया जाता है। इस में भरेटिनी नामक कैंसर रोधी तथा हिर्सटिक अम्ल नामक जीवाणुरोधी पदार्थ पाया जाता है। इसका सेवन पाचन तंत्र को दक्ष बनाता है, बीमारियों के प्रति रोग रोधी क्षमता बढ़ाता है तथा रक्त में उपस्थित कोलेस्ट्राल को कम करके हृदय रोगों को दूर करता है। यह स्वादिष्ट होने के साथ-साथ कई महत्वपूर्ण पोषक तत्वों का अच्छा स्रोत है। इसमें प्रोटीन, आहार फाइबर, विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट पाए जाते हैं। इसमें कैलोरी और वसा की मात्रा कम होने के कारण यह संतुलित आहार के लिए एक अच्छा खाद्य विकल्प है। सफेद बटन मशरूम में पोटैशियम, फॉस्फोरस, आयरन तथा बी-समूह के विटामिन जैसे पोषक तत्व पाए जाते हैं। इसमें मौजूद आहार फाइबर पाचन तंत्र को स्वस्थ रखने में सहायक होता है।

2.ढिंगरी मशरूम के औषधीय और पोषक गुण-यह विश्व में उगाये जाने वाले मशरूमों में तीसरा प्रमुख मशरूम है तथा भारत में इसका दूसरा स्थान है। इस मशरूम को खाने से शरीर में ग्लूकोज सहन करने की क्षमता बढती है जिससे मधुमेह रोगियों के उपचार में अत्यन्त लाभकारी पाया गया है। जल में घुलनशील कार्बोहाइड्रेट की उपस्थिति के कारण इसमें कैंसर रोधी गुण पाये जाते है साथ ही उत्सर्जन तन्त्र सम्बन्धी रोगों एवं कोलेस्ट्राल को कम करने में भी सहायक है। ढिंगरी मशरूम उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, आवश्यक अमीनो अम्ल, आहार रेशा, विटामिन एवं खनिज तत्वों का अच्छा स्रोत है। इसमें वसा एवं कैलोरी की मात्रा अपेक्षाकृत कम होने के कारण यह संतुलित एवं स्वास्थ्यवर्धक आहार के रूप में उपयोगी है। इसमें उपस्थित बीटा-ग्लूकेन, पॉलीसैकेराइड तथा अन्य जैवसक्रिय यौगिक प्रतिरक्षा तंत्र को मजबूत करने और शरीर में ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करने में सहायक माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त, इसमें पोटैशियम, फॉस्फोरस, आयरन तथा बी-विटामिन जैसे पोषक तत्व पाए जाते हैं, जो शरीर की सामान्य चयापचय क्रियाओं के लिए महत्वपूर्ण हैं।

3.दूधिया मशरूम के औषधीय और पोषक गुण- दूधिया मशरूम का पोषक मूल्य अन्य मशरूम के बराबर होता है। कैलोसाइबे इंडिका के परिपक्व फल शरीर में उच्चतम प्रोटीन (शुष्क वजन के आधार पर 17.2%) होता है, जबकि युवा पिन हेड में सबसे कम प्रोटीन (शुष्क वजन के आधार पर 15%), 4.1 प्रतिशत वसा, 3.4% कच्चा फाइबर और 64.26% कार्बोहाइड्रेट (शुष्क वजन के आधार पर) होता है। इसके अतिरिक्त, दूधिया मशरूम में कैल्शियम, पोटैशियम, फॉस्फोरस, आयरन तथा विभिन्न विटामिन जैसे आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व पाए जाते हैं। इसमें उपस्थित आहार रेशा पाचन तंत्र के स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक होता है तथा तृप्ति की भावना बढ़ाता है। इसकी कम वसा एवं उच्च प्रोटीन सामग्री इसे संतुलित आहार तथा शाकाहारी भोजन में प्रोटीन के एक उपयोगी स्रोत के रूप में उपयुक्त बनाती है। साथ ही, इसमें उपस्थित जैवसक्रिय यौगिक एवं एंटीऑक्सीडेंट शरीर को ऑक्सीडेटिव तनाव से बचाने में सहायक हो सकते हैं।

4.धान के पुआल के औषधीय और पोषक गुण-यह मशरूम एक प्रकार का फंगस है जो गर्म मौसम में पाया जाता है। कुछ मशरूम में जैवसक्रिय यौगिक होते हैं जो कैंसर कोशिकाओं के विकास को रोकने में मदद कर सकते हैं। यह हृदय की समस्याओं, उच्च रक्तचाप, कोलेस्ट्रॉल की समस्याओं और कैंसर से संबंधित अन्य बीमारियों के इलाज में मददगार पाया गया है।

नन्दिनी इन्टरप्राइजेज खाद बीज एवं कीटनाशक



प्रो. रामदीन कुशवाह
84610-11860

हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती हैं



पता : चीनोर रोड, छीमक, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)

04/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
नई दिल्ली

'खेती में बढ़ती लागत और घटता मुनाफा: भारतीय कृषि के लिए वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक समाधान'

पुष्पेन्द्र यादव, रोहन सेरावत, शुभ्रांशु सिंह
कृषि विस्तार प्रभाग, भाकृअनुप, कृषि अनुसंधान भवन-I, पूसा नई दिल्ली-110012

प्रस्तावना: भारतीय कृषि देश की अर्थव्यवस्था, खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण आजीविका का प्रमुख आधार है। करोड़ों किसानों की आजीविका खेती पर निर्भर है, लेकिन वर्तमान समय में कृषि को लाभकारी बनाए रखना एक बड़ी चुनौती बनता जा रहा है। बीज, उर्वरक, कीटनाशक, डीजल, बिजली, कृषि मजदूरी और मशीनरी की लागत में वृद्धि के साथ-साथ मौसम की अनिश्चितता तथा कृषि उपज के बाजार मूल्य में उतार-चढ़ाव किसानों की आर्थिक स्थिति को प्रभावित कर रहे हैं। परिणामस्वरूप, कई परिस्थितियों में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के बावजूद किसानों का शुद्ध लाभ अपेक्षा के अनुरूप नहीं बढ़ पाता।

मध्य प्रदेश जैसे कृषि प्रधान राज्य में यह विषय विशेष महत्त्व रखता है। यहाँ सोयाबीन, गेहूँ, चना, मसूर, सरसों और अन्य फसलें किसानों की आजीविका तथा राज्य की कृषि अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। ऐसे में आवश्यकता केवल उत्पादन बढ़ाने की नहीं, बल्कि खेती की लागत कम करने, संसाधनों का कुशल उपयोग करने और किसानों को उनकी उपज का बेहतर मूल्य दिलाने की भी है। वैज्ञानिक तकनीकों और व्यावहारिक प्रबंधन के समन्वय से खेती को अधिक टिकाऊ एवं लाभकारी बनाया जा सकता है।

1. खेती की लागत बढ़ने के प्रमुख कारण

कृषि आदानों की बढ़ती कीमतें: गुणवत्तापूर्ण बीज, उर्वरक, कृषि रसायन, डीजल तथा मजदूरी पर होने वाला खर्च किसानों की उत्पादन लागत का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। इनकी कीमतों में वृद्धि होने पर खेती की कुल लागत बढ़ जाती है। विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों के लिए यह चुनौती अधिक गंभीर हो सकती है।

जलवायु परिवर्तन और मौसम की अनिश्चितता: अनियमित वर्षा, लंबे शुष्क अंतराल, असमय वर्षा तथा तापमान में अत्यधिक उतार-चढ़ाव फसल उत्पादन को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, रबी मौसम में चना और गेहूँ की फसलों को दाना भरने की अवस्था में अधिक तापमान का सामना करना पड़े, तो उपज और गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है।

मृदा स्वास्थ्य में गिरावट: मिट्टी की आवश्यकता के अनुसार उर्वरकों का उपयोग न करना, जैविक पदार्थों की कमी और असंतुलित पोषण प्रबंधन लंबे समय में मृदा की उत्पादकता को प्रभावित कर सकते हैं। इससे फसल की पोषण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति कठिन होती है और उत्पादन लागत बढ़ सकती है।

कीट, रोग और खरपतवार: समय पर नियंत्रण न होने पर कीट, रोग और खरपतवार उपज में कमी तथा अतिरिक्त प्रबंधन खर्च का कारण बनते हैं। इनके नियंत्रण हेतु कृषि रसायनों का अनावश्यक या गलत उपयोग भी लागत बढ़ाता है और पर्यावरण के लिए जोखिम पैदा कर सकता है।

बाजार मूल्य में उतार-चढ़ाव: कई बार किसान को उत्पादन लागत बढ़ने के बावजूद उपज का अपेक्षित मूल्य नहीं मिल पाता। भंडारण, परिवहन, बाजार की जानकारी और सामूहिक विपणन की सीमाएँ भी किसानों की लाभप्रदता को प्रभावित करती हैं।

खेती को लाभकारी बनाने के लिए वैज्ञानिक समाधान

मृदा परीक्षण आधारित पोषण प्रबंधन-मृदा स्वास्थ्य लाभकारी खेती की आधारशिला है। किसानों को मिट्टी की जाँच के आधार पर उर्वरकों का उपयोग करना चाहिए। इससे फसल की आवश्यकता के अनुसार पोषक तत्त्वों की पूर्ति की जा सकती है और अनावश्यक उर्वरक खर्च कम करने में मदद मिलती है। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश के साथ-साथ आवश्यकतानुसार सल्फर, जिंक तथा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग महत्त्वपूर्ण है। गोबर की अच्छी तरह सड़ी खाद, कम्पोस्ट और उपयुक्त हरी खाद को फसल प्रणाली में शामिल करने से मिट्टी में जैविक पदार्थों के स्तर और उसकी भौतिक दशा में सुधार किया जा सकता है।

व्यावहारिक सुझाव: प्रत्येक खेत में एक जैसी उर्वरक मात्रा डालने के बजाय मृदा परीक्षण, फसल की आवश्यकता और स्थानीय कृषि विश्वविद्यालय या कृषि विज्ञान केंद्र की अनुशंसाओं के आधार पर उर्वरक प्रबंधन करें।

उन्नत बीज और समय पर बुवाई- उचित किस्म का चयन फसल की उत्पादकता और जोखिम प्रबंधन दोनों के लिए आवश्यक है। किसानों को अपने क्षेत्र की जलवायु, मिट्टी, सिंचाई की उपलब्धता और बुवाई के समय के अनुसार अनुशंसित किस्मों का चयन करना चाहिए। प्रमाणित बीज, उपयुक्त बीजोपचार, उचित बीज दर, सही बुवाई गहराई और अनुशंसित पौध संख्या फसल की अच्छी स्थापना में सहायता करते हैं। समय पर बुवाई करने से फसल को अनुकूल मौसम का लाभ मिल सकता है तथा कुछ परिस्थितियों में कीटों, रोगों और तापमान संबंधी जोखिमों को कम किया जा सकता है।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन अपनाएं-खरपतवार फसलों के साथ पानी, पोषक तत्वों, प्रकाश और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। इनका प्रभाव फसल, खरपतवार की प्रजाति, घनत्व और नियंत्रण के समय पर निर्भर करता है। विशेष रूप से फसल की शुरुआती अवस्था में खरपतवारों का प्रभाव अधिक हो सकता है। खरपतवार नियंत्रण हेतु समय पर निराई-गुड़ाई, उचित फसल चक्र, आवश्यकता के अनुसार मल्चिंग तथा अनुशंसित खरपतवारनाशियों का संतुलित उपयोग किया जा सकता है। किसी एक विधि पर निर्भर रहने के बजाय विभिन्न उपयुक्त विधियों का एकीकृत उपयोग अधिक प्रभावी हो सकता है। खरपतवारनाशी का चयन संबंधित फसल और खरपतवार की प्रजातियों के अनुसार करें। लेबल पर दिए गए निर्देशों, सही मात्रा, उपयुक्त समय और सुरक्षा उपायों का पालन करना आवश्यक है। इससे फसल को संभावित नुकसान से बचाने तथा अनावश्यक रासायनिक खर्च कम करने में सहायता मिलती है।

जल प्रबंधन और सिंचाई दक्षता- जल की उपलब्धता कृषि उत्पादन को सीधे प्रभावित करती है। अनावश्यक सिंचाई से पानी, बिजली और डीजल का खर्च बढ़ सकता है, जबकि आवश्यक अवस्था में पानी की कमी से उपज घट सकती है। खेत की मिट्टी, फसल और मौसम के अनुसार सिंचाई का समय निर्धारित करना चाहिए। जहाँ उपयुक्त हो, ड्रिप या स्प्रिंकलर जैसी सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है। खेतों में वर्षा जल का संरक्षण, उचित जल निकास और मिट्टी में नमी बनाए रखने वाली पद्धतियाँ भी उपयोगी हैं। मध्य प्रदेश के कम वर्षा या वर्षा की अनिश्चितता वाले क्षेत्रों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार फसल चयन, खेत तालाब, जल संचयन और नमी संरक्षण तकनीकों को अपनाना महत्त्वपूर्ण है।

कीट एवं रोगों का एकीकृत प्रबंधन- कीट और रोगों की रोकथाम के लिए केवल रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भर रहना उचित नहीं है। एकीकृत कीट प्रबंधन के अंतर्गत नियमित फसल निरीक्षण, फसल चक्र, संतुलित पोषण, जैविक नियंत्रण, फेरोमोन ट्रैप और आवश्यकता के अनुसार अनुशंसित कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है। किसानों को कीट की पहचान किए बिना बार-बार छिड़काव करने से बचना चाहिए। इससे अनावश्यक लागत घट सकती है, लाभकारी कीटों की सुरक्षा में मदद मिलती है और कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोध विकसित होने का जोखिम कम करने में सहायता मिलती है।

फसल विविधीकरण से आर्थिक जोखिम में कमी- एक ही फसल पर अत्यधिक निर्भरता किसानों को मौसम, रोग और बाजार मूल्य के जोखिमों के प्रति संवेदनशील बना सकती है। क्षेत्र की जलवायु, मिट्टी, सिंचाई और बाजार की परिस्थितियों के अनुसार दलहन, तिलहन, अनाज तथा अन्य उपयुक्त फसलों को फसल चक्र में शामिल करना लाभकारी हो सकता है। मध्य प्रदेश में सोयाबीन के साथ गेहूँ, चना, मसूर या अन्य उपयुक्त फसलों पर आधारित प्रणालियों का चयन स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार किया जा सकता है। दलहनी फसलें जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में योगदान देती हैं और उचित फसल चक्र के माध्यम से मृदा स्वास्थ्य सुधारने में सहायक हो सकती हैं। हालाँकि, फसल विविधीकरण का निर्णय केवल संभावित उपज के आधार पर नहीं, बल्कि उत्पादन लागत, पानी की उपलब्धता, बाजार की माँग और संभावित शुद्ध लाभ को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

कृषि मशीनीकरण और सामूहिक संसाधन उपयोग- आधुनिक कृषि यंत्र समय पर बुवाई, निराई-गुड़ाई, छिड़काव और कटाई में सहायता करते हैं। लेकिन छोटे किसानों के लिए महँगी मशीनें खरीदना हमेशा आर्थिक रूप से उचित नहीं होता। ऐसी स्थिति में कस्टम हायरिंग सेंटर, किसान समूहों और सहकारी संस्थाओं के माध्यम से कृषि यंत्र किराये पर लेना उपयोगी विकल्प है। इससे मशीन खरीदने में लगने वाली बड़ी पूँजी की आवश्यकता कम हो सकती है और समय पर कृषि कार्य करना आसान हो सकता है। इसी प्रकार, किसान उत्पादक संगठन (FPO) के माध्यम से बीज एवं अन्य कृषि आदानों की सामूहिक खरीद, उपज का एकत्रीकरण, भंडारण, प्रसंस्करण और विपणन की संभावनाएँ बढ़ सकती हैं। इससे किसानों की सौदेबाजी क्षमता मजबूत हो सकती है।



12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
जम्मू कश्मीर

कॉस्टस एक बहुमूल्य औषधीय फसल

डॉ. ममता गोचर आनुवंशिक संसाधन एवं कृषि-प्रौद्योगिकी प्रभाग, भारतीय समवेत ओषध संस्थान, जम्मू (जम्मू ओर कश्मीर)

डॉ. राजेन्द्र गोचर सहायक आचर्य (शस्य विज्ञान) कृषि अनुसंधान उपकेन्द्र, खानपुर (कृषि विश्वविद्यालय कोटा)

कॉस्टस स्पेशिओसस (Costus speciosus) जिंगीबेरेसी कुल का एक बारहमासी, बहुवर्षीय, शाकीय औषधीय पौधा है, जिसे हिंदी में केवकंद, शंकु अदरक, लाल बेत ओर लाल बटन अदरक आदि नामो से जाना जाता है। इसके तने सीधे 1-1.60 मीटर ऊँचे, पत्तियाँ बड़ी सिरे नुकीले एवं सर्पिल क्रम में 15-25 से.मी. लंबी, 5-10 से.मी. चौड़ी तथा पुष्पक्रम आकर्षक ओर प्रायः लाल रंग के सहपत्रों वाला होता है। यह पौधा उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है और पर्याप्त नमी, गर्म जलवायु तथा जैविक पदार्थों से भरपूर मिट्टी में अच्छी वृद्धि करता है। इस पौधे का प्रकंद (भूमिगत तना) औषधीय दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। इसमें विभिन्न जैवसक्रिय यौगिक पाए जाते हैं, जिनमें डायोस्जेनिन (Diosgenin) जैसे स्टेरॉइडल के व्यवसायिक उत्पादन प्रमुखता से किया जाता हैं। इन यौगिकों के कारण यह पौधा औषधीय अनुसंधान तथा प्राकृतिक उत्पादों के विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में इसके विभिन्न भागों का उपयोग किया जाता रहा है।

कॉस्टस स्पेशिओसस का औषधीय महत्व-कॉस्टस में उपस्थित जैवसक्रिय घटकों के कारण इसका उपयोग पारंपरिक चिकित्सा तथा वैज्ञानिक अनुसंधान में रुचि का विषय रहा है। इसके प्रमुख औषधीय महत्व निम्नलिखित हैं।

1.सूजनरोधी गुण: प्रायोगिक अध्ययनों में इसके अर्क शरीर में सूजन पैदा करने वाले कारकों को कम करता है। गठिया और अन्य पुरानी सूजन संबंधी बीमारियों में यह फायदेमंद माना जाता हैं।

2.हार्मोन और दवाओं का संश्लेषण: इसका सबसे बड़ा उपयोग विभिन्न स्टेरॉयड दवाओं, सेक्स हार्मोन (जैसे प्रोजेस्टेरोन और टेस्टोस्टेरोन), तथा कॉर्टिकोस्टेरॉयड (जैसे कोर्टिसोन) के कृत्रिम निर्माण में किया जाता है।

3.कैंसर-रोधी (Anti-tumor) प्रभाव: यह कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि को रोकने और उनके खात्मे (एपोप्टोसिस) को बढ़ावा देने में सहायक हो सकता है। स्तनों के कैंसर और ल्यूकेमिया जैसे ट्यूमर के खिलाफ इसका अध्ययन किया गया है।

4.हृदय स्वास्थ्य और वसा नियंत्रण: यह रक्त में खराब कोलेस्ट्रॉल (LDL) और वसा (हाइपरलिपिडेमिया) को कम करने में मदद करता है। यह धमनियों में प्लाक जमने (एथेरोस्क्लेरोसिस) से बचाव करता है।

5.मधुमेह (Diabetes) प्रबंधन: यह रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने और अग्नाशय की कोशिकाओं को सहारा देने में मदद करता है।

6.तंत्रिका तंत्र (Neurological) की सुरक्षा: अल्जाइमर जैसी नसों से जुड़ी बीमारियों में मानसिक कार्यक्षमता और व्यवहार में सुधार के लिए अध्ययन मे सकारात्मक प्रभाव प्रकट हुए है।

7.पोषण सुरक्षा: कॉस्टस में प्रचुर मात्रा में कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, एमयोलॉज, लिपिड ओर विटामिन 'ए' इत्यादि पोषक तत्व पाए जाते हैं जो स्वास्थ्य के लिए होत लाभकारी हैं।

8.कृमि संक्रमण: इसकी जड़ें कृमि संक्रमण के उपचार में बहुत लाभदायक हैं।

9.रोगाणुरोधी: कॉस्टस की जड़ों का पाउडर शिशुओं के पेट के रोग ओर पेट के कीड़ों के इलाज मे किया जाता है।

10.एंटीऑक्सीडेंट गुण: इसके अर्क में एंटीऑक्सीडेंट घटक जैसे बीटा-कैरोटीन, विटामिन सी ओर टोकॉफ़ीरोल आदि पाए जाते हैं।

11.इसके तेल का प्रयोग अस्थमा, खांसी, गैस, पेट की समस्याएं और हैजा जैसे रोगों में किया होता है



सावधानी: कॉस्टस स्पेशिओसस का घरेलू उपचार के रूप में सेवन चिकित्सकीय सलाह के बिना नहीं करना चाहिए। इसकी प्रभावी एवं सुरक्षित खुराक, दुष्प्रभावों और अन्य दवाओं के साथ पारस्परिक प्रभावों के बारे में पर्याप्त मानव-आधारित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। कॉस्टस स्पेशिओसस की सफल खेती के लिए उपयुक्त जलवायु, अच्छी गुणवत्ता की रोपण सामग्री, उचित पोषण, सिंचाई तथा खरपतवार प्रबंधन आवश्यक हैं। इसकी व्यावसायिक खेती शुरू करने से पहले स्थानीय कृषि विश्वविद्यालय या औषधीय पादप अनुसंधान संस्थान से क्षेत्रानुकूल तकनीक की पुष्टि करना उचित है, क्योंकि इसकी खेती की मानकीकृत तकनीक अभी पूरी तरह स्थापित नहीं है।

जलवायु एवं भूमि- यह पौधा गर्म तथा आर्द्र जलवायु में समुद्र तल से 1500 मीटर उंचाई तक जहाँ औसत वार्षिक वर्षा 500-700 मि. मी. तक हो, अच्छी वृद्धि करता है। आंशिक छाया में भी इसकी खेती की जा सकती है। जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी, पी-एच मान 6.0-7.5 इसके लिए उपयुक्त रहती है। खेत में पानी भरने से प्रकंद सड़ने की आशंका रहती है, इसलिए अच्छी जल निकासी की व्यवस्था आवश्यक है।

खेत की तैयारी-खेत की 2-3 बार जुताई करके मिट्टी को भुरभुरा बनाया जाता है। अंतिम जुताई के समय 15-20 टन अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिलानी चाहिए। खेत को समतल करके आवश्यकता के अनुसार क्यारियाँ या मेड़ें बनाई जा सकती हैं, जिससे सिंचाई और जल निकास आसान हो।

प्रवर्धन एवं रोपण सामग्री- कॉस्टस का प्रवर्धन मुख्य रूप से प्रकंद के टुकड़ों द्वारा किया जाता है। बीज और तने के कुछ भागों से भी इसका प्रवर्धन संभव है, लेकिन व्यावसायिक खेती में प्रकंदों का उपयोग अधिक प्रचलित है। रोपण के लिए स्वस्थ, रोगमुक्त तथा पर्याप्त कलियों वाले प्रकंद चुनने चाहिए।

रोपण का समय एवं दूरी

रोपण का समय: सामान्यतः अप्रैल-मई में रोपण किया जा सकता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में पर्याप्त नमी उपलब्ध होने पर मानसून के आरंभ में रोपण भी उपयुक्त हो सकता है।

रोपण दूरी: लगभग 50×50 सेंटीमीटर की दूरी पर कुड़ों मे रखकर किया जाता है तथा रोपण को तुरंत बाद सिंचाई की जाती है।

रोपण विधि: प्रकंद के टुकड़ों को लगभग 8-10 सेंटीमीटर गहराई पर क्षैतिज रूप से रखा जाता है और मिट्टी से ढक दिया जाता है। कलियों को क्षति से बचाना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन: खेत की मिट्टी की जाँच के आधार पर उर्वरकों का उपयोग करना चाहिए। अच्छी तरह सड़ी हुई जैविक खाद मिट्टी की संरचना तथा नमी धारण क्षमता में सुधार करने में सहायक होती है। 50 किग्रा नाइट्रोजन, 30 किग्रा फॉस्फोरस और 30 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेर, पौधों की वृद्धि, प्रकंद उत्पादन तथा डायोस्जेनिन के लिए महत्वपूर्ण है।

सिंचाई प्रबंधन-रोपण के बाद मिट्टी में पर्याप्त नमी बनाए रखना आवश्यक है। गर्मी के मौसम में आवश्यकता के अनुसार 2-3 सिंचाई करनी चाहिए। वर्षा ऋतु में सिंचाई की आवृत्ति कम रखी जा सकती है। खेत में लंबे समय तक पानी जमा नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे प्रकंदों के सड़ने का खतरा बढ़ जाता है।

खरपतवार एवं कीट-रोग प्रबंधन-फसल की शुरुआती अवस्था में खरपतवारों से प्रतिस्पर्धा पौधों की वृद्धि को प्रभावित कर सकती है। इसलिए आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। खेत की नियमित निगरानी करके रोगग्रस्त पौधों को अलग करना तथा जल निकासी में सुधार करना चाहिए। कीट या रोग की समस्या होने पर उसकी सही पहचान के बाद ही अनुशंसित नियंत्रण उपाय अपनाएँ।

कटाई एवं प्रकंदों की खुदाई-फसल की कटाई का समय पौधों की वृद्धि, प्रकंदों के विकास तथा उत्पाद की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। व्यावसायिक उत्पादन के लिए स्थानीय परीक्षण तथा बाजार की गुणवत्ता संबंधी आवश्यकताओं के अनुसार कटाई का समय निर्धारित करना चाहिए। पहले वनस्पति भाग की कटाई की जाती है फिर बाद में सावधानी पूर्वक ट्रैक्टरचलित कल्टीवेटर से 2 बार सीधा-आड़ा चलाकर प्रकंदों खुदाई करते है, ओर प्रकंदों को कटने या क्षतिग्रस्त होने से बचाना चाहिए। ताजे प्रकंदों की उपज 25-30 टन प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त होती है।

उपज की सफाई, सुखाना एवं पैकेजिंग-खुदाई के बाद प्रकंदों से मिट्टी हटाकर उन्हें साफ पानी से धोया जा सकता है। फिर साफ स्थान पर उचित वायु संचार के साथ सुखाना चाहिए। भंडारण से पहले पर्याप्त रूप से सुखाना आवश्यक है, ताकि फफूँद और गुणवत्ता में गिरावट की आशंका कम हो। सूखे प्रकंदों को नमीरोधी, साफ तथा उपयुक्त पैकेजिंग सामग्री में भरकर ठंडे और सूखे स्थान पर रखना चाहिए। पैकेट पर पौधे का सही वैज्ञानिक नाम, उत्पाद का वजन, कटाई की तारीख और बैच संबंधी जानकारी अंकित करना उपयोगी रहता है।

उपज का आकलन करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए-

- ताजे प्रकंद तथा सूखे प्रकंद की उपज अलग-अलग दर्ज करें।
- रोपण के समय पौधों की संख्या और कटाई के समय जीवित पौधों की संख्या का रिकॉर्ड रखें।
- सूखने के बाद प्रकंदों के वजन में कमी को ध्यान में रखें।
- औषधीय गुणवत्ता और सक्रिय यौगिकों की मात्रा का मूल्यांकन कराकर ही व्यावसायिक बिक्री की योजना बनाएँ।

किसानों को व्यावसायिक खेती शुरू करने से पहले औषधीय पादपों के विश्वसनीय खरीदार, प्रसंस्करण इकाइयों तथा स्थानीय कृषि विभाग से संपर्क करना चाहिए। इससे उत्पाद की गुणवत्ता, बिक्री व्यवस्था और संभावित लाभ का बेहतर अनुमान लगाया जा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
झारखण्ड

गांव स्तर पर दूध के संरक्षण के लिए कम लागत वाली शीतलन प्रौद्योगिकियां

डॉ. मो. इरफान अहमद अंसारी सह-प्राध्यापक सह वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रधान अन्वेषक, अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (फसलोपरांत अभियंत्रण एवं प्रौद्योगिकी) कृषि अभियंत्रण विभाग, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, राँची- झारखण्ड

प्रस्तावना: दूध मानव आहार का अत्यंत पौष्टिक एवं महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ है, किंतु इसकी समृद्ध पोषक संरचना सूक्ष्मजीवों की वृद्धि के लिए भी अनुकूल होती है। स्वस्थ पशु से प्राप्त ताजे दूध में प्रारंभिक सूक्ष्मजीवी भार अपेक्षाकृत कम होता है, परंतु दुहने, संग्रहण एवं परिवहन के दौरान बर्तनों, उपकरणों, पानी, हवा तथा अन्य स्रोतों से संदूषण हो सकता है। दुहने के तुरंत बाद दूध का तापमान लगभग 37°C होता है, जो सूक्ष्मजीवों की वृद्धि के लिए अनुकूल है। इस तापमान पर दूध को लंबे समय तक रखने से सूक्ष्मजीव तेजी से बढ़ सकते हैं, जिससे अम्लता में वृद्धि, स्वाद एवं गंध में परिवर्तन तथा अन्य गुणवत्ता संबंधी हानियाँ हो सकती हैं। इसलिए दूध की गुणवत्ता, सुरक्षा और भंडारण अवधि बनाए रखने के लिए दुहने के बाद शीघ्र एवं प्रभावी शीतलन आवश्यक है। दूध की गुणवत्ता पर तापमान का सीधा प्रभाव पड़ता है। अधिक तापमान पर सूक्ष्मजीवों की वृद्धि तेज होती है, जबकि तापमान कम करने पर उनकी गतिविधि धीमी हो जाती है। शीतलन से सूक्ष्मजीवों की वृद्धि तथा दूध में होने वाली जैव-रासायनिक एवं रासायनिक क्रियाओं की गति नियंत्रित होती है। इसलिए दूध को दुहने के बाद लंबे समय तक सामान्य परिवेशीय तापमान पर रखना उचित नहीं है। केवल प्रारंभिक शीतलन ही पर्याप्त नहीं है; भंडारण एवं परिवहन के दौरान कम तापमान बनाए रखना भी आवश्यक है, क्योंकि तापमान में पुनः वृद्धि होने पर सूक्ष्मजीवी गतिविधि बढ़ सकती है। इस प्रकार दूध की गुणवत्ता संरक्षण में शीघ्र शीतलन और सतत शीत श्रृंखला का विशेष महत्व है।

दूध की उच्च गुणवत्ता बनाए रखने के लिए स्वच्छ दुहाई, उचित छनन, शीघ्र शीतलन, स्वच्छ एवं कम तापमान पर भंडारण तथा ठंडे वातावरण में समयबद्ध परिवहन सुनिश्चित किया जाना चाहिए। दूध को यथासंभव शीघ्र प्रसंस्करण या संग्रहण केंद्र तक पहुँचाना आवश्यक है। साथ ही, दूध के संपर्क में आने वाले बर्तनों एवं उपकरणों की नियमित सफाई और कीटाणुशोधन तथा बाहरी संदूषण से सुरक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए। ग्रामीण एवं छोटे डेयरी किसानों के लिए कम लागत वाली शीतलन तकनीकों का विशेष महत्व है, क्योंकि सीमित दूध उत्पादन, विद्युत की अनियमित उपलब्धता तथा महंगे प्रशीतन उपकरणों के कारण आधुनिक यांत्रिक शीतलन प्रणालियाँ हमेशा व्यावहारिक नहीं होतीं। ऐसी परिस्थितियों में स्थानीय संसाधनों के आधार पर कुएँ के पानी, जल टंकी, कूलिंग रिंग, वाष्पीकरणीय शीतलन, मिट्टी के घड़े, उथली जल नांद तथा प्लेट कूलर जैसी तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है। इनका चयन दूध की मात्रा, पानी की उपलब्धता, परिवेशीय तापमान, सापेक्ष आर्द्रता, विद्युत सुविधा तथा अपेक्षित भंडारण अवधि को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। अतः दूध की गुणवत्ता संरक्षण एक समग्र प्रक्रिया है, जिसमें स्वच्छ दुग्ध उत्पादन, शीघ्र शीतलन, स्वच्छ भंडारण, उचित तापमान नियंत्रण और समयबद्ध परिवहन का समन्वित पालन आवश्यक है। स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप वैज्ञानिक एवं कम लागत वाली शीतलन तकनीकों को अपनाकर दूध की खराबी, गुणवत्ता ह्रास और आर्थिक नुकसान को कम किया जा सकता है तथा उपभोक्ताओं तक सुरक्षित एवं गुणवत्तापूर्ण दूध पहुँचाया जा सकता है।

दूध को ठंडा करना क्यों आवश्यक है?- दूध अत्यंत पौष्टिक होने के साथ-साथ शीघ्र खराब होने वाला खाद्य पदार्थ है। इसकी समृद्ध पोषक संरचना सूक्ष्मजीवों की वृद्धि के लिए अनुकूल होती है। दुहने के दौरान बर्तनों, उपकरणों, पानी, हवा आदि से संदूषण हो सकता है और दुहने के तुरंत बाद लगभग 37°C तापमान पर दूध में सूक्ष्मजीव तेजी से बढ़ सकते हैं, जिससे अम्लता, स्वाद, गंध तथा अन्य गुणवत्ता गुण प्रभावित होते हैं। अतः शीघ्र शीतलन दूध की गुणवत्ता एवं सुरक्षा बनाए रखने की प्रमुख प्रक्रिया है। तापमान कम करने से सूक्ष्मजीवों की वृद्धि तथा जैव-रासायनिक एवं रासायनिक क्रियाओं की गति नियंत्रित होती है। इसलिए दूध को यथाशीघ्र ठंडा कर लगभग 4°C पर रखना तथा भंडारण एवं परिवहन के दौरान कम तापमान बनाए रखना आवश्यक है। दूध की सुरक्षा में समय-तापमान नियंत्रण महत्वपूर्ण है। फार्म स्तर पर शीतलन सुविधा उपलब्ध न होने पर दूध को कम से कम समय में निकटतम संग्रहण या प्रसंस्करण केंद्र तक पहुँचाना चाहिए। केवल तापमान कम करना पर्याप्त नहीं है; स्वच्छ दुहाई, साफ एवं सैनिटाइज किए हुए बर्तन व उपकरण, सुरक्षित जल, बाहरी संदूषण से सुरक्षा, समयबद्ध परिवहन तथा सतत शीत श्रृंखला भी आवश्यक हैं। इस प्रकार शीघ्र शीतलन, कम तापमान पर भंडारण और परिवहन के दौरान तापमान नियंत्रण से दूध की गुणवत्ता, सुरक्षा और भंडारण अवधि में सुधार किया जा सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में कम लागत वाली शीतलन तकनीकों की आवश्यकता: ग्रामीण क्षेत्रों में दूध की मात्रा अक्सर कम होती है और प्रत्येक किसान के लिए यांत्रिक प्रशीतन प्रणाली लगाना आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं होता। ऐसे क्षेत्रों में उपलब्ध पानी, बर्फ, मिट्टी के घड़े, वाष्पीकरण तथा प्राकृतिक ठंडी हवा का उपयोग करके दूध के तापमान को कम किया जा सकता है। यदि दूध को लंबे समय तक फार्म पर रखना हो तो शीतलन सुविधा आवश्यक है। लेकिन यदि दूध को कुछ ही समय में निकटतम दूध संग्रहण केंद्र तक पहुँचाया जा सकता है, तो शीघ्र परिवहन अधिक उपयुक्त हो सकता है। विशेष रूप से बिजली-विहीन या कम विद्युत सुविधा वाले छोटे डेयरी फार्मों के लिए वाष्पीकरणीय शीतलन, पानी की टंकी, कूलिंग रिंग, सतही शीतलक, मिट्टी के घड़े तथा प्लेट कूलर जैसी प्रणालियाँ उपयोगी हो सकती हैं।

प्रमुख कम लागत वाली दूध शीतलन तकनीकें

1. कुएँ के पानी द्वारा शीतलन: यदि फार्म पर पर्याप्त मात्रा में ठंडा कुएँ का पानी उपलब्ध हो, तो दूध के कनस्तरों को पानी में रखकर उनका तापमान कम किया जा सकता है। पानी की उपलब्धता के अनुसार कनस्तरों को कुएँ के पानी में या किसी अलग टंकी में रखा जा सकता है। इस विधि की एक सीमा यह है कि यदि उसी कुएँ के पानी का उपयोग पीने के लिए भी किया जाता है तो दूध के कनस्तरों को सीधे कुएँ में डुबोना उचित नहीं है, क्योंकि इससे पानी के दूषित होने की संभावना रहती है। पानी आधारित सरल शीतलन प्रणालियाँ सामान्यतः दूध के तापमान को उपयोग किए जा रहे पानी के तापमान से कुछ डिग्री अधिक तक ला सकती हैं।

2. **कूलिंग रिंग:** कूलिंग रिंग दूध के कनस्तर की गर्दन के चारों ओर लगाया जाने वाला छिद्रयुक्त नलिकाकार रिंग होता है। इसे जल आपूर्ति से जोड़ा जाता है। रिंग से निकलने वाला पानी कनस्तर की बाहरी सतह पर बहता हुआ नीचे आता है और दूध की ऊष्मा को बाहर निकालता है। यदि ठंडे अथवा बर्फयुक्त पानी का उपयोग किया जाए तो शीतलन अधिक प्रभावी हो जाता है। कनस्तर के नीचे पानी एकत्र करने तथा उसे पुनः परिचालित करने की व्यवस्था करके पानी की बचत की जा सकती है। यह प्रणाली विशेष रूप से वहाँ उपयोगी है जहाँ निरंतर या पर्याप्त मात्रा में ठंडा पानी उपलब्ध हो।

3. **जल टंकी द्वारा शीतलन:** इस विधि में ठंडे पानी से भरी एक टंकी का उपयोग किया जाता है। दूध के कनस्तरों को टंकी में उनकी गर्दन तक डुबोकर रखा जाता है। बेहतर शीतलन के लिए टंकी के पानी को लगातार या नियमित अंतराल पर बदलना चाहिए। यदि बर्फयुक्त पानी उपलब्ध हो तो शीतलन की दर काफी बढ़ाई जा सकती है। टंकी में बर्फ-पानी के परिसंचरण के लिए छोटे पंप का उपयोग किया जा सकता है। टंकी तथा उसके ढक्कन को इन्सुलेट करने से बाहरी वातावरण से ऊष्मा के प्रवेश को कम किया जा सकता है। दूध को धूल, मक्खियों तथा अन्य बाहरी संदूषण से बचाना भी आवश्यक है।

4. **वाष्पीकरणीय शीतलन:** वाष्पीकरणीय शीतलन एक सरल, कम लागत और बिजली-विहीन तकनीक है। इसका आधार यह सिद्धांत है कि जब पानी वाष्पित होता है तो वाष्पीकरण के लिए आवश्यक ऊष्मा आसपास के वातावरण अथवा दूध के कनस्तर से ली जाती है। इससे कनस्तर और उसके अंदर मौजूद दूध का तापमान कम होता है। इस तकनीक की प्रभावशीलता तब अधिक होती है जब वातावरण की सापेक्ष आर्द्रता कम हो। अधिक हवा की गति, अधिक गीली सतह और कम आर्द्रता वाष्पीकरण को बढ़ाती है। दूध के कनस्तर को पानी में रखकर उसके चारों ओर गीला सूती कपड़ा लपेटा जा सकता है। कपड़े का निचला भाग पानी में रखा जाता है ताकि केशिकीय क्रिया द्वारा कपड़ा लगातार गीला बना रहे। कनस्तर को खुले लेकिन छायादार स्थान पर रखने से हवा का प्रवाह बढ़ता है और शीतलन बेहतर होता है। सौर ऊर्जा से चलने वाले छोटे पंखे का उपयोग करके वायु प्रवाह बढ़ाया जा सकता है। यह विधि विशेष रूप से शुष्क एवं गर्म ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ बिजली उपलब्ध नहीं है, छोटे स्तर पर दूध के अल्पकालिक शीतलन के लिए उपयोगी हो सकती है।

5. **मिट्टी के घड़े द्वारा शीतलन:** मिट्टी के घड़े का उपयोग भी वाष्पीकरणीय शीतलन के लिए किया जा सकता है। दूध को उपयुक्त क्षमता वाले मिट्टी के घड़े में रखा जाता है तथा घड़े की बाहरी सतह पर गीला सूती कपड़ा लपेटा जाता है। घड़े को छायादार एवं हवादार स्थान पर रखने से कपड़े में मौजूद पानी लगातार वाष्पित होता रहता है। वाष्पीकरण के लिए आवश्यक ऊष्मा घड़े से ली जाती है और इस कारण दूध का तापमान कम होता है। मिट्टी के घड़े की छिद्रयुक्त संरचना भी पानी के धीरे-धीरे बाहर आने और वाष्पीकरण में सहायता करती है। यह अत्यंत कम लागत वाली विधि है और छोटे किसानों के लिए उपयोगी हो सकती है।

6. **उथली जल नांद:** उथली जल नांद भी वाष्पीकरणीय शीतलन पर आधारित प्रणाली है। इसमें एक उथली धातु या अन्य उपयुक्त नांद में पानी भरा जाता है और दूध के कनस्तर को उसमें रखा जाता है। कनस्तर को गीले सूती कपड़े से ढक दिया जाता है। पानी के वाष्पीकरण के कारण कनस्तर की बाहरी सतह ठंडी होती है और दूध का तापमान कम होता है। शुष्क और हवादार वातावरण में इस प्रणाली की प्रभावशीलता अधिक होती है। यह प्रणाली छोटे दूध उत्पादकों के लिए कम लागत में अस्थायी शीतलन सुविधा उपलब्ध करा सकती है।

7. **प्लेट कूलर:** प्लेट कूलर दूध के शीघ्र शीतलन की अपेक्षाकृत प्रभावी एवं कम लागत वाली प्रणाली है। इसमें बहुत पतली स्टेनलेस स्टील प्लेटों की श्रृंखला होती है। दूध और ठंडा पानी प्लेटों की विपरीत सतहों से प्रवाहित होते हैं। दूध की ऊष्मा प्लेट के माध्यम से ठंडे पानी में स्थानांतरित हो जाती है और दूध का तापमान कम होता है। उपलब्ध ठंडे पानी का उपयोग करके लगभग 35°C तापमान वाले दूध को लगभग 18-20°C तक कम किया जा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
बिहार

बिहार में मखाना खेती की चुनौतियां और सामाधान

डॉ. सुनील कुमार मंडल सहायक प्राध्यापक, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर- 847403 (बिहार)

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, (बिहार)



बिहार में मखाना की खेती देश के कुल उत्पादन का 85-90 प्रतिशत योगदान रखता है, लेकिन यह मुख्य रूप से पारंपरिक तरीकों (तालाबों एवं जलाशयों में), श्रम-गहन क्रियाओं और सीमित आधुनिकीकरण जैसी चुनौतियों का सामना कर रही है। सामाधान के तौर पर बीज श्रेणीकरण, आधुनिक खेत प्रणाली, मशीनीकरण और उच्च उपज क्षमता वाली किस्मों (स्वर्ण वैदेही) का उपयोग किया जा रहा है।

बिहार में मखाना खेती की प्रमुख चुनौतियां

- **पारंपरिक खेती और उच्च श्रम लागत:** मखाना उत्पादन अत्यधिक श्रम-गहन (अधिक मेहनत वाला) है। इसमें कटाई और प्रसंस्करण के लिए बहुत अधिक शारीरिक श्रम की आवश्यकता होती है।
- **मशीनीकरण की कमी:** पारंपरिक तरीके से कटाई और प्रसंस्करण के कारण उतपादकता मूल्य कम रहती है।
- **छोटे दानों (बीजों) की अधिकता:** बीज की गुणवत्ता खराब होने के कारण मखाना के बीजों का आकार छोटा रह जाता है, जिससे किसानों को कम कीमत मिलती है, जबकि मेहनत बराबर लगती है।
- **स्वास्थ्य संबंधी जोखिम:** मखाना फसल की कटाई के दौरान कसान और श्रमिक लगातार पानी में काम करने के कारण स्वस्थ्य संबंधी समस्याओं से जूझते हैं।
- **मध्यस्थों का वर्जस्व:** सीधे बाजार तक पहुँच न होने के कारण किसानों को अपनी उपज का सही मूल्य नहीं मिल पाता है।
- **जलवायु संवेदनशीलता:** असमय बर्षा, बाढ़ या सुखे से प्रभावित होने के कारण फसल खराब होने का जोखिम रहता है।

मखाना खेती में सुधार के उपाय

- **बीज की अच्छी गुणवत्ता और उन्नत किस्में:** मखाना अनुसंधान केन्द्र, दरभंगा के द्वारा विकसित उन्नत बीजों (जैसे स्वर्ण वैदेही) का उपयोग करना चाहिए, जिससे बीजों का आकार समान और बड़ा होने के साथ-साथ अच्छी गुणवत्ता के साथ अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके।

आधुनिक मशीनीकरण

प्रसंस्करण (मखाना भूनने और बीज निकालने वाली) आधुनिक मशीनों का उपयोग बढ़ाना चाहिए।

एकीकृत खेती

मखाना की खेती के साथ मछली पालन को अपनाएँ, जिससे अतिरिक्त आय प्राप्त हो सके।

आधुनिक खेत प्रणाली में मखाना की खेती

इस आधुनिक पद्धति के अंतर्गत मखाना की खेती करने से खेतों की कम गहराई (1.0-2.0 फीट) कम होने के कारण फसल की कटाई आसानी से कम समय में और न्यूनत्तम श्रम लागत के साथ साधारण व्यक्ति भी कर सकता है, जिससे स्वास्थ्य संबंधी जोखिम की समस्यायें नहीं आती है।

सहकारी समितियां

एफपीओं या किसान सहरकारी समितियां बनाकर विचौलियों को खत्म करके बेहतर विपणन करना चाहिए, जिससे मखाना का उचित बाजार मूल्य मिल सके।

प्रशिक्षण और सरकारी सहायता

बिहार सरकार की विशेष योजनाओं (जैसे मखाना विकास योजना) के तहत मिलने वाली सब्सिडी और प्रशिक्षण का लाभ प्राप्त करना चाहिए।

गुणवत्ता का नियंत्रण

मखाना की जीआई टैग मिलने के बाद इसकी ग्रेडिंग और पैकेजिंग पर ध्यान देना चाहिए, ताकि अच्छी कीमत मील सके। इस प्रकार मखाना क्षेत्र में इन सुधारों को अपनाने से न केवल उत्पादन बढ़ेगा, बल्कि किसानों के आय में भी उल्लेखनीय वृद्धि होगी।



12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हरियाणा

जूट एवं अन्य प्राकृतिक रेशों में पराबैंगनी (यूवी) संरक्षण हेतु रंगाई की नवीन प्रगति

रीनावंती, मोना वर्मा, सरोज देवी, साक्षी
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि वि.वि. हिसार (हरियाणा)

सूर्य से प्राप्त पराबैंगनी विकिरण (UV radiation) मानव त्वचा के साथ-साथ वस्त्रों के गुणों को भी प्रभावित करती है। लंबे समय तक पराबैंगनी विकिरण के संपर्क में रहने से त्वचा पर सनबर्न, समय से पहले त्वचा की उम्र बढ़ना तथा अन्य स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए ऐसे वस्त्रों का विकास महत्वपूर्ण हो गया है जो शरीर को पराबैंगनी किरणों से सुरक्षा प्रदान करने के साथ-साथ आरामदायक, टिकाऊ और पर्यावरण-अनुकूल भी हों। प्राकृतिक रेशे जैसे जूट, कपास, लिनन, रेमी (Ramie) तथा ऊन से बने वस्त्र अपने जैव-अवक्रमणीय एवं नवीकरणीय गुणों के कारण सतत वस्त्रों के लिए महत्वपूर्ण माने जाते हैं। हाल के वर्षों में इन रेशों की रंगाई को केवल रंग प्रदान करने की प्रक्रिया न मानकर पराबैंगनी -सुरक्षा जैसे कार्यात्मक गुण प्रदान करने की तकनीक के रूप में विकसित किया जा रहा है।

किसी वस्त्र की पराबैंगनी सुरक्षा मुख्यतः उसके रेशे के प्रकार, कपड़े की मोटाई, जीएसएम, बुनाई संरचना, छिद्रता, रंग की गहराई तथा रंगद्रव्य की पराबैंगनी अवशोषण क्षमता पर निर्भर करती है। वस्त्र की पराबैंगनी सुरक्षा को सामान्यतः पराबैंगनी सुरक्षा कारक द्वारा व्यक्त किया जाता है। गहरे रंग तथा अधिक रंग सांद्रता वाले कपड़े सामान्यतः अधिक पराबैंगनी विकिरण को अवशोषित करते हैं और इसलिए उनमें पराबैंगनी सुरक्षा अधिक पाई जा सकती है। प्राकृतिक रंगों से रंगे कपास पर किए गए अध्ययनों में भी यह पाया गया है कि रंगाई के बाद पराबैंगनी सुरक्षा में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती है तथा अधिक गहरी रंगाई से PF(Ultraviolet Protection Factor) में और सुधार देखा जाता है।

जूट एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक लिग्नोसेल्यूलोसिक रेशा है, जिसमें सेल्यूलोज, हेमीसेल्यूलोज और लिग्निन प्रमुख घटक होते हैं। जूट की संरचना तथा प्राकृतिक रंगद्रव्य इसे विभिन्न कार्यात्मक परिष्करण प्रक्रियाओं के लिए उपयोगी बनाते हैं। प्रारंभिक अध्ययनों में जूट/कपास मिश्रित वस्त्रों पर विभिन्न रंगों तथा पराबैंगनी अवशोषक फिनिशिंग एजेंट्स के प्रभाव का अध्ययन किया गया था। विभिन्न शोध से यह स्पष्ट हुआ कि कुछ प्रतिक्रियाशील रंग, पराबैंगनी अवशोषक फिनिशिंग एजेंट्स तथा टाइटेनियम डाइऑक्साइड जैसे पदार्थ जूट/कपास वस्त्रों की पराबैंगनी सुरक्षा बढ़ा सकते हैं। इससे यह अवधारणा विकसित हुई कि जूट की रंगाई और परिष्करण को एक साथ करके बहु-कार्यात्मक वस्त्र तैयार किए जा सकते हैं।

हाल के वर्षों में प्राकृतिक रंगों का उपयोग पराबैंगनी -सुरक्षात्मक वस्त्रों के विकास में विशेष रूप से बढ़ा है। हल्दी, दालचीनी, केसर, प्याज के छिलके, अनार के छिलके तथा अन्य पौधों से प्राप्त प्राकृतिक रंग में उपस्थित विभिन्न जैव-सक्रिय यौगिक पराबैंगनी विकिरण को अवशोषित करने की क्षमता रखते हैं। 2021 में प्रकाशित एक अध्ययन में हल्दी, दालचीनी और केसर जैसे प्राकृतिक रंगों से कपास वस्त्रों की रंगाई की गई तथा पराबैंगनी-सुरक्षा और जीवाणुरोधी गुणों का मूल्यांकन किया गया। अध्ययन में पाया गया कि प्राकृतिक रंगों से रंगाई के बाद कपड़े के पराबैंगनी -सुरक्षात्मक गुणों में सुधार हुआ और प्रयुक्त रंगों में केसर ने अपेक्षाकृत बेहतर पराबैंगनी सुरक्षा प्रदर्शित की।

एक अन्य महत्वपूर्ण प्रगति में प्राकृतिक रंगों के साथ जैव-आधारित मॉर्डेंट एवं सहायक पदार्थों का प्रयोग किया जा रहा है। परंपरागत धातु-आधारित मॉर्डेंट की सीमाओं को कम करने के लिए काइटोसन, टैनिन, पौधों के अर्क तथा अन्य जैव-आधारित पदार्थों पर शोध किया जा रहा है। सूती वस्त्र पर प्याज के छिलके के प्राकृतिक रंग तथा चिटोसान के संयुक्त प्रयोग से पराबैंगनी सुरक्षा एवं जीवाणुरोधी गुणों में सुधार की सूचना दी गई है। काइटोसन ने रंगाई में मॉर्डेंट की भूमिका निभाते हुए रंग के अवशोषण को बढ़ाने में सहायता की और इसके साथ प्राप्त वस्त्र में अतिरिक्त कार्यात्मक गुण विकसित हुए। प्राकृतिक रंगों के क्षेत्र में एक अन्य आधुनिक विकास विभिन्न पौधों के अपशिष्टों को रंगद्रव्य के रूप में उपयोग करना है। फल एवं सब्जियों के छिलके, कृषि अवशेष, पत्तियाँ, फूल तथा बीज जैसे पदार्थों से रंगद्रव्य प्राप्त करके उन्हें वस्त्रों पर प्रयोग किया रहा है। इससे दोहरा लाभ प्राप्त होता है–एक ओर कृषि एवं खाद्य अपशिष्ट का मूल्यवर्धन होता है और दूसरी ओर पेट्रोलियम-आधारित सिंथेटिक रंगों पर निर्भरता कम की जा सकती है। 2022 के एक व्यापक समीक्षा अध्ययन में प्राकृतिक रंगों के स्रोत, निष्कर्षण विधियों, विभिन्न रेशों पर उनके अनुप्रयोग तथा टिकाऊ रंगाई से संबंधित संभावनाओं और चुनौतियों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

प्राकृतिक रेशों में पराबैंगनी सुरक्षा बढ़ाने की आधुनिक तकनीक केवल रंगाई तक सीमित नहीं है। अब रंगाई के साथ-साथ नैनो-सामग्री तथा सतत कोटिंग तकनीकों का प्रयोग भी किया जा रहा है। टाइटेनियम डाइऑक्साइड, जिंक ऑक्साइड, ग्राफीन-आधारित पदार्थ तथा अन्य पराबैंगनी - अवशोषण /पराबैंगनी -, प्रकीर्णन सामग्री को वस्त्र की सतह पर प्रयोग करके पराबैंगनी विकिरण के संचरण को कम करने का प्रयास किया जाता है। 2022 में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार, टिकाऊ पराबैंगनी सुरक्षात्मक वस्त्र कोटिंग्स में नैनो-सामग्री तथा बहु-कार्यात्मक कोटिंग प्रणालियों का उपयोग तेजी से विकसित हो रहा है। इनसे पराबैंगनी सुरक्षा के साथ-साथ जीवाणुरोधी (antibacterial), स्व-सफाई (self-cleaning) तथा अन्य कार्यात्मक गुण भी प्राप्त किए जा सकते हैं। ऊन जैसे अन्य प्राकृतिक रेशों में भी प्राकृतिक रंगों द्वारा पराबैंगनी सुरक्षा प्रदान करने पर शोध हुआ है। सी बकथॉर्न (Hippophae rhamnoides) जैसे प्राकृतिक रंगद्रव्य से ऊनी वस्त्रों पर किए गए अध्ययन में पराबैंगनी संरक्षण प्रदान करने की क्षमता का मूल्यांकन किया गया। इस प्रकार प्राकृतिक रंगों का उपयोग केवल सेल्यूलोसिक रेशों तक सीमित न रहकर प्रोटीन आधारित प्राकृतिक रेशों तक भी विस्तारित हो रहा है।

जूट एवं अन्य प्राकृतिक रेशों के लिए भविष्य की रंगाई तकनीकों में प्राकृतिक रंगद्रव्य, जैव-मॉर्डेंट, एंजाइम, किटोसिन, नैनो-सामग्री तथा कम जल-ऊर्जा वाली रंगाई प्रक्रियाओं का संयोजन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। विशेष रूप से जूट जैसे कृषि-आधारित रेशों में स्थानीय पौधों एवं कृषि-अवशेषों से प्राप्त रंगद्रव्यों का उपयोग किसानों तथा ग्रामीण उद्यमों के लिए मूल्यवर्धन के नए अवसर पैदा कर सकता है। हालांकि प्राकृतिक रंगों की रंग-स्थिरता, रंग की पुनरावृत्ति, बड़े पैमाने पर उपलब्धता और प्रक्रिया मानकीकरण अभी भी प्रमुख चुनौतियाँ हैं। इसलिए भविष्य के शोध में पराबैंगनी सुरक्षा, रंग स्थिरता, धुलाई के बाद यू.पी.एफ., पर्यावरणीय प्रभाव तथा उत्पादन लागत का एक साथ मूल्यांकन करना आवश्यक है। इस प्रकार आधुनिक पराबैंगनी -सुरक्षात्मक रंगाई का उद्देश्य केवल वस्त्र को आकर्षक रंग प्रदान करना नहीं है, बल्कि ऐसे बहु-कार्यात्मक, टिकाऊ और पर्यावरण-अनुकूल वस्त्र विकसित करना है जो मानव स्वास्थ्य की रक्षा के साथ प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर उपयोग कर सकें। जूट तथा अन्य प्राकृतिक रेशों में प्राकृतिक रंगों और जैव-आधारित परिष्करण तकनीकों का समन्वय भविष्य में सतत एवं कार्यात्मक वस्त्र उद्योग के विकास की महत्वपूर्ण दिशा बन सकता है



01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हरियाणा

मृदा स्वास्थ्य एवं उर्वरता सुधार में मृदा जैविक कार्बन का महत्व

डॉ. सुशील कुमार सिंह, ज्योति, डॉ. एम.डी. परिहार
डॉ. मुकेश कुमार जाट एवं डॉ. शुभम लांबा
कृषि महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, (हरियाणा)

1. **परिचय:** मृदा जैविक कार्बन मृदा जैविक पदार्थ का प्रमुख घटक है और मृदा स्वास्थ्य का एक उपयोगी संकेतक माना जाता है। यह मृदा समुच्चयन, संरचनात्मक स्थिरता, जल अंतःप्रवेशन, नमी धारण, पोषक तत्त्वों के चक्रण तथा सूक्ष्मजीव गतिविधि को प्रभावित करता है। जैविक कार्बन का स्तर मृदा की बनावट, जलवायु, फसल प्रणाली, जैविक अवशेषों की मात्रा और प्रबंधन पद्धतियों पर निर्भर करता है। फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन, गोबर की सड़ी खाद एवं कम्पोस्ट का उपयोग, हरी खाद, आवरण फसलें, विविध फसल चक्र, कृषि वानिकी तथा मृदा को कम विचलित करने वाली पद्धतियाँ मृदा जैविक कार्बन के संरक्षण और दीर्घकालीन सुधार में सहायक हो सकती हैं। हालांकि, इन उपायों का प्रभाव स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग होता है। मृदा परीक्षण, संतुलित पोषक तत्त्व प्रबंधन और उपयुक्त जल निकास के साथ इन पद्धतियों को अपनाना टिकाऊ कृषि के लिए आवश्यक है. ।

मृदा जैविक कार्बन मृदा फसल उत्पादन का आधार है, लेकिन लगातार खेती, फसल अवशेषों को हटाने या जलाने, अत्यधिक मृदा विचलन और अपर्याप्त जैविक पदार्थ वापसी से कई कृषि मृदाओं में जैविक पदार्थ का स्तर घट सकता है। मृदा जैविक कार्बन मिट्टी में उपस्थित जैविक पदार्थों में संचित कार्बन है। इसके विपरीत, मृदा जैविक पदार्थ में पौधों एवं जीवों के अवशेष, उनके अपघटन उत्पाद और अन्य जैविक घटक शामिल होते हैं। अतः मृदा जैविक कार्बन और मृदा जैविक पदार्थ परस्पर संबंधित हैं, परंतु दोनों समान शब्द नहीं हैं। मृदा जैविक कार्बन मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों से जुड़ा है। इसका प्रबंधन केवल कार्बन भंडारण तक सीमित नहीं, बल्कि मृदा की उत्पादकता, पोषक तत्त्वों के पुनर्चक्रण और कृषि प्रणाली की सहनशीलता बनाए रखने की व्यापक रणनीति का हिस्सा है।

मृदा स्वास्थ्य एवं उर्वरता में जैविक कार्बन की भूमिका

मृदा संरचना और समुच्चयन: जैविक पदार्थ तथा सूक्ष्मजीवों द्वारा निर्मित पदार्थ मृदा कणों के एकत्रीकरण और समुच्चयों की स्थिरता में योगदान देते हैं। बेहतर संरचना से छिद्रों की व्यवस्था, जड़ों के विकास और जल के प्रवेश को लाभ मिल सकता है।

जल अंतःप्रवेशन और नमी धारण

जैविक कार्बन का सबसे महत्वपूर्ण लाभ मिट्टी में पानी को रोककर रखने की क्षमता बढ़ाना है। जैविक पदार्थ पानी को अपने अंदर रोकने और धीरे-धीरे पौधों को उपलब्ध कराने में सहायता करता है। यह लाभ विशेष रूप से रेतीली मिट्टी में महत्वपूर्ण है, जहाँ पानी तेजी से नीचे चला जाता है। जैविक कार्बन बढ़ाने से सिंचाई के पानी का अधिक प्रभावी उपयोग किया जा सकता है।

पोषक तत्वों का चक्रण

जैविक पदार्थों के विघटन से नाइट्रोजन, फास्फोरस, सल्फर तथा अन्य पोषक तत्व धीरे-धीरे उपलब्ध होते हैं। जैविक कार्बन मिट्टी में पोषक तत्वों के चक्रण को बेहतर बनाने में मदद करता है। इससे पौधों को पोषक तत्व अधिक संतुलित तरीके से उपलब्ध हो सकते हैं और उर्वरकों के उपयोग की दक्षता बढ़ सकती है।

मृदा जैव विविधता और सूक्ष्मजीव गतिविधि

जैविक पदार्थ अनेक मृदा जीवों के लिए ऊर्जा और कार्बन का स्रोत है। जीवाणु, कवक और अन्य जीव अपघटन तथा पोषक तत्त्वों के जैव-भूरासायनिक चक्रण में भूमिका निभाते हैं। प्रभाव जैविक पदार्थ की गुणवत्ता और मृदा पर्यावरण पर निर्भर करता है।

फसल वृद्धि और उत्पादन

स्वस्थ मिट्टी में जड़ों का विकास, पानी की उपलब्धता और पोषक तत्वों का उपयोग बेहतर होता है। जैविक कार्बन इन सभी प्रक्रियाओं को समर्थन देता है। इसके परिणामस्वरूप पौधों की वृद्धि, फसल स्वास्थ्य और उत्पादन क्षमता में सुधार हो सकता है। हालांकि, उत्पादन पर प्रभाव मिट्टी के प्रकार, जलवायु, फसल और अन्य प्रबंधन उपायों पर निर्भर करता है।

अपरदन और पर्यावरणीय महत्व

फसल अवशेषों से मृदा सतह को ढकना और स्थिर समुच्चय बनना जल एवं वायु अपरदन के जोखिम को कम करने में योगदान दे सकता है। मृदा में कार्बन का संरक्षण वैश्विक कार्बन चक्र से भी जुड़ा है, लेकिन कार्बन संचय की दर और स्थायित्व स्थल-विशिष्ट होते हैं।

विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में प्रासंगिकता

मृदा जैविक कार्बन के लाभ मिट्टी की बनावट और समस्या के प्रकार के अनुसार बदलते हैं। निम्न सारणी सामान्य प्रवृत्तियाँ बताती है; इन्हें हर खेत हेतु समान परिणाम की भविष्यवाणी नहीं माना जाना चाहिए।

मिट्टी/स्थिति एवं मृदा जैविक कार्बन प्रबंधन की संभावित भूमिका

रेतीली मिट्टी: जैविक पदार्थ की नियमित वापसी से नमी और पोषक तत्वों को रोकने की क्षमता में सुधार हो सकता है।

चिकनी मिट्टी: समुच्चयन, संरचनात्मक स्थिरता तथा जल और वायु के आवागमन में सुधार में सहायता मिल सकती है।

लवणीय/सोडिक मिट्टी: जैविक पदार्थ सहायक हो सकता है, लेकिन लवणीयता/सोडिसिटी के निदान, जल निकास, सिंचाई जल की गुणवत्ता और आवश्यकता-आधारित सुधारक का विकल्प नहीं है।

दोमट मिट्टी: मृदा संरचना, जैविक गतिविधि और पोषक तत्त्व चक्रण बनाए रखने में योगदान दे सकता है।

कम जैविक पदार्थ वाली मिट्टी: अवशेष वापसी, खाद, हरी खाद और उपयुक्त फसल प्रणाली से दीर्घकाल में सुधार संभव है; परिवर्तन की गति स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर है।

मृदा जैविक कार्बन के संरक्षण एवं सुधार की प्रमुख पद्धतियाँ

फसल अवशेषों का प्रबंधन

अवशेष जलाने के बजाय, स्थानीय आवश्यकताओं और पशुचारे/अन्य उपयोगों को ध्यान में रखते हुए, उन्हें मिट्टी में मिलाना या सतह पर मल्च के रूप में रखना।

गोबर की सड़ी खाद और कम्पोस्ट

गुणवत्ता-युक्त, अच्छी तरह तैयार खाद का उपयोग मृदा परीक्षण और फसल की पोषण आवश्यकता के अनुरूप करना।

हरी खाद एवं आवरण फसलें

ढैंचा, सनई या स्थानीय रूप से उपयुक्त आवरण फसलें उगाकर जैवभार और जड़ अवशेषों की वापसी बढ़ाना।

विविध फसल चक्र

दलहनी और अधिक अवशेष देने वाली फसलों को उपयुक्त फसल चक्र में शामिल करना। दलहनी फसलें सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर सकती हैं, लेकिन मृदा जैविक कार्बन में शुद्ध वृद्धि जैवभार की वापसी और अपघटन पर निर्भर है।

मल्चिंग और संरक्षण कृषि

जहाँ उपयुक्त हो, मिट्टी को ढककर रखना, अनावश्यक मृदा विचलन कम करना और फसल विविधता बढ़ाना। इन उपायों के परिणाम मिट्टी, जलवायु और खरपतवार/कीट प्रबंधन से प्रभावित होते हैं।

कृषि वानिकी

स्थानीय जल उपलब्धता और खेत की परिस्थितियों के अनुरूप पेड़/झाड़ियों को कृषि प्रणाली में शामिल करना; पत्तियों और जड़ों से जैविक पदार्थ का आगमन बढ़ सकता है।

संतुलित पोषक तत्व एवं जल प्रबंधन

मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों और जैविक स्रोतों का संतुलित उपयोग, उपयुक्त जल निकास और सिंचाई प्रबंधन अपनाना।

व्यावहारिक सावधानियां

* मृदा जैविक कार्बन में बदलाव आमतौर पर धीरे-धीरे होता है; एक या दो मौसम में बड़े बदलाव की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। * कार्बन का संचय मृदा बनावट, तापमान, वर्षा/सिंचाई, फसल अवशेषों की मात्रा और गुणवत्ता तथा मृदा प्रबंधन पर निर्भर करता है। * जैविक पदार्थों के उपयोग से पोषक तत्वों की आपूर्ति बदल सकती है, इसलिए खाद और उर्वरक प्रबंधन को मृदा परीक्षण तथा फसल की आवश्यकता से जोड़ना चाहिए। * लवणीय या सोडिक मिट्टी में केवल जैविक पदार्थ डालना पर्याप्त नहीं हो सकता; समस्या का सही निदान और उपयुक्त सुधार आवश्यक है। * कार्बन संचय के दावों हेतु आधारेखा, नमूना गहराई, मृदा घनत्व और पुनःनमूनाकरण की समान विधि जरूरी है ।

निष्कर्ष

मृदा जैविक कार्बन मृदा स्वास्थ्य का महत्त्वपूर्ण घटक है और मृदा संरचना, जल-संबंधी गुणों, पोषक तत्वों के चक्रण तथा जैविक गतिविधि को प्रभावित करता है। फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन, कम्पोस्ट एवं सड़ी गोबर की खाद, हरी खाद, आवरण फसलें, विविध फसल चक्र और संरक्षण कृषि जैसी पद्धतियाँ इसके संरक्षण में योगदान दे सकती हैं। इन उपायों का चयन स्थानीय मृदा और जलवायु, फसल प्रणाली तथा किसान की संसाधन स्थिति के अनुरूप होना चाहिए। मृदा परीक्षण आधारित पोषण प्रबंधन और दीर्घकालीन निगरानी के साथ अपनाई गई समेकित रणनीति टिकाऊ मृदा उर्वरता और कृषि उत्पादन के लिए अधिक उपयुक्त है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हरियाणा

डेयरी पशुओं में ट्रांजिशन पीरियड: अच्छी देखभाल से बढ़े दूध उत्पादन और घटे बीमारी का खतरा

डॉ. राहुल सिंह यादव, डॉ. पुष्पा
डॉ. सांतना दास पशुधन उत्पादन प्रबंधन
विभाग भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, (हरियाणा)

भूमिका-डेयरी पशु विशेषकर गाय और भैंस में ब्याने के आसपास का समय (Transition Period) बहुत महत्वपूर्ण होता है। इस समय पशु गर्भावस्था की अंतिम अवस्था से दूध उत्पादन की अवस्था में प्रवेश करता है। इसी अवधि में पशु के शरीर में ऊर्जा, कैल्शियम, प्रोटीन और अन्य पोषक तत्वों की मांग तेजी से बदलती है। सही प्रबंधन न होने पर दूध ज्वर, कीटोसिस, थनैला, गर्भाशय संक्रमण, भूख कम होना और अत्यधिक वजन कम होने जैसी समस्याएं हो सकती हैं।

ट्रांजिशन पीरियड क्या है?-व्यावहारिक रूप से ट्रांजिशन पीरियड को ब्याने से लगभग 60 दिन पहले से लेकर ब्याने के 30 दिन बाद तक माना जा सकता है। इसमें सूखी अवस्था, ब्याने से पहले की अंतिम अवस्था और ब्याने के बाद की शुरुआती दुग्धावस्था शामिल होती है। परंपरागत रूप से ब्याने से लगभग 3 सप्ताह पहले और 3 सप्ताह बाद को विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है।

याद रखें- ब्याने से पहले के 3 सप्ताह + ब्याने के बाद के 3 सप्ताह = सबसे संवेदनशील समय।

1. सूखा करने के बाद क्या ध्यान रखें?-दूध बंद करने के बाद पशु को केवल आराम करने वाला पशु न समझें। इसी समय अगले ब्याने और अगली दुग्धावस्था की तैयारी होती है।

- पशु को साफ, सूखी और आरामदायक जगह पर रखें।
- बहुत अधिक दाना खिलाकर पशु को मोटा न होने दें।
- शरीर की स्थिति यानी Body Condition Score (BCS) पर नजर रखें।
- पर्याप्त अच्छी गुणवत्ता का चारा उपलब्ध कराएं।
- स्वच्छ एवं पर्याप्त पानी हर समय उपलब्ध रखें।
- टीकाकरण, कृमिनियंत्रण और थन स्वास्थ्य का ध्यान पशु चिकित्सक की सलाह से करें।
- बहुत लंबे या बहुत छोटे शुष्क अवधि (dry period) से बचें; सामान्यतः अगली दुग्धावस्था के लिए लगभग 6-8 सप्ताह का शुष्क अवधि उपयोगी माना जाता है।

बहुत मोटा पशु क्यों नुकसानदायक है?

ब्याने के बाद अचानक दूध उत्पादन बढ़ने पर पशु की ऊर्जा की आवश्यकता बहुत बढ़ जाती है, जबकि वह उतनी मात्रा में चारा नहीं खा पाता। इससे शरीर की जमा वसा टूटने लगती है और ऋणात्मक ऊर्जा संतुलन (negative energy balance) बढ़ सकता है। इससे कीटोसिस और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का खतरा बढ़ सकता है।

2. ब्याने से 3 सप्ताह पहले विशेष सावधानी- यह समय क्लोज-अप अवधि कहलाता है और पशु को आने वाली दुग्धावस्था के लिए तैयार करने का समय है।

आहार में अचानक बदलाव न करें- ब्याने के बाद पशु को अपेक्षाकृत अधिक ऊर्जा वाला दुग्ध उत्पादन वाला आहार चाहिए। इसलिए दाने की मात्रा और आहार की प्रकृति में बदलाव धीरे-धीरे करना चाहिए, ताकि रूमेन (बड़ा पेट) के सूक्ष्मजीव नए आहार के अनुकूल हो सकें।

कैल्शियम का विशेष महत्व- ब्याने के समय और उसके तुरंत बाद दूध तथा खीस (colostrum) के निर्माण के लिए कैल्शियम की आवश्यकता अचानक बढ़ जाती है। यदि पशु का कैल्शियम संतुलन ठीक नहीं है, तो दूध ज्वर (Milk Fever/हाइपोकैल्सीमिया) का खतरा बढ़ सकता है। किसी भी कैल्शियम/खनिज मिश्रण या विशेष सूखी अवस्था का आहार की मात्रा, पशु की नस्ल, आहार और फार्म की परिस्थितियों के अनुसार पशु चिकित्सक/पशु पोषण विशेषज्ञ की सलाह से तय करें।

3. ब्याने के बाद के पहले 3 सप्ताह सबसे महत्वपूर्ण-ब्याने के बाद दूध उत्पादन तेजी से बढ़ता है, लेकिन पशु का चारा खाने की क्षमता उतनी तेजी से नहीं बढ़ती। परिणामस्वरूप पशु ऊर्जा की कमी (Negative Energy Balance) में जा सकता है। इस अवधि में चारा सेवन बढ़ाना ट्रांजिशन पीरियड का प्रमुख लक्ष्य है।

किसान क्या करें?

* **स्वादिष्ट और अच्छी गुणवत्ता का चारा दें** -पशु को ऐसा आहार दें जिसे वह आसानी से और पर्याप्त मात्रा में खाए।
* **चारा हमेशा उपलब्ध रखें**-बार-बार चारा समाप्त होने की स्थिति न आने दें।
* **दाने में अचानक वृद्धि न करें**-दूध बढ़ने के साथ दाना को धीरे-धीरे समायोजित करें।
* **पानी की कमी न होने दें**-ब्याने के बाद पानी की पर्याप्त उपलब्धता चारा सेवन और दूध उत्पादन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।
* **पशु को आराम दें**-भीड़, फिसलन, अत्यधिक गर्मी और अनावश्यक स्थान परिवर्तन से बचाएं।
* **प्रतिदिन पशु को देखें**-पहले दो सप्ताह में भूख, गोबर, जुगाली, चाल-ढाल, दूध और शरीर के व्यवहार में बदलाव पर विशेष नजर रखें।

4. किन बीमारियों का खतरा अधिक रहता है?

ट्रांजिशन अवधि में निम्न समस्याओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए-

समस्या	किसान को क्या दिखाई दे सकता है?
दूध ज्वर	कमजोरी, उठने में परेशानी या पशु का बैठ/लेट जाना
कीटोसिस	भूख कम होना, दूध में कमी, वजन घटना
थनैला (Mastitis)	थन में सूजन/गर्मी, दूध में बदलाव
गर्भाशय संक्रमण	असामान्य या दुर्गंधयुक्त स्राव, बुखार
अपरा न गिरना	ब्याने के बाद placenta बाहर न निकलना
Displaced abomasum	भूख में कमी, दूध उत्पादन में गिरावट
अत्यधिक वजन घटना	शरीर दुबला होना और उत्पादन/प्रजनन पर असर

इनमें से कई समस्याओं का जोखिम कम आहार सेवन और खराब संक्रमण कालीन प्रबंधन से बढ़ सकता) है।

5. ब्याने के समय स्वच्छता रखें

* ब्याने की जगह साफ, सूखी और संक्रमण से मुक्त होनी चाहिए।
* गंदे फर्श पर ब्याने से बचाएं। * साफ बिछावन रखें। * ब्याने में अनावश्यक हस्तक्षेप न करें। * कठिन प्रसव होने पर प्रशिक्षित व्यक्ति/पशु चिकित्सक की सहायता लें।
* ब्याने के बाद पशु की स्थिति पर निगरानी रखें।

6. खीस (Colostrum) को न भूलें- ब्याने के तुरंत बाद प्राप्त खीस नवजात बछड़े के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें रोगों से बचाने वाले प्रतिरक्षी प्रोटीन सहित ऐसे घटक होते हैं जो बछड़े को प्रारंभिक संक्रमणों से बचाने में मदद करते हैं। जन्म के बाद खीस पिलाने में अनावश्यक देरी नहीं करनी चाहिए। इसलिए अच्छी संक्रमण कालीन गाय/भैंस प्रबंधन का लाभ केवल गाय/भैंस को ही नहीं, बल्कि उसके बछड़े को भी मिलता है।

प्रो. बालिक दास राय
बन्टी राय
98276-11495
88715-18885
मै. माँ उर्वरक केन्द्र

अमित राय
रसायनिक एवं जैविक खाद बीज एवं दवाई के विक्रेता

पता: भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)
03/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हरियाणा

फसल अवशेष प्रबंधन: पर्यावरण संरक्षण, उपयोग एवं सतत कृषि की दिशा में एक प्रभावी पहल

डॉ. कृशानु वरिष्ठ शोध अध्येता, आईसीएआर-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान केन्द्र, करनाल (132001), हरियाणा

श्वेता यादव शोध छात्रा, आईसीएआर-आईसीएआर-राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (132001), हरियाणा

डॉ. शैलेन्द्र प्रताप सिंह (सहायक प्राद्यापक) IFTM यूनिवर्सिटी मुरादाबाद (उ.प्र.)

डॉ. स्वर्णिमा तिवारी विभाग वनस्पति विज्ञान, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय मेरठ

डॉ. शची तिवारी विभाग वनस्पति विज्ञान, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय मेरठ

पराली जलाने के नुकसान - पराली जलाने से पर्यावरण एवं मृदा स्वास्थ्य के साथ-साथ हमारे स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे उत्पन्न वायु प्रदूषण से आंखों में जलन से लेकर श्वसन एवं हृदय संबंधी रोगों के प्रभाव में बढ़ोतरी देखी गई है। दिल्ली में उत्पन्न धुंध की समस्या से वहां के लोगों की औसत आयु में 6 वर्ष की कमी दर्ज की गई है। इससे उत्पन्न वायु प्रदूषण का प्रभाव हमारे अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा है। वायु प्रदूषण के कारण दिल्ली मे पर्यटकों से आमद मे 25-30 त्न की कमी आई है।

1 टन फसल अवशेष जलाने से उत्सर्जित होता है-

Particulate matter -3 kg, कार्बन डाइऑक्साइड-1460 kg

कार्बन मोनोऑक्साइड-60 kg, सल्फर डाइऑक्साइड-2 kg, नाइट्रस ऑक्साइड-3.8 kg, मीथेन- 2.7 kg, राख-199 kg

- फसल अवशेष जलाने से हानिकारक गैसों का उत्सर्जन होता है। जो हमारे पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के लिए नुसानदायक होता है। दिल्ली एनसीआर में Oct-Nov माह मे धुंध की समस्या पराली जलाने से संबंधित है।
- फसल अवशेष जलाने से एरोसॉल के कण निकलते है, जो हवा को प्रदूषित करता है।
- मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों को नुकसान पहुंचाता है।मृदा की उर्वरता समाप्त हो जाती है।
- फसल अवशेषों को जलाने से उनके जड़, तना पत्तियों में संचित लाभदायक पोषक तत्व नष्ट हो जाते है।
- लाभदायक मित्र कीट जल कर मर जाते हैं जिसके कारण वातावरण में विपरीत प्रभाव पड़ता है।
- पशुओं के चारे की व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है
- फसल अवशेषों को जलाने से मृदा ताप में बढ़ोतरी होती है, जिसके कारण वातावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इससे मृदा के तापमान में 42° तक बढ़ोतरी होती है, जो मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों को 2.5 सेंटीमीटर की गहराई तक विस्थापित कर देता है या मार देता है।
- फसल अवशेष जलाने पर अगल बगल के खेतों में आग लगने की संभावना एवं खड़ी फसल अथवा आबादी में अग्नि कांड होने की संभावना बनी रहती है।

फसल अवशेषों के उपयोग - फसल अवशेष को जलाने के बजाय किसान नई विकल्प अपना सकते है। इसके अनेक उपयोग हैं, फसल अवशेष किसानों के लिए कई प्रकार से लाभकारी है-

1 टन फसल अवशेष खेत में मिलाने से प्राप्त पोषक तत्व



नाइट्रोजन - 10-15 kg, पोटाश - 30-40 kg
सल्फर - 5-7 kg, ऑर्गेनिक कार्बन - 600-800 kg

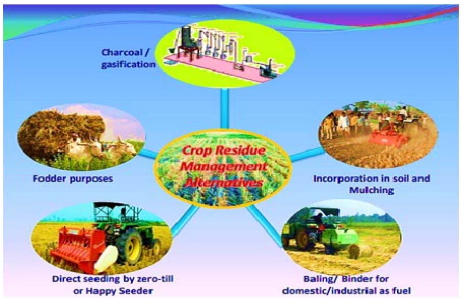
- चॉपर द्वारा फसल अवशेष को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने के बाद बायो वेस्ट डी कंपोजर का छिड़काव करके तथा डिस्क प्लाऊ से गहरी जुताई करके बेहतरीन खाद में बदल सकते है।
- मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उर्वरता बढ़ जाती है। पराली में पाए जाने वाले नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, सल्फर मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाते है, जिससे जिससे खेत में उर्वरकों की आवश्यकता कम पड़ती है । अतः उत्पादन लागत में कमी आती है।
- फसल अवशेष को खेत में ही छोड़ देने से मिट्टी में नमी बनी रहती है, जिससे भूमिगत जल स्तर में सुधार होता है।
- इसका उपयोग पशुओं के चारे के रूप में, बिछौने के रूप में एवं छप्पर बनाने में किया जाता है।
- इसका उपयोग कंपोस्ट खाद बनाने में किया जाता है।
- पुआल का उपयोग सजावटी सामान बनाने में किया जाता है, जो एक अतिरिक्त आय के स्रोत के रूप में सहायक होता है।
- इससे तैयार भूसे का उपयोग मशरूम उत्पादन में किया जाता है।
- पदार्थों की पैकेजिंग में फसल अवशेष का उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग कागज उद्योग, बायोमास आधारित पावर प्लांट जैव एथेनॉल उत्पादन इत्यादि में किया जाता है।

पराली प्रबंधन का रोहतास मॉडल - बिहार कृषि विशवविद्यालय पराली प्रबंधन का यह मॉडल बिहार के रोहतास जिले में अपनाई जा रही है। इसके तहत बेलर मशीन का प्रयोग करके पराली का प्रबंधन किया जा रहा है।

- बेलर खेतों में पड़े धान के बचे अवशेष यानी पराली का गट्ठर तैयार करती है। इसका वजन 25 किलो से लेकर 40 किलो तक होता है। एक बीघा धान के खेत से लगभग 10 से 12 क्विंटल पराली निकलती है।
- 1 एकड़ क्षेत्र में लगभग 1800 रुपए राउंड बेलर मशीन चलाने का खर्च आता है एवं 13 से 16 क्विंटल पुआल इकट्ठा होता है, इसे रु. 2 प्रति किलो की दर से बेचने पर रु. 2600 से रु. 3200 तक लाभ कमाया जा सकता है।
- इकट्ठा किए गए पराली के बंडलो को पशु चारे के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। बरसात के महीने तक अगर इसे सुरक्षित रखा जाए तो 5000 से 6000 रु. प्रति क्विंटल पशु चारा बेचा जा सकता है। इसे किसानों की आमदनी भी बढ़ेगी और पराली जलाए जाने वाले प्रदूषण से भी निजात मिलेगी।

आधुनिक मशीनों से फसल अवशेष प्रबंधन

आधुनिक मशीनें फसल की कटाई एवं अवशेषों को इकट्ठा करने का काम आसान कर देती है।



- **हैप्पी सीडर मशीन-**खेत में फसलों के अवशेष होने के बावजूद इससे फसलों की बुवाई सीधी लाइन में की जा सकती है।
- सुपर एक्स्ट्रा मैनेजमेंट सिस्टम कंबाइन हार्वेस्टर के साथ जोड़कर पराली को बारीक काटकर मिट्टी पर फैलाया जाता है।
- **बेलर-** यह फसल अवशेषों का गट्ठर बनाने का कार्य करती है।
- **चॉपर, मल्चर** -फसल अवशेषों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने का काम करती है।

भारत सरकार की विभिन्न योजनाओं के तहत किसानों को फसल अवशेष प्रबंधन की मशीनें किफायती दाम पर उपलब्ध करवा रही है। विभिन्न योजनाओं के तहत सरकार इन मशीनों पर 50-80% तक अनुदान दे रही है। किसान इन मशीनों से संबंधित जानकारी के लिए टोल फ्री नंबर 1800 180 2117 अथवा जिला कृषि उप सहायक या कृषि अभियंता से संपर्क कर सकते है।

पूसा डी कंपोजर- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) द्वारा एक ऐसा समाधान खोजा गया है, जिससे बिना खर्चे के पराली को खाद के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। पूसा डी कंपोजर एक बायो एंजाइम है, जिसका छिड़काव करने पर फसल अवशेष 20 से 25 दिनों में खाद में बदल जाते है, जिससे मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है

पराली जलाए जाने पर जुर्माने का प्रावधान- यदि कोई किसान अपने खेत में पराली जलाता है, तो राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (NGT) के अनुसार उसे 6 साल की सजा या रु. 15000 तक का जुर्माना देना पड़ सकता है।

- 2 एकड़ में फसल अवशेष जलाने पर -2500 रु. जुर्माना
- 2-5 एकड़ में फसल अवशेष जलाने पर-5000 रु.जुर्माना
- 5 एकड़ से अधिक में फसल अवशेष जलाने पर-15000रु. जुर्माना

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हिमाचल प्रदेश

विदेशी सब्जियां: भारतीय किसानों के लिए नया आर्थिक अवसर

वंशिका शर्मा विद्यार्थी, डॉ. यशवंत सिंह परमार, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर, (हिमाचल प्रदेश)

डॉ. दीपा शर्मा वरिष्ठ वैज्ञानिक, डॉ. यशवंत सिंह परमार, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर (हिमाचल प्रदेश)

अनुप्रिया भारद्वाज विद्यार्थी, डॉ. यशवंत सिंह परमार, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर (हिमाचल प्रदेश)

अखिलेश शर्मा विद्यार्थी, डॉ. यशवंत सिंह परमार, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर (हिमाचल प्रदेश)

प्रस्तावना: भारत सब्जी उत्पादन में विश्व के अग्रणी देशों में शामिल है। देश में वर्ष 2024-25 के दौरान लगभग 11.79 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में 217.80 मिलियन टन ताजी सब्जियों का उत्पादन हुआ। इसके बावजूद किसानों की आय बढ़ाने के लिए केवल पारंपरिक सब्जियों के उत्पादन पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं है। बदलती जीवनशैली, शहरीकरण, स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता, होटल-रेस्तरां उद्योग और आधुनिक रिटेल के विस्तार के कारण ऐसी सब्जियों की मांग बढ़ रही है, जिन्हें कभी भारतीय बाजार में 'विदेशी' या 'एक्जॉटिक सब्जियाँ' माना जाता था। आज ब्रोकोली, लेट्यूस, जुकीनी, एस्पैरेगस, रंगीन शिमला मिर्च, चेरी टमाटर, सेलेरी, पार्सले, पाक चॉय, रेड कैबेज, ब्रसेल्स स्प्राउट्स और बेबी कॉर्न जैसी सब्जियाँ बड़े शहरों के सुपरमार्केट, होटल, रेस्टोरेंट, ऑनलाइन ग्रॉसरी प्लेटफॉर्म और प्रीमियम बाजारों में दिखाई देने लगी हैं। यही बदलाव भारतीय किसानों के लिए एक नए उच्च-मूल्य कृषि व्यवसाय का आधार बन सकता है।

विदेशी सब्जियाँ क्या हैं?: विदेशी सब्जियों से आशय सामान्यतः उन सब्जियों से है जिनकी उत्पत्ति भारत के बाहर हुई है और जिन्हें भारतीय कृषि परिस्थितियों में अनुकूल जलवायु तथा उचित उत्पादन तकनीक के माध्यम से उगाया जाता है। इनमें यूरोपीय तथा पूर्वी एशियाई मूल की कई सब्जियाँ शामिल हैं। प्रमुख विदेशी सब्जियों में ब्रोकोली, लेट्यूस, एस्पैरेगस, जुकीनी, रंगीन कैप्सिकम, चेरी टमाटर, सेलेरी, पाक चॉय, रेड कैबेज, केल, लीक्स और स्नो पी प्रमुख हैं। इनकी विशेषता केवल विदेशी होना नहीं है, बल्कि इनका उच्च बाजार मूल्य, विशिष्ट स्वाद, आकर्षक रंग, पोषण गुणवत्ता और प्रीमियम उपभोक्ता बाजार है।

भारत में बढ़ता बाजार: विदेशी सब्जियों का बाजार अब केवल महानगरों तक सीमित नहीं है। स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं, विदेशी व्यंजनों की लोकप्रियता, होटल एवं रेस्तरां उद्योग तथा ऑनलाइन खाद्य वितरण के विस्तार ने इन सब्जियों की मांग को बढ़ावा दिया है। 2026 में प्रकाशित इंडिया मार्केट रिसर्च एंड कंसल्टिंग ग्रुप के एक नवीनतम बाजार आकलन के अनुसार, भारत का विदेशी सब्जियों का बाजार वर्ष 2025 में लगभग 2.67 बिलियन अमेरिकी डॉलर का था और 2026-2034 के दौरान इसके लगभग 10.99 प्रतिशत चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ने का अनुमान है। यह आंकड़ा एक बाजार-अनुमान है, इसलिए इसे सरकारी उत्पादन आँकड़े के रूप में नहीं, बल्कि बाजार की संभावित दिशा के संकेतक के रूप में देखा जाना चाहिए।

किसानों के लिए क्यों है यह आकर्षक अवसर?

1. **कम क्षेत्र में अधिक मूल्य:** पारंपरिक सब्जियों की तुलना में कई विदेशी सब्जियाँ प्रीमियम बाजार में बेची जाती हैं। यदि किसान उत्पादन शुरू करने से पहले बाजार, खरीदार और मूल्य का उचित आकलन कर लें, तो छोटी जोत पर भी उच्च-मूल्य उत्पादन संभव हो सकता है।

2. **शहरी बाजार से सीधा जुड़ाव:** दिल्ली-NCR, चंडीगढ़, मुंबई, पुणे, बेंगलुरु, हैदराबाद और अन्य बड़े शहरों में होटल, रेस्टोरेंट, कैफे, सुपरमार्केट तथा ऑनलाइन ग्रॉसरी कंपनियाँ नियमित रूप से गुणवत्तापूर्ण प्रीमियम सब्जियों की मांग करती हैं। इससे किसान पारंपरिक मंडी के अलावा अनुबंध खेती, प्रत्यक्ष विपणन, किसान समूह तथा संस्थागत खरीदार। जैसे विकल्प अपना सकते हैं।

3. **पोषण और स्वास्थ्य आधारित मांग:** ब्रोकोली, केल, लेट्यूस और अन्य पत्तेदार सब्जियाँ को स्वास्थ्यवर्धक आहार में शामिल किया जा रहा है। उपभोक्ता अब केवल पेट भरने वाली सब्जियों की बजाय पोषण, ताजगी, स्वाद और खाद्य गुणवत्ता को भी महत्व दे रहे हैं। इससे उच्च मूल्य की सब्जियाँ के लिए नया उपभोक्ता वर्ग तैयार हो रहा है।

4. **संरक्षित खेती से उत्पादन:** विदेशी सब्जियों के उत्पादन में पॉलीहाउस, प्राकृतिक वेंटिलेशन युक्त ग्रीनहाउस, छायाजाल गृह, कीटरोधी जाल गृह, निम्न सुरंग तथा अन्य संरक्षित कृषि संरचनाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। संरक्षित खेती से तापमान, आर्द्रता और अन्य पर्यावरणीय परिस्थितियों को अपेक्षाकृत बेहतर नियंत्रित किया जा सकता है तथा कुछ फसलों का बेमौसमी उत्पादन भी संभव होता है। ICAR के 2025 के एक लेख में उच्च मूल्य की सब्जियाँ के लिए संरक्षित खेती को विशेष रूप से महत्वपूर्ण बताया गया है। इसमें शिमला मिर्च, टमाटर, पार्थेनोकार्पिक खीरा और चेरी टमाटर जैसी फसलों के साथ-साथ लेट्यूस की मृदा रहित/हाइड्रोपोनिक खेती का भी उल्लेख किया गया है।

पहाड़ी क्षेत्रों के लिए विशेष संभावना: हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और पूर्वोत्तर भारत जैसे पहाड़ी क्षेत्रों में विदेशी सब्जियों के लिए विशेष संभावनाएँ मौजूद हैं। इन क्षेत्रों की ऊँचाई, तापमान और अपेक्षाकृत ठंडी जलवायु कई समशीतोष्ण तथा शीत ऋतु की सब्जियाँ के लिए अनुकूल हो सकती है। विशेषकर ब्रोकोली, लेट्यूस, पाक चॉय, केल, लाल पत्तागोभी, रंगीन शिमला मिर्च, चेरी टमाटर, जुकीनी तथा कुछ जड़ी-बूटी वाली सब्जियों का चयन स्थानीय कृषि-जलवायु परिस्थितियों के अनुसार करके सफलतापूर्वक उत्पादन किया जा सकता है। हिमाचल प्रदेश जैसे पहाड़ी राज्य के किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण लाभ यह हो सकता है कि वे मैदानी क्षेत्रों की तुलना में कुछ सब्जियों की बेमौसमी सब्जियों की आपूर्ति विकसित कर सकें। हालांकि, किसी भी फसल को बड़े क्षेत्र में लगाने से पहले स्थानीय जलवायु, बाजार मूल्य, रोग-कीट स्थिति और खरीदार की मांग का परीक्षण आवश्यक है।

संरक्षित खेती और आधुनिक तकनीक: विदेशी सब्जियों की व्यावसायिक सफलता केवल फसल चुनने पर निर्भर नहीं करती। आधुनिक उत्पादन प्रणाली में निम्न तकनीकों का उपयोग लाभदायक हो सकता है– * गुणवत्तापूर्ण एवं प्रमाणित बीज/रोपण सामग्री का उपयोग * स्वस्थ पौध तैयार करने के लिए संरक्षित पौधशाला * टपक सिंचाई प्रणाली और उर्वरक सिंचाई * प्लास्टिक या जैविक आच्छादन (मल्चिंग) * मृदा तथा जल परीक्षण * आवश्यकता के अनुसार संरक्षित खेती * हाइड्रोपोनिक या मृदा रहित खेती * विशेषकर लेट्यूस जैसी फसलों में * जलवायु-स्मार्ट उत्पादन पद्धतियाँ

श्रेणीकरण एवं पैकेजिंग–ICAR के अनुसार, संरक्षित खेती के माध्यम से उच्च-मूल्य वाली सब्जियों का बेमौसमी उत्पादन, बेहतर गुणवत्ता तथा निर्यात-योग्य उपज प्राप्त की जा सकती है। साथ ही, छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए अंतरराष्ट्रीय बाजारों को लक्षित करने की संभावनाएँ भी बढ़ सकती हैं।

निर्यात की संभावनाएँ-भारत पहले से ही बड़ी मात्रा में ताजी एवं प्रसंस्कृत सब्जियों का निर्यात करता है। APEDA के अनुसार, वित्त वर्ष 2024-25 में भारत ने लगभग 2.15 मिलियन टन ताजी सब्जियों का निर्यात किया, जिसका कुल मूल्य लगभग 894 मिलियन अमेरिकी डॉलर रहा। वर्ष 2025-26 में प्याज को छोड़कर अन्य ताजी सब्जियों का निर्यात लगभग 8.88 लाख टन रहा, जिसका मूल्य लगभग 362.87 मिलियन अमेरिकी डॉलर था। प्रमुख निर्यात गंतव्यों में संयुक्त अरब अमीरात (UAE), नेपाल, बांग्लादेश, यूनाइटेड किंगडम (UK), ओमान, मलेशिया और कतर शामिल रहे। इन आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि भारतीय सब्जियों के लिए घरेलू बाजार के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय बाजार भी महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है। हालांकि, विदेशी सब्जियों के निर्यात के लिए गुणवत्ता मानकों, अवशेष सीमा (Residue Limits), उत्पाद की ट्रेसबिलिटी, श्रेणीकरण, पैकेजिंग, शीत श्रृंखला (Cold Chain) तथा पादप स्वच्छता संबंधी आवश्यकताओं (Phytosanitary Requirements) का पालन करना आवश्यक होगा।

सरकारी योजनाओं का लाभ: उच्च-मूल्य सब्जियों को बढ़ावा देने में बागवानी विकास कार्यक्रम और संरक्षित खेती हेतु सहायता एवं प्रोत्साहन में महत्वपूर्ण हो सकते हैं। समेकित बागवानी विकास मिशन (MIDH) के अंतर्गत बागवानी क्षेत्र के समग्र विकास हेतु विभिन्न गतिविधियों को शामिल किया गया है।



01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
हिमाचल प्रदेश

ब्रोकोली: पहाड़ी किसानों के लिए उत्पादन तकनीक और अवसर

सृष्टि शर्मा, प्रतिभा सिंह, अनुज कटोच
पीएच.डी. शोधार्थी, सब्जी विज्ञान विभाग, बागवानी महाविद्यालय, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन, हिमाचल प्रदेश-173230

सारांश: ब्रोकोली (ब्रासिका ओलेरेसिया वैरायटी इटालिका) ठंडे मौसम की एक महत्वपूर्ण सब्जी है, जिसे इसके पोषक गुणों और बढ़ती उपभोक्ता मांग के कारण पसंद किया जाता है। कई पहाड़ी क्षेत्रों की अनुकूल जलवायु परिस्थितियाँ इसकी खेती के अवसर प्रदान करती हैं और किसानों को अपनी फसल प्रणालियों में विविधता लाने में मदद कर सकती हैं। सफल उत्पादन उपयुक्त किस्मों, समय पर रोपाई, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, पर्याप्त सिंचाई और कीट व रोग के प्रभावी नियंत्रण पर निर्भर करता है। गुणवत्ता बनाए रखने और नुकसान को कम करने के लिए सही तरीके से कटाई और कटाई के बाद का रखरखाव भी उतना ही महत्वपूर्ण है। यह लेख पहाड़ी क्षेत्रों में ब्रोकोली की खेती से जुड़े प्रमुख उत्पादन तरीकों, चुनौतियों और अवसरों पर प्रकाश डालता है।

कीवर्ड: ब्रोकोली, उत्पादन तकनीक, पहाड़ी खेती, पोषण, फसल विविधीकरण।



1.परिचय: ब्रोकोली 'ब्रैसिसेसी' परिवार की एक पौष्टिक सब्जी है। इसे इसके घने, मुलायम हरे फूलों के गुच्छों के लिए उगाया जाता है, जिन्हें आमतौर पर 'कर्ड' कहा जाता है। यह विटामिन ए और सी, फोलेट, डाइटरी फाइबर और फायदेमंद फाइटोकेमिकल्स का अच्छा स्रोत है। स्वस्थ खान-पान की आदतों के बारे में बढ़ती जागरूकता के कारण ग्राहकों, होटलों, रेस्तरां और शहरी बाजारों में ब्रोकोली की मांग बढ़ी है। मध्य और ऊंचे पहाड़ी इलाकों का ठंडा मौसम ब्रोकोली की खेती के लिए बहुत अच्छा है। यह फसल मौजूदा सब्जी उत्पादन प्रणालियों में विविधता ला सकती है और किसानों को अतिरिक्त आय दे सकती है। हालांकि, फायदेमंद खेती के लिए सही किस्मों, सही समय पर रोपाई, फसल के सही प्रबंधन और भरोसेमंद मार्केटिंग सुविधाओं की जरूरत होती है।

2.उत्पादन तकनीक

2.1 जलवायु और मिट्टी: ब्रोकोली ठंडे और थोड़ी नमी वाले मौसम में सबसे अच्छी तरह बढ़ती है। फूल (हेड) बनने के समय ज्यादा तापमान होने से फूल ढीले हो सकते हैं और बाजार में उनकी गुणवत्ता खराब हो सकती है, जबकि तेज पाला नाजुक अवस्था में पौधों को नुकसान पहुंचा सकता है। इसलिए, ऊंचाई और स्थानीय मौसम के हिसाब से रोपाई का समय तय करना चाहिए। अच्छी जल निकासी वाली, उपजाऊ दोमट या बलुई-दोमट मिट्टी, जिसमें कार्बनिक पदार्थ भरपूर हों, इसके लिए उपयुक्त है। रोपाई से पहले मिट्टी की जांच करने से पोषक तत्वों की जरूरत का पता लगाने और मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में मदद मिलती है।

2.2 किस्म का चुनाव और नर्सरी प्रबंधन: एक जैसे, घने फूल और अच्छी पैदावार पाने के लिए स्थानीय मौसम के अनुकूल किस्मों या हाइब्रिड का चुनाव करना जरूरी है। किसानों को अपने क्षेत्र के लिए सुझाई गई किस्मों को प्राथमिकता देनी चाहिए और बड़े पैमाने पर खेती करने से पहले नई किस्मों को छोटी जगह पर आज़माना चाहिए। ब्रोकोली आमतौर पर नर्सरी में तैयार पौधों (सीडलिंग) से उगाई जाती है। बीजों को साफ नर्सरी ट्रे में उपयुक्त ग्रोइंग मीडियम (उगाने के लिए सही मिश्रण) में बोया जा सकता है। पर्याप्त नमी, हवा का आवागमन और नर्सरी की साफ-सफाई स्वस्थ पौधे तैयार करने में मदद करती है।

2.3 पौधे लगाना और पोषक तत्वों का प्रबंधन: पौधे लगाने का काम ठंडे समय में करना चाहिए और उसके बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए ताकि पौधे अच्छी तरह जम सकें। पौधों के बीच की दूरी किस्म और स्थानीय सुझावों के अनुसार तय की जानी चाहिए; कुछ किस्मों के लिए लगभग 45×45 cm की दूरी सही हो सकती है। अच्छी वानस्पतिक वृद्धि और ठोस 'हेड' (फूल का गुच्छा) बनने के लिए फसल को संतुलित पोषण की ज़रूरत होती है। पौधे लगाने से पहले अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट का इस्तेमाल किया जा सकता है। रासायनिक खाद मिट्टी की जांच के नतीजों और स्थानीय स्तर पर सुझाए गए शेड्यूल के अनुसार डालनी चाहिए।

2.4 सिंचाई और खरपतवार प्रबंधन: पौधे लगाने के बाद उनके जमने और 'हेड' के विकास के दौरान मिट्टी में नमी का सही स्तर बहुत ज़रूरी है। नमी की कमी से 'हेड' का आकार और गुणवत्ता कम हो सकती है, जबकि जल-जमाव से जड़ों को नुकसान हो सकता है और बीमारी फैल सकती है। ड्रिप सिंचाई और मल्चिंग से पानी के इस्तेमाल की क्षमता बेहतर हो सकती है और खरपतवार को रोकने में मदद मिल सकती है। समय पर हाथ से खरपतवार निकालने और हल्की गुड़ाई करने से पोषक तत्वों, नमी और धूप हेतु प्रतिस्पर्धा कम होती है। खेती-बाड़ी के कामों के दौरान फसल की जड़ों को नुकसान न पहुंचे, इसका ध्यान रखना चाहिए।

2.5 कीट और रोग प्रबंधन: ब्रोकोली के मुख्य कीटों में डायमंडबैक मॉथ, गोभी की तितली और एफिड्स शामिल हैं। स्थानीय स्थितियों के आधार पर क्लबरूट, डाउनी मिल्ड्यू और ब्लैक रॉट जैसी बीमारियां भी हो सकती हैं। एकीकृत कीट और रोग प्रबंधन में स्वस्थ पौधे, फसल चक्र, खेत की सफाई, फसल की नियमित निगरानी और उपयुक्त जैविक नियंत्रण के तरीके शामिल होने चाहिए।

2.6 कटाई और कटाई के बाद का प्रबंधन: ब्रोकोली के 'हेड' की कटाई तब करनी चाहिए जब वे ठोस, सख्त और पूरी तरह विकसित हों, और फूल की अलग-अलग कलियां ढीली होने या खुलने न लगी हों। देर से कटाई करने पर गुणवत्ता और बाजार मूल्य कम हो जाता है। ठंडे समय में कटाई करने, 'हेड' को सावधानी से संभालने और सीधी धूप से बचाने से ताजगी बनाए रखने में मदद मिलती है। उपज की ग्रेडिंग करनी चाहिए, उसे साफ कंटेनरों में पैक करना चाहिए और तुरंत पहुंचाना चाहिए। जहां सुविधाएं उपलब्ध हों, वहां प्री-कूलिंग और रेफ्रिजरेटेड ट्रांसपोर्ट से शेल्फ-लाइफ बढ़ाई जा सकती है और कटाई के बाद होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है।

3.फसल विविधीकरण और आय बढ़ाना: ब्रोकोली पहाड़ी इलाकों में उगाई जाने वाली दूसरी सब्ज़ियों के साथ अच्छी तरह से उगाई जा सकती है और किसानों को सही मौसम में एक अतिरिक्त फ़सल दे सकती है। सही किस्मों और बुवाई की तारीखों का चुनाव करके किसान मौसम की अनुकूल स्थितियों और बाज़ार की मांग के हिसाब से उत्पादन कर सकते हैं।

3.1 बाज़ार की संभावना: शहरी ग्राहकों, होटलों, रेस्तरां और संगठित खुदरा विक्रेताओं की मांग से अच्छी गुणवत्ता वाली ब्रोकोली हेतु अवसर पैदा होते हैं। किसान समूह और सहकारी समितियां सामूहिक मार्केटिंग में मदद कर सकती हैं, परिवहन लागत कम कर सकती हैं और मोल-भाव करने की क्षमता बढ़ा सकती हैं। बड़े पैमाने पर खेती शुरू करने से पहले, किसानों को स्थानीय मांग, संभावित कीमतों और परिवहन सुविधाओं की उपलब्धता का आकलन करना चाहिए।

3.2 मूल्य संवर्धन और बेहतर उत्पादन प्रणालियां: ग्रेडिंग, आकर्षक पैकेजिंग और ताज़ी कटी हुई सब्ज़ियों जैसे उत्पादों से अतिरिक्त व्यावसायिक अवसर पैदा हो सकते हैं। हालांकि, मूल्य संवर्धन के लिए उचित स्वच्छता, खाद्य-सुरक्षा उपाय और भरोसेमंद बाज़ार की ज़रूरत होती है। कुछ खास जगहों पर, सुरक्षित नर्सरी और कम लागत वाले अन्य ढांचे पौधों को बेहतर ढंग से पनपने में मदद कर सकते हैं या उगाने के मौसम को बढ़ा सकते हैं, बशर्ते निवेश आर्थिक रूप से सही हो।

3.3 चुनौतियां और भविष्य की संभावनाएं: तापमान में बदलाव, कीटों और बीमारियों का प्रकोप, कोल्ड-स्टोरेज सुविधाओं की कमी, परिवहन लागत और बाज़ार की कीमतों में उतार-चढ़ाव ब्रोकोली की खेती से होने वाले मुनाफ़े पर असर डाल सकते हैं। स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल किस्मों, बेहतर उत्पादन तरीकों, समय पर कटाई, कटाई के बाद बेहतर प्रबंधन और बाज़ार से भरोसेमंद जुड़ाव के ज़रिए इन बाधाओं को कम किया जा सकता है। बागवानी विशेषज्ञों और विस्तार एजेंसियों द्वारा प्रशिक्षण और प्रदर्शन से किसानों को बेहतर तकनीकें अपनाने में मदद मिल सकती है। बाज़ार की जानकारी और सामूहिक मार्केटिंग की व्यवस्था से आमदनी और बढ़ सकती है।

4.निष्कर्ष: ब्रोकोली पहाड़ी इलाकों में फ़सल विविधीकरण और आय बढ़ाने के अच्छे अवसर देती है। उत्पादन के बेहतर तरीकों, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, एकीकृत कीट प्रबंधन और सावधानीपूर्वक कटाई को अपनाकर फ़सल की गुणवत्ता और उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। सही किस्मों, प्रभावी विस्तार सहायता और बाज़ार से भरोसेमंद जुड़ाव के साथ, ब्रोकोली पहाड़ी इलाकों में टिकाऊ खेती का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन सकती है।

Organizer

Radeecal communications | Colossal Communications

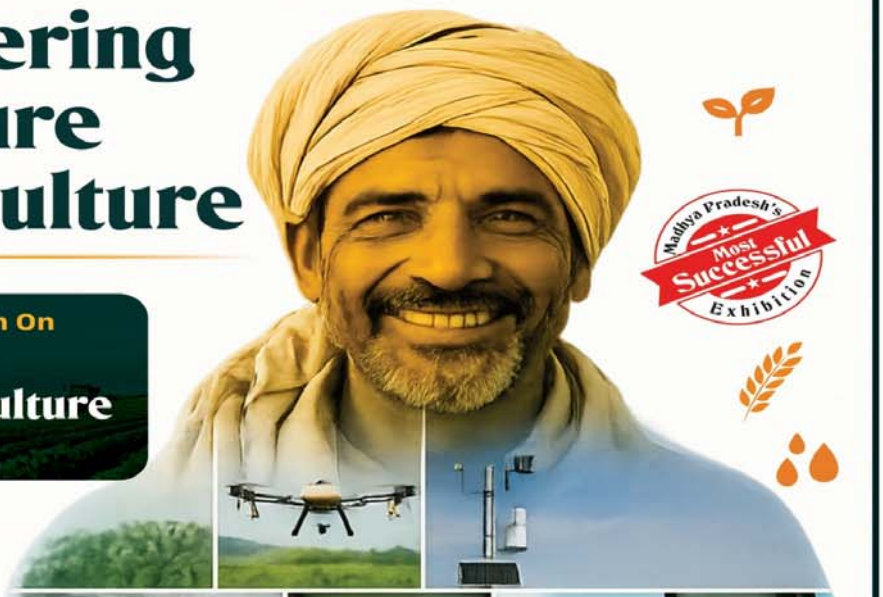
India Farm-Tech

AN EXHIBITION ON FARMING TECHNOLOGY

14 – 15 – 16 FEBRUARY 2027

ICAR(CIAE) GROUND
NABI BAGH, BERASIA ROAD
BHOPAL
MADHYA PRADESH

Empowering the Future of Agriculture



Madhya Pradesh's Most Successful Exhibition

International Exhibition On
Agriculture, Dairy & Horticulture Technology

BOOK YOUR STALL NOW!





STALL BOOKING CONTACT DETAILS

Supported by

BASAI | GFID INDIA

M: +91 99740 29797 , +91 75677 02025
agri@farmtechindia.in | www.farmtechindia.in

Postal Regd. No.: Gwalior/40020242/2025-27

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

मध्य भारत कृषक भारती

नवम्बर-2026

आत्मनिर्भर भारत

विकसित भारत अभियान

आत्मनिर्भर भारत • आत्मनिर्भर किसान



मा. श्री शिवराज सिंह चौहान
(कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार)

RASHTRIYA KRISHI UDAY

— • समृद्ध किसान • सशक्त भारत • —



19 20 21 DECEMBER 2026

CENTRAL FARM MACHINERY TRAINING & TESTING INSTITUTE (CFMTTI)

BUDNI, MADHYA PRADESH (BHARAT)

3 DAY NATIONAL EXHIBITION ON

NATIONAL EXHIBITION & FARMERS INTERACTION ON ADVANCED AGRICULTURAL MECHANIZATION, DAIRY, HORTICULTURE TECHNOLOGIES IN CENTRAL INDIA



EVENT IMPACT

500 + Exhibitors	5000 + Dealers | Distributors	
50,000 + Farmers	200 + FPO	100 + Govt. Scheme Display

आत्मनिर्भर भारत • आत्मनिर्भर किसान

ORGANIZER:

BME
भारती मीडिया एंड इवेंट्स प्राइवेट लिमिटेड
EXHIBITIONS • MEDIA • CONFERENCES

Supported By

Central Farm Machinery Training & Testing Institute, (CFMTTI, Budni, M.P.)
Ministry of Agriculture & Farmers Welfare, Govt. of India
Department of Agriculture and Farmers Welfare

'विकसित कृषि संकल्प अभियान'

+91 92122 71729, 92660 50093

www.rashtriyakrishi.com

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक राजू सिंह गुर्जर द्वारा कंचन ऑफसेट, चिंतामणि शास्त्री की गली, सात भाई की गोठ, लक्कडखाना,ग्वालियर, म.प्र.-474001 से मुद्रित एवं ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर, म.प्र.-474005 से प्रकाशित। संपादक : राजू सिंह गुर्जर (मोबा. 9425101132, 0751-4070802)